❀ श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ❀

प्रकाशित-ग्रन्थसख्या—१२९

सानुवाद—

❀ साधनदीपिका ❀

रचयिता—
व्रजाचार्य्य—
श्रीश्रीनारायणभट्टजी

प्रकाशकः—
कृष्णदासबाबा
कुसुमसरोवर, राधाकुण्ड
[मथुरा]

उत्तर-प्रदेश सरकार से अनुदान प्राप्त ।

❀ श्रीश्री गौरहरिर्जयति ❀

प्रकाशित ग्रन्थसंख्या-१२६

सानुवाद—

❀ साधनदीपिका ❀



रचयिता—

व्रजाचार्य्य—

श्रीश्रीनारायणभट्टजी

प्रकाशकः—

सम्वत् २०२२.

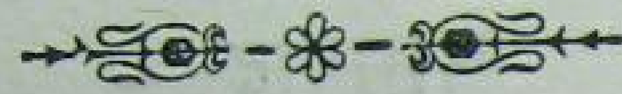
कृष्णदासबाबा

कुसुमसरोवर

मुद्रकः—गौरहरिप्रेस, कुसुमसरोवर, राधाकुण्ड,

[मथुरा]

* समर्पणपत्रम् *



भज-निताइ गौर राधेश्याम ।

जप-हरे कृष्ण हरे राम ॥

श्रीश्रीराधारमण-चरणदास जी (बड़े बाबाजी) महाराज के मार्ग-पथिक, नित्यधामगत, गोविन्द-कुण्ड, (वृन्दावन) निवासी, बड़े गुरुभ्राता, श्रीरजनीदासबाबाजी (राधाचरणदासजी) महाराज के पुनीत स्मरण में समर्पित

साधनदीपिकेयम्

दो शब्द



परम-उपासक, ब्रज-उद्धारक, संस्कृत-मनीषी, महाकवि और महर्षिप्रवर श्रीनारायणभट्टगोस्वामी दाक्षिणात्य तैलंग वंशावतंस श्रीभास्कर भट्ट गोस्वामी के पुत्र और परम रसिक ब्रह्मचारी श्रीकृष्णदास के शिष्य थे ! महासमर्थ मध्वाचार्य द्वारा प्रवर्तित तथा महाप्रभु चैतन्य द्वारा प्रतिपादित, सम्पुष्ट और प्रसारित मतावलम्बी, ब्रह्मचारी कृष्णदास के शिष्य के रूप में श्रीनारायणभट्ट गोस्वामी ने लगभग ६० ग्रन्थों का प्रणयन पूर्ण किया। उनकी रचना साधारण लेखक के वश की बात नहीं। इनमें कई ग्रन्थ विशाल-रूप में हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ "साधनदीपिका" वृहद् ग्रन्थ है। साधनदीपिका में साधन रूपा भक्ति का सविशेष निर्णय, वैष्णवों का जीवन यापन विधि विधान-विचार, जन्माष्टमी, रामनवमी, एकादशी, प्रभृति व्रतों का विस्तृत विवरण उपलब्ध है । श्रीभट्ट जी बहुज्ञ और बहुश्रुत पंडित थे। उन्होने वेदों से लेकर पुराणों तक का मन्थन किया था। नाना पुराण निगमागम सम्मत धर्मों का आलोड़न-विलोड़न कर अपने प्रकाण्ड पांडित्य का प्रदर्शन अपने ग्रन्थों में किया। साधनदीपिका में जिन ग्रन्थों के उद्धरण मिलते हैं वे इस प्रकार हैं—नारदपंचरात्र, रामार्चनचन्द्रिका, मंत्र-मुक्तावली, अगस्त्यसंहिता, विष्णुस्मृति, पद्मपुराण, तत्त्व-सागर, जयाख्यसंहिता, गौतमीयतन्त्र, ब्रह्माण्डपुराण, नारद-पुराण, स्कन्दपुराण, भविष्योत्तरपुराण, वाराहपुराण, ब्रह्म-वैवर्त्तपुराण, गरुड़पुराण, अग्निपुराण, लिङ्गपुराण, हरिवंश-पुराण, वायुपुराण, देवीपुराण, मत्स्यपुराण, मार्कण्डेयपुराण,

विष्णुयामल, क्रमदीपिका, सारसंग्रह, विष्णुतन्त्र, भागवत, महाभारत, शारदातिलक, त्रैलोक्यसंमोहनतन्त्र, सनत्कुमारसंहिता, पुष्करसंहिता, पारमेश्वरसंहिता, गरुड़संहिता, मनुस्मृति, शाण्डिल्यस्मृति, कात्यायनीस्मृति, विष्णुधर्म, वृहद्गौतमीय, विष्णुधर्मोत्तर, गौड़निबन्ध, ब्रह्मसूत्र, सामवेद, ऋग्वेद, अथर्ववेद, वृहदारण्यक, कठवल्ली, प्रतापमार्तण्ड, वामनकल्प, आदित्यपुराण, नरसिंहपुराण, विष्णुरहस्य, ध्रुवचरित्र, श्रीमद्भगवद्गीता, हयशीर्षआदि आदि। गोस्वामी द्वारा निर्दिष्ट संस्कृत ग्रन्थों की यदि तालिका बनाई जाय तो एक वृहद् ग्रन्थ ही बन जायगा। एक जीवन में इतने ग्रन्थों का अध्ययन मंथन-मनन कोई सशरीरी कर ही नहीं सकता है उनको लिखना तो असम्भव कल्पना है। किन्तु गोस्वामी जी तो नारदजी के अवतार थे। उन्होंने निश्चय ही कई जन्मों की उपलब्ध सम्पत्ति-सरिता को व्रज मे आकर अपने श्रीमुख से प्रवाहित किया। यह व्रजमंडल का अहोभाग्य ही कहा जायगा॥

प्रस्तुत ग्रन्थ साधनदीपिका तो वास्तव में वैष्णवजनों का हृदय विलम्बी हार है। शुद्ध शास्त्रोक्त पद्धति के अनुसार सदाचार्यों के सदाचार—अविरोध से साधनों के भावों को प्रकाशित करने वाला यह ग्रन्थ एक निधि के समान संग्रहणीय, पठनीय, और नित्य-पारायण करने योग्य है। इसमें गुरु-शिष्यादिकों के लक्षण, सदाचार आदि पर विस्तार में प्रकाश डाला गया है। गुरु और शिष्य भारतीय संस्कृति के मेरुदण्ड हैं। इन्हीं के द्वारा वैष्णव-धर्म जीवित है, सशक्त है, और इन्हीं के आधार पर श्रीकृष्ण-भक्ति की महिमा महान् है। अतः साधनदीपिका एक प्रकार से साधनों का विश्वकोष है॥

मैं अल्पज्ञ हूँ। श्रीश्री कृष्णदासबाबा कुसुमसरोवरस्थ अपनी तपोभूमि में जगकल्याण हेतु भक्तिसेतु का निर्माण कर

रहे हैं। जो महान् कार्य सम्पादन श्रीश्रीनारायण भट्ट ने व्रज में विलुप्त प्रायः ग्राम, नगर, वन, उपवन, कुंज, कुण्ड, तालाव, देवी, देवताओं की मूर्तियों, विविध लीला-स्थलियों का प्राकट्य करके सम्पन्न किया, वही सत्कार्य बाबा कृष्णदास संस्कृत के विलुप्त, अनुपलब्ध, अप्रकाशित, दुर्लभ हस्तलिखित ग्रन्थों का शोधन, सम्पादन, प्रकाशन कर रहे हैं, जो एक ऐसी जन-सेवा है, भक्ति का वह स्वरूप है, जिससे भागवत-धर्मावलम्बी मानव अऋण नहीं हो सकता। मैं इसे उनकी महान कृपा ही कहूँगा कि मुझ जैसे अल्पज्ञ से साधनदीपिका का परिचय लिखाने की उन्होंने आज्ञा प्रदान की। आज्ञा का पालन न करना मेरे वश की बात नहीं। उनकी आज्ञा में प्रभु की आज्ञा मुझे दिखाई दी॥

श्रीनारायणभट्ट गोस्वामी के साहित्य का अध्ययन शोधन का गुरुतर कार्यभार किसी महान् पंडित को ही करना चाहिए था। किन्तु अपने परम मित्र डा० केशवदेवशास्त्री के इंगित ने मुझे इस शुभकार्य में दत्तचित्त किया। इस साहित्य को अवगाहन करते समय श्रीनारायणभट्ट और उनके साहित्य के सम्बन्ध में कुछ काव्य रचना की है। उस विभूति को प्रणाम स्वरूप मैं कुछ काव्य पंक्तियाँ नीचे उद्धृत किए देता हूँ—

खोजि खोजि वेद औ पुरान, भाष्य संहितानु,
स्मृति औ तन्त्र, मन्त्र मथि कौन तोलतौ।
भक्ति कौ विलास, अभिलाष, भुक्ति-मुक्ति हू की,
रास कौ विलास सविलास को टटोलतौ।
लाड़िलेय लाड़िली ललित लास्य लखतौ को,
रास-रस-रहसि रहस्य कौन खोलतो।
हो तौ जो न नारायण भट्ट उच्च धाम वारौ,
व्रज भुवि मण्डल की महिमा को बोलतौ॥१॥

ग्रन्थ वर्णन—

धर्म की प्रदीपिका जो साधन की दीपिका है,
व्रज रज दीपिका, महोदधि है व्रज कौ ।
भक्ति-रसतरंगिनी, प्रेमांकुर, व्रज प्रकाश,
भक्ति कौ विलास, सुविवके व्रज रज कौ ।
बृहद् गुणोत्सव, व्रजोत्सव-अल्हादिनो है,
रसिकाल्हादिनी सों टीकौ भागवत कौ ।
लाड़िलेयाष्टकं, सिद्धान्त-चूड़ामणि नीकौ
जीकौ टीकौ पंचअध्यायी रास रस कौ ॥१॥
व्रज-रत्नदीपिका, विनोद राधारानी जू कौ
रीतिनीति श्लोक, भक्तभूषण हू पाइए ।
पाइए प्रबोधिनी, सुबोधिनी अनेक नेक
शोधिनी सुजीवनी सुरभि सुरझाइए ।
गाइए अनूपम अटापै भट्ट नारायण
सचित्र छटा पै ठठा भक्ति भरि लाइए ।
कौन गनें जेते काव्य चम्पू सुरचे है ते ते
साठ तक रसिक समाज में सुनाइए ॥२॥
जय प्रभु मध्वाचार्य विष्णुमत प्रवल प्रवर्त्तक
प्रभु चैतन्य अनन्य जन्य हरि भक्ति विवर्त्तक ।
कृष्णदास जू धन्य ब्रह्मचारी सुविचारी
जिन पाए श्री नारायण से शिष्य पूजारी
वृज संस्कृति प्राकट्यकरि भक्ति सेतु जिन निरमयौ
धन्य नारायण भट्ट जू जिन जग अमृत घट दयौ ॥३॥

प्रभा प्रकेत — दासानुदास—
कृष्णापुरी (मथुरा) — भगवानसहाय पचौरी
एम०ए० (हिन्दी) एम ए० (इतिहास)
एल० टी० साहित्याचार्य रिसर्च स्कालर ।

गुरुपरम्परा:—

अथ पद्मपुराणमतेन श्लोकाः लिख्यन्ते—

श्रीमन्नारायणः पूर्वं संप्रदायप्रवर्त्तकः ॥३३॥
तस्य शिष्यो भवद्ब्रह्मा सर्वेषां प्रपितामहः ।
नारदस्तस्य शिष्योऽभूत ज्ञानसागरचन्द्रमाः ॥३४॥
वेदव्यासो नारदस्य शिष्यो जातो मुनीश्वरः ।
व्यासाल्लब्ध-कृष्णदीक्षो मध्वाचार्यो महामुनिः ॥३५॥
चक्रे वेदान् विभाज्यासौ संहितां शतदूषणीम् ।
निर्गुणाद्ब्रह्मणो यत्र सगुणस्य परिष्क्रिया ॥३६॥
तस्य शिष्योऽभवत् पद्मनाभाचार्यमहाशयः ।
तस्य शिष्यो नरहरिस्तच्छिष्यो माधवो द्विजः ॥३७॥
अक्षोभस्तस्य शिष्योऽभूत तच्छिष्यो जयतीर्थकः ।
तस्य शिष्यो ज्ञानसिन्धुस्तस्य शिष्यो महानिधिः ॥३८॥
विद्यानिधिस्तस्य शिष्यो राजेन्द्रस्तस्य सेवकः ।
जयधर्मो मुनिस्तस्य शिष्यो मुद्गलमध्यतः ॥३९॥
श्रीमान् विष्णुपुरी यस्य भक्तिरत्नावली कृतिः ।
जयधर्मस्य शिष्योऽभूत ब्रह्मण्यः पुरुषोत्तमः ॥४०॥
व्यासतीर्थस्तस्य शिष्यो यश्चक्रे विष्णुसंहिताम् ।
श्रीमान् लक्ष्मीपतिस्तस्य शिष्यो भक्तिरसाश्रयः ॥४१॥
तस्य शिष्यो माधवेन्द्रो यज्ञधर्मप्रवर्त्तकः ।
कल्पवृक्षस्यावतारो व्रजधामनि तिष्ठतः ॥४२॥
तस्त शिष्योऽभवत् श्रीमान ईश्वराख्यपुरीर्यतिः ।
कलयामास शृङ्गारं यः शृङ्गारफलात्मकः ।४३॥
ईश्वराख्यपुरीं गौर उररीकृत्य गौरवे ।
जगदाप्लावयामास प्राकृताप्राकृतात्मकम् ॥४४॥

स्वीकृतो राधिकाभावो कान्तिः पूर्वं सुदुष्करः ।
अन्तर्वहिर्रसांभोधिः श्रीनन्दनन्दनोऽपि सन् ॥४५॥

आद्यव्यूहोऽपि चैतन्यमविशत् यः पुरे परः ।
विचुक्षोभ मनो यस्य दृष्ट्वा गन्धर्वनर्त्तनम् ॥४६॥

दारूकस्थोऽपि भगवान् विचुक्रोश शचीसुतम् ।
गौरः श्रीकृष्णचैतन्यः प्रख्यातः पृथिवीतले ॥४७॥

श्रीचैतन्यस्य शिष्योऽभूत पंडितः श्रीगदाधरः ।
श्रीराधायाः स्वरूपोऽयं कृष्णभक्ति-प्रवर्त्तकः ॥४८॥

नित्यानन्दोऽपि शिष्योऽभूत् चैतन्यस्य महाप्रभोः ।
बलदेवांशसंभूतो यः श्रृंगारवटे स्थितः ॥४९॥

नित्यानन्दसमुद्भूताः श्रृंगारस्थलवासिनः ।
अद्वैतश्चापि शिष्योऽभूत् चैतन्यस्य महाप्रभोः ॥५०॥

गोपेश्वरांशसंभूतः प्रेमानन्दजलाप्लुतः ।
गदाधरस्य शिष्योऽभूत् कृष्णदासो मुनीश्वरः ॥५१॥

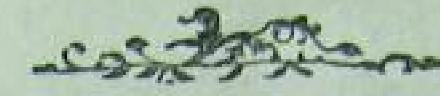
इन्दुलेखावतारोऽयं ब्रह्मचारीति यं विदुः ।
तस्य शिष्यो भवच्छ्रीमान्नारदो भट्टरूपधृक् ॥५२॥

श्रीनारायणभट्टोऽसौ प्रख्यातो ब्रजमंडले ।
ब्रजोद्धारार्थमाज्ञप्तः श्रीकृष्णेन वभूव यः ॥५३॥

श्रीनारायणभट्टचरितामृतस्य
चतुर्थास्वादे—



आमुख



ब्रज का पुनरुद्धार करने वाले महात्माओं में नारायण-भट्ट का स्थान सर्वोपरि है। इनके जीवनवृत्त का आधारभूत प्रामाणिक ग्रंथ श्रीजानकी-प्रसाद-भट्ट विरचित "श्रीनारायण-भट्ट-चरितामृतम्" है। जानकी-प्रसाद-भट्ट जो एक महान् विद्वान् आचार्य थे भट्ट जी की सातवीं पीढ़ी में हुए थे। अज्ञात लेखक का एक "लघुनारायणभट्ट चरितामृत" भी है॥

इन ग्रन्थों के आधार पर नारायणभट्ट का जन्म सं० १५८८ की वैशाख शुक्ला १४ (नृसिंहचतुर्दशी) को दक्षिण के मदुरा नगर में हुआ था। वे भृगुवंशी दीक्षित ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम भास्करभट्ट, माता का यशोमती और बड़े भाई का नाम गोपालभट्ट था। नारदावतार होने के कारण वे परम सुन्दर थे। गुणानुरूप ही इनका नाम नारायण रखा गया। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा दक्षिण में हुई। उन्होंने द्वादश वर्ष की आयु में ही विद्याध्ययन कर लिया था। बाल्यावस्था से ही वे श्रीकृष्ण-भक्त और ब्रज—वृन्दावन के अनुरागी थे। "ब्रजदीपिका" नामक ग्रंथ का प्रणयन इन्होंने दक्षिण में अपने पितृगृह में ही किया था। इसके उपरान्त वे श्रीकृष्ण-आदेश से ब्रज में निवास करने और-लुप्त तीर्थों का प्राकट्य करने के लिए घर से चल दिए। ढ़ाई वर्ष तक तीर्थाटन करते हुए सं० १६०२ में ये ब्रज में पहुँचे। इनके साथ भगवान का लाड़िलेय स्वरूप भी था। सर्वप्रथम ये गोवर्द्धन समीपस्थ राधाकुण्ड गए जहाँ श्रीचैतन्य—मतानुयायी श्रीकृष्णदास ब्रह्मचारी ने इन्हें अपने संप्रदाय में पात्रसात् करके

सम्प्रदाय के गूढ़ रहस्यों को हृदयंगम कराया। नारायणभट्ट में श्रीरंगदेवी की स्थिति होने से इंदुलेखासखी के अवतार ब्रह्मचारी जी और इनमें परस्पर अतिशय सख्यभाव रहता था। श्रीपाद सनातन गोस्वामी भी उस समय राधाकुण्ड में रहते थे। राधाकुण्ड में रह कर भट्ट जी ने ७ ग्रंथों का प्रणयन किया। वहाँ इन्होंने द्वादश वर्ष पर्यन्त निवास किया। अनन्तर वे ऊँचेगाँव चले गए वहाँ पितृआज्ञा से गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हुए। इनके दामोदर नामक पुत्र हुआ जिसे पितामह-भास्कराचार्य ने अपने देश ले जाकर विद्यादि पढ़ाई। पुनः व्रज में आने पर उन्होंने अपने पिताजी नारायणभट्ट से युगलोपासना-मंत्रोपदेश तथा सम्प्रदाय-रहस्यों को अवगत किया॥

श्रीनारायण-भट्ट ने व्रजमण्डल के विलुप्त-तीर्थों का स्थल निर्धारण और प्राकट्य किया। ऊँचेगाँव में रेवती-बलदेव प्रकट कर और बरसाने में लाड़िली लाल जी को प्रतिष्ठित कर उनकी सेवा प्रचलित की। व्रज प्रकाश-कारी भट्ट जी को तत्कालीन वैष्णव-समाज ने उनके कार्यों को लक्षित कर "व्रजाचार्य" पद से अभिषिक्त किया॥

भट्टजी के अनेक शिष्यों से इनके पुत्र दामोदरभट्ट, बलभद्री-भाठोंठिया, नारायणदासजी, मथुरादासजी, नारायणदास-श्रोत्री, दामोदरदास और वैश्यलालदास मुख्य थे। प्रतिदिन राधाकृष्ण कीर्तनादि करने का समस्तशिष्यों को उनका उपदेश था। वे शिष्यों को समर्पण-सेवा और भक्ति का ही महत्त्व बतलाते थे तथा "समाज" का आयोजन भी करते थे॥

अनन्तर भट्ट जी श्रीकृष्ण की आज्ञा से प्रेरित होकर व्रज के सुन्दर ब्राह्मण--बालकों को राधावेश, कृष्णवेश, गोपी-गोप वेशादि से सज्जित कराकर व्रज-मण्डल में रासादि लीलाओं

का अनुकरण कराने लगे। उनमें रंगदेवी का आवेश था। अतः उनकी प्रेरणा से गोचारण-लीला, कालियदमन-लीला, साँझी-लीला, दानलीला, मानलीला आदि लीलाओं का दिवस-नक्षत्र और स्थल के अनुरूप ही ये लीलानुकरण कराने लगे।

श्रीनारायण-भट्ट जी के द्वारा रचित ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं—

१ व्रजदीपिका, २ व्रजभक्तिविलास, (सं० १६०६) ३ व्रज-प्रदीपिका, ४ व्रजोत्सवचन्द्रिका, ५ व्रजमहोदधि, ६ व्रजोत्सवा-ह्लादिनी, ७ वृहतव्रजगुणोत्सव, ८ व्रजप्रकाश, ९ भक्तभूषण-सन्दर्भ, १० भक्तिविवेक, ११ भक्तिरसतरंगिणी, १२ साधन-दीपिका, १३ रसिकाह्लादिनी टीका १४ प्रेमांकुरनाटक, १५ लाडिलेयाष्टक, १६ धर्मप्रवर्त्तिनी १७ सिद्धान्तचूड़ामणि, १८ नीति-श्लोकानि, १९ व्रजरत्नदीपिका, २० भक्तिरहस्य, २१ राधाविनोद-काव्यस्य टीका॥

जानकी-प्रसाद-भट्ट कृत "श्रीनारायणभट्टचरितामृत" के अनुसार भट्ट जी ने ६० ग्रंथों की रचना की थी। [१] प्रथम ग्रंथ दक्षिण में उसके बाद के सात राधाकुण्ड में और शेष उँचाग्राम में निर्मित किए॥

भट्ट जी ने अपने ग्रंथों का प्रणयन प्रामाणिक रूप में किया है। वेद, उपनिषद्, स्मृति, संहिता, तंत्र, पुराणादि शास्त्रों का उन्होंने गम्भीर अनुशीलन किया था और सर्वत्र शास्त्र-संदर्भ देकर अपने विषय का प्रतिपादन किया है। शत-शत शास्त्रों को हृदयंगम कर भक्ति-सिद्धान्त, उपास्यतत्व और उपास्यस्थली का सम्यक् निरूपण कठिन तपस्या है जो नारायणभट्टजी ने सम्पन्न

---

[१] पृ० ३२, श्लोक १६०-१६१ प्रका० बाबाकृष्णदासजी "कुसुम सरोवरवाले"।

की है। गौड़ीय-आचार्यों के समान विशाल ग्रंथ-सृष्टि और महत् कार्यों का सम्पादन आधुनिक विद्वानों को विस्मय-विबोधक हो सकता है। किन्तु गुरुप्रसाद और युगल कृपा से वह सब कुछ भट्ट जी ने साकार किया।

श्रीनारायण-भट्टजा कृत प्रमुख ग्रंथ रत्नों का परिचय इस प्रकार है—

(१) व्रजभक्तिविलास-इस विशाल ग्रंथ में तेरह अध्याय हैं जिन में व्रज के समस्त वन, उपवन, तीर्थ-स्थल, कुण्ड, लीलास्थल, देवी-देवता तथा मंत्रों का सविस्तार वर्णन है। ग्रंथारम्भ में व्रज-भक्तिविलास को वाम-प्रदक्षिणा-दान-पूजा, वनयात्रा और व्रज-महिमा दिखाने वाले त्रयोदश अध्यायों से युक्त ग्रंथ कहा है। ग्रंथ में पुण्यप्रद व्रज के द्वार-समूह, द्वादश वन, द्वादश उपवन, द्वादश प्रतिवन, द्वादश अधिवन आदि का निरूपण है तथा ग्रंथ परिशेष में लेखक ने इसे श्रीकृष्ण के साक्षात अंग स्वरूप माना है। [१] राधाकुण्ड में रचित सप्त ग्रथों में से "व्रजोत्सव-चंद्रिका" का रचनाकाल सं १६१२ है॥

अत: अनुमानत: शेष ५ ग्रंथों में से चार "व्रजभक्तिविलास" से पूर्व की रचनाएं होनी चाहिए। "व्रजप्रकाश" का उल्लेख "व्रजभक्तिविलास" में हुआ है जिसमें ४८ वनों के देवताओं की प्रतिष्ठा का सविस्तर वर्णन होना बतलाया है। "व्रजोत्सवाह्लादिनी" का उल्लेख भी इस ग्रंथ में है (पृ० २०७) अत: यह भी पूर्ववर्ती रचना है। इसमें व्रजयात्रा और वनयात्रा का विधान वर्णित है। श्रीनारायणभट्टजी वनयात्रा के आदि प्रवर्तक ठहरते हैं॥

(२) व्रजोत्सवचंद्रिका-इसमें व्रज अभिषेकों के वृहद् रूप से वर्णन है इसमें मौलिक और संचायित ८००० श्लोक हैं। इस ग्रंथ की रचना सं०१६१२ में राधाकुण्ड पर हुई थी। इस ग्रंथ में भी नाना स्थलों पर नारायणभट्ट ने स्वयं को नारदावतार कहा है। उनके चरित्र का सूक्ष्म रूप में उत्थापन इसमें उपलब्ध है। बाबा जी कुसुमसरोवरवालों ने इसे (सं० २०१७ में) प्रकाशित करा दिया है॥

(३) व्रजोत्सवाह्लादिनी-[१] इसमें तिथियोंवार व्रजोत्सवों का सांगोपांग वर्णन है तथा स्वप्नों का शुभाशुभ विचार भी है। इसकी हस्तलिखित प्रति बरसाने के नित्यधाम प्राप्त गोस्वामी कुंजी लाल के सुपुत्र श्री युगल शास्त्री के पास सुरक्षित है॥

[४] वृहत् व्रजगुणोत्सव—यह एक सविशाल ग्रंथ है, जिसमें व्रज के समस्त ग्रामों के लीला-देवता और तीर्थों का विस्तृत वर्णन है। इसमें २६ हजार श्लोक बताए गए हैं। व्रजभक्ति-विलास के सप्तम अध्याय में श्रीनारायणभट्ट ने इसका उल्लेख किया है॥ [२]

(५) भक्तिविवेक-इसमें तीन प्रकरणों में नाम, धाम और भक्त के श्रेष्ठत्व का निर्णय किया गया है। क्रमश: श्रीकृष्ण की नाम-महिमा, व्रज धाम की महिमा तथा व्रजवासियों की महिमा का वर्णन है। यह ग्रंथ भी बाबाजी द्वारा प्रकाशित किया जा चुका है॥

(६) भक्तिरसतरंगिणी—इस ग्रंथ में ५ उल्लास हैं। इसमें साधनभक्ति, प्रेमाभक्ति, रसरूपाभक्ति, भक्तिसोपान, विभाव, अनुभाव, व्यभिचारिभाव, स्थायिभाव तथा भक्तिरसाश्रित द्वादश रसों का सम्यक् उदाहरणों के साथ विचार है। ये रचना रूप गो० कृत "भक्तिरसामृतसिंधु" तथा "उज्ज्वलनीलमणि" पर समादृत है। जयपुर स्थित श्रीगोविन्ददेवजी के मंदिर से तथा

---

[१] व्रजभक्तिविलास प्र० बाबाकृष्णदासजी कुसुमसरोवर-वाले पृ०२६३, श्लो० सं० २०।

[१] पृ० २५२ व्रजभक्तिविलास।
[२] पृ० १७७ व्रजभक्तिबिलास।

बरसाना निवासी गो० प्रियालाल जी के संग्रह से बाबाजी को उक्त ग्रंथ की दो प्रतियाँ मिली थीं। उन्हीं के आधार पर इसका मूल सहित हिन्दीअनुवाद उक्त बाबाजी ने प्रकाशित कियाहै। इस ग्रंथ में सम्प्रदाय की विशेष भावना के आधार पर ही परकीयाभावमयी उपासना का सन्निवेश है। श्रीपाद विश्वनाथ चक्रवर्ती ने अपनी उज्ज्वलनीलमणि की टीका में नारायणभट्ट की इस सरस भक्तिरसतरंगिणी से ही प्रमाण दिया है। वस्तुतः सम्प्रदाय की रसरीति हृदयंगम करने के लिए यह ग्रंथ बड़ा उपादेय आश्रय है ॥

(७) प्रेमांकुरनाटक—"श्रीनारायणभट्टचरितामृतम्" में इस रचना का उल्लेख है। [१]इसमें श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं का नाटकीय रूप प्रस्तुत है। जन्मादिलीला, दानलीला, मान-लीला, मगरोकनलीला, परस्पर गालिदानलीला, मटकीफोड़नी-लीला, वनविहार-साँझी-पुष्पचयन-हास—परिहास लीला, सखियों द्वारा निकुंज-रचना और निकुंजभेद आदि लीलाएं वर्णित हैं। बरसाने तथा समीपवर्ती स्थलों में श्रीनारायणभट्टद्वारा प्रवर्तित जो बूढ़ी लीला होती है वह इसी ग्रंथ के आधार पर है। व्रजोत्सवचंद्रिका ग्रंथ में भी बूढ़ीलीला का निर्णय उपलब्ध है। किन्तु अभी तक इस प्रेमांकुरकी कोई प्रति उपलब्ध न हो सकी है॥

(८) रसिकाल्हादिनी टीका—यह भागवत की टीका है। इसकी सम्पूर्ण प्रति अभी अप्राप्य है किन्तु दशमस्कन्ध के प्रारम्भ से रासपंचाध्यायी तक की प्रति मिल चुकी है। यह बड़ी

[१] पृ० ८२, श्लो० सं० ३१-४२

विलक्षण तथा रस-भाव पूर्ण रचना है। संकेत में नारायणभट्ट जी वीणा लेकर अपने प्रकटित राधारमण के विग्रह के समक्ष रासपंचाध्यायी गाया करते थे तभी भागवत की टीका की प्रेरणा उन्हें हुई थी। बाबा जी ने इस ग्रंथ का उद्धार कर रासपंचाध्यायी के मूल मात्र को प्रकाशित करा दिया है ॥

(९) भक्तभूषणसन्दर्भ—जीव, जगत् और ब्रह्म का निरूपण करने वाला यह एक परम दार्शनिक ग्रंथ है जो तीन प्रकरणों में विभक्त है। यह भी बाबाजी के द्वारा प्रकाशित हो चुका है॥

(१०) साधनदीपिका-प्रस्तुत ग्रंथ हरिभक्तिविलास (श्रीगोपालभट्टगो० विरचित)का संक्षिप्त प्रतिरूप है। साधनदीपका केकथ्यके विषय में श्रीभट्ट जी बताते हैं कि "मंत्र-शास्त्रों के अनुसार सदाचार्योंके सदाचार अवरोध से साधनों के भावों को प्रकाशित करने वाला यह ग्रंथ है।" समस्त ग्रंथ सात प्रकाशों (अध्यायों) में विभक्त है। प्रथम प्रकाश में-गुरुशरणागति अनिवार्य बताते हुए गुरु के लक्षण तथा निषेध लक्षण बतलाए हैं। अपने विचारों के पोषण में ख्यात शास्त्रों के उद्धरण दिए हैं। हेतु वादियों के अनुसरण को वर्जित बतलाया है। शिष्य के लक्षणों का सविस्तार उल्लेख किया गया है। गुरुशिष्य विषयक भारतीय जीवन दर्शन को इस रचना में आकलित कर सदाचार की प्रतिष्ठा की है। नारायणभट्ट जी की उदार दृष्टि का इस उल्लास में परिचय प्राप्त होता है। सभी वर्गों, वर्णों के लोग दीक्षा के अधिकारी कहे गए हैं। भारतीय नव निर्माण में इस उदारचेता की मान्यता उत्साह देने वाली हैं।

इसी उल्लास में लीलानुकरण और भक्ति सहित गायन-नर्तन का विधान उपलब्ध होता है (पृ० ३२)। गुरुकृत्यों और दीक्षा से सम्बन्ध विषयों का विधान वर्णित है ॥

द्वितीयप्रकाश में-गुरु वन्दन-स्मरण, सदाचार, जागरण, शौच-स्नान, तिलक-माल्य धारण और उर्द्ध्वपुण्ड्र का महत्व वर्णित है। समस्त वर्णों के लिए चक्रादिधारण की व्यवस्था दी हुई है ॥

तृतीयप्रकाश में-शालिग्राम स्वरूप विवेचन, पूजा में अधिकार का निर्णय, वैष्णवत्व, शुद्धिविवेचन, मूर्तिसेवा के षोडश प्रकार, भागवतमाहात्म्य का विवेचन, कृष्णपूजा, वैष्णव-लक्षण-विवेचन, पंचकालसेवा, प्रपत्ति-विवेचन, वैष्णव-महिमा प्रमाण पुरस्सर चर्चित है ॥

चतुर्थप्रकाश में-पक्षपूजा, मासकृत्यनिर्णय और पंचम प्रकाश में-मासानुकूल पूजाविधान तथा दिवस विशेषों के करणीय-कृत्यों की चर्चा है ॥

षष्ठप्रकाश में-मूर्ति आविर्भाव का प्रकार, मूर्तिप्रतिष्ठा, आचार्य और उसके लक्षण, मण्डपादिनिर्माण, मंदिरनिर्णय, मुद्राविवेचन, पुरश्चरण, भक्ष्यद्रव्य, निषेधवस्तु, आसन, माल्य, जप-संख्या, जप विधान, प्रकार भेद, सिद्धमंत्र और होमद्रव्यों का वर्णन है ॥

सप्तमप्रकाश में-कृष्णसेवा, वैष्णवसेवा, सूतकादि विचार, सेवाविधान, पाषंडि विवेचन, नाम-माहात्म्य, अनन्यता, एकाग्रता भाव-विवेचन, अपराध-विवेचन, कृष्ण नाम रूप और मूर्तियों का विवेचन हैं ॥

एक शतक से अधिक आर्ष ग्रंथों के प्रमाण श्रीभट्टजी ने उठाए हैं यह उनकी मेधावी ज्ञान गरिमा का परिचायक है।

नीचे हम नारायणभट्ट जी के महत्वपूर्ण कार्यों का विवरण देते हैं—(१) मथुरामण्डल में गोप्य तीर्थों का उद्धार। इसकी पुष्टि भक्तमाल और ध्रुवदास जी की भक्तनामावली से होती है-

गोप्य स्थल मथुरा मण्डल, जिते वाराह बखाने।
ते किए नारायण प्रगट, प्रसिद्ध पृथ्वी में जाने ॥

(अयोध्या निवासी रूपकला संस्करण पृ० ५८६ में)

भट्टनारायण अति सरस व्रज मण्डल सो हेत।
ठौर ठौर रचना करी, प्रगट कियौ संकेत ॥ (भक्तनामावली)

(२) व्रज के वन, उपवन, तीर्थ, देवी-देवताओं की महिमा तथा भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति के प्रचारार्थ ५२ ग्रन्थों का प्रणयन।

(३) रासलीलानुकरण का सर्व प्रथम प्राकट्य, रास-प्रचार तथा रास-मंडलों का निर्माण। इससे व्रज की गान-वाद्य और नृत्यनाट्य कलाओं की उन्नति हुई।

(४) वनयात्रा तथा व्रजयात्रा का प्रारम्भ। व्रजभक्ति-विलास तथा बृहद्व्रजगुणोत्सव ग्रंथ इसके प्रमाण स्वरूप हैं।

(५) रेवती-रमण बलदेव और लाडिली स्वरूप की प्रतिष्ठा।

(६) समाज का आयोजन।

बाबाजी महाराज ने शताधिक ग्रंथों का प्राकट्य कर उन्हें प्रकाशित करवाया और नारायणभट्टजी के कृतित्व को विद्वद् समाज के समक्ष उपस्थित किया। नारायणभट्टजी के विषय में प्रामाणिक रूप से किसी को ज्ञात ही नहीं था बाबाजी ने अथक परिश्रम करके उनके जीवनवृत्त का अनुसंधान देने वाले ग्रंथों को उपलब्ध किया और उनके कृतित्व को अज्ञात-स्थलों से खोज निकाला। कई ग्रंथों का हिन्दी अनुवाद भी किया और कुछ समय और अर्थ के अभाव में मूलमात्र प्रकाशित कर दिए ताकि यह ग्रंथ सम्पत्ति विनष्ट न हो। नारायणभट्ट के अप्राप्य ग्रंथों को समग्रतः उन्होंने ही प्रकाशित किया। इधर साधनदीपिका ग्रंथ भी उनकी निरन्तर खोज का ही परिणाम है। इस ग्रंथ को प्रकाशित कर उन्होंने वैष्णव समाज की अविस्मरणीय सेवा की है। रागमार्ग की साधना को सम्यक् रूप से अधिगम्य कराने के लिए विधि का विधान भी ग्राह्य होता है। साधनदीपिका इस अभाव की पूर्ति करती है। वह वस्तुतः रागानुगाभक्ति को उप-

लब्ध कराने की साधनदीपिका ही है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि नारायणभट्ट ने जिस प्रकार व्रज के लुप्त तीर्थों, वनों, उप-वनों, देवी-देवताओं के मर्म को समझाया उसी प्रकार चैतन्य-सम्प्रदाय के दुर्द्धर रसशीर्ष कवि उन नारायणभट्ट के बिलुप्त ग्रन्थों का उद्धार कर सत्यानुसंधान का मार्ग प्रशस्त किया है। विद्वानों को यह विचार करने का प्रामाणिक अवसर मिला है कि वनयात्रा तथा व्रजयात्रा के प्रादुर्भाव के साथ रासलीलानु-करण का श्रेय भी नारायणभट्ट को ही दिया जा सकता है। समस्त ऐतिह्य तथा निष्पक्ष-तर्कना से यही सुसिद्ध होता है कि चैतन्य-सम्प्रदाय के आनुगत्य में सम्प्रदाय की भावना और सैद्धा-न्तिक निष्ठा के अनुरूप श्रीनारायणभट्ट द्वारा सर्व प्रथम उक्त कार्य सम्पन्न हुए।

मूल ग्रंथ को लिपिबद्ध करने में बाबाजी महाराज ने देहा-तीत परिश्रम किया है। उनकी क्षीण-काया में कार्यशक्ति का अक्षय स्रोत है कि बहुत-सी संस्थाएं भी उनके ग्रंथ प्रकाशन योगदान को देखकर लज्जित हो रहेंगी। फिर बंगाली होकर सं-स्कृत निष्ठ शब्दावली में ग्रंथ के मर्म को आहत किए बिना ऐसा अनुवाद हिन्दीजगत् को भारी प्रेरणा है। उस साधनदीपिका में कहीं कहीं व के स्थान पर ब का प्रयोग बाबाजी महाराज की बोली का प्रभाव ही सूचित करता है जो उनकी देन के आगे नगण्य ही है। वस्तुतः स्वभाव गुण ही होता है और फिर व्रजभाषा में ब और व का भेद भी नहीं है। आशा है वैष्णव समाज तथा विद्वत् समाज इस ग्रंथ का अनुशीलन करेगा।

नरेश बंसल—

हिन्दी विभागाध्यक्ष, श्रीगणेशडिग्री कोलेज

(कासगंज)

—श्रीलाडिलेयाष्टकम्—



श्रीमद्व्रजेशतनयं धृतमानवाङ्गं
सर्वाङ्गसुन्दरवरं कटिपीतवस्त्रम् ।
ब्रह्मादिदेवमुनिवन्द्यपदारविन्दं
श्रीलाडिलेयललितं सततं भजामि ॥१॥

तिर्य्यग् किरीटमुकुटं बनमालया वै
संशोभमानवपुषं हसितेक्षणाढ्यम् ।
देदीप्यमानमकराकृतिकुण्डलञ्च
श्रीलाडिलेयललितं सततं भजामि ॥२॥

आनम्रजानुयुगलं व्रजभूमिकाया—
मुत्थाय दक्षिणकरं ससरीसृपन्तम् ।
पादारविन्दयुगले धृतनूपुरञ्च
श्रीलाडिलेयललितं सततं भजामि ॥३॥

कौमारदर्शितसुखं वपुषा स्वपित्रो-
र्बालैश्च क्रीडनपरं समुदारयन्तम् ।
मुग्धास्मितं निजभुजे धृतमोदकञ्च
श्रीलाडिलेयललितं सततं भजामि ॥४॥

श्रीमद्बलानुजमतीव-प्रियस्वरूपं
सौख्यप्रदं निजजनानतिमायन्तम् ।
श्यामाङ्गमद्भुततरं सुमुखं सुनेत्रं
श्रीलाडिलेयललितं सततं भजामि ॥५॥

सुभ्रू नसं सुभुजदण्डपरागदामं
सौष्ठवरूपमसितेक्षणचारुहासम् ।

काञ्च्या पराङ्गधृतहारमनोहरन्तं
श्रीलाडिलेयललितं सततं भजामि ॥६॥

गोवत्सखेलनपरं गलमौक्तिहारं
बंशीधरं सुघटनृत्यकरं वरञ्च ।
गोपीगृहेषु नितरां नवनीतचौरं
श्रीलाडिलेयललितं सततं भजामि ॥७॥

ध्यानास्पदं जगति पूर्णतमावतारं
सन्तं परं निखिलजीवनिकायकेतुम् ।
लीलाकदम्बमतिलङ्घितशत्रुवर्गं
श्रीलाडिलेयललितं सततं भजामि ॥८॥

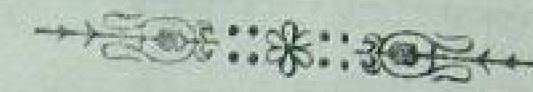
श्लोकाष्टकं हि सुमुखं समुदा स्वचित्ते
सन्धाय नित्यममलं हरिभक्तिदञ्च ।
देवालये पठति तस्य हरिः स्वयं च
मोक्षप्रदो भवति नूनमदभ्रबुद्धेः ॥६॥

इति श्रीनारायणभट्टगोस्वामिविरचितं
श्रीलाडिलेयाष्टकं समाप्तम् ॥

* व्रजोद्धारसमये श्रीनारायणभट्टं प्रति सहायकस्य, तं प्रति रासलीलानुकरणप्रेरयितुः श्रीलाडिलेयस्वरूपस्याष्टकमिदं श्रीनारायणभट्टेन विरचितम् । स लाडिलेयः श्रीनारायणभट्टस्य सेवितविग्रहः, यः अद्यावधि नीमरानेति नगर्यां (अलवरराज्ये) आसीत् । अधुना पुनः व्रजवासिन आनन्दयितुं उच्चग्रामे बलदेवस्य मन्दिरे आगत्य विराजतेस्म । वर्षाणस्थगोस्वामिप्रियालालमहोदयसकाशात् इदमष्टकं प्राप्तम यत् "नीमराना" नगर्यां लाडिलेयस्य मन्दिरे आसीत् ।

❀ साधनदीपिका ❀

*** श्रीराधागोविन्ददेवौ जयतः ***



श्रीकृष्णं परमानन्दं सच्चिदानन्दरूपिणम् ।
वन्दे गुरुं कृपासिन्धुं बैष्णवाचारसिद्धये ॥१॥
सदाचाराविरोधेन मन्त्रशास्त्रानुसारतः ।
साधनस्य हि भावस्य दीपिकेयं प्रतन्वते ॥२॥
शङ्करं शङ्करं नत्वा सर्व्वशास्त्रार्थवेदिनम् ।
सेवितं सर्व्वधर्म्माणां कान्यकुब्जकुलोद्भवम् ॥३॥

अब व्रजाचार्य श्रीनारायणभट्ट अपने विरचित इस साधनदीपिका नामक प्रस्तुत ग्रन्थ के मङ्गलाचरण में अपने गुरु कृष्णदास ब्रह्मचारी की बन्दना करते हैं। यथा:—हम बैष्णवों के सदाचार सिद्धि के लिए सच्चिदानन्द स्वरूप, परमानन्दमय, कृपासिन्धु गुरुदेव श्रीकृष्ण (श्रीकृष्णदासब्रह्मचारी) की बन्दना करते हैं ॥१॥

मन्त्र-शास्त्रों के अनुसार, सद् आचार्यों के सदाचार अविरोध से साधनों के भावों को प्रकाशित करने वाला यह साधनदीपिका नामक ग्रन्थ लिखा जा रहा है ॥२॥

समस्त-शास्त्रों के अर्थों को जानने बाले, समस्त भक्ति-धर्मों का याजन करने बाले, कान्यकुब्ज-कुल में उत्पन्न, मङ्गल स्वरूप शङ्कर नामक महानुभाव को नमस्कार करके ॥३॥

वक्ष्ये प्रकाश्याहं तस्मिन्गुरुर्शिष्यादिलक्षणम् ।
दीक्षां विना भगवतो भक्तिर्न स्यात्कथञ्चन ।।४।।
भक्तेस्तु पुरुषार्थत्वं शास्त्रविद्भिर्निरूपितम् ।
सा च लभ्या गुरोरेव नान्यथा दृश्यते क्वचित् ।।५।।
कृपा यस्य भवेत्पुंसः कृष्णस्यामिततेजसः ।
तस्यैवाचार्य्यसङ्गः स्यात्साध्यसाधनभेदकृत् ।।६।।

तत्र भगवद्भक्तौ गुरूपसत्तिकारणमन्वयव्यतिरेकाभ्यां, तत्रान्वयश्रुत्या-"मातृवान्पितृवानाचार्य्यवान् पुरुषो वेद", "परीक्ष्य लोकान्कर्म्मचितान्ब्राह्मणो निर्व्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन । तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्" ।
श्रीभागवतेनापि—

"तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपसमाश्रयम्" ।।

व्यतिरेकश्च—

"नैषा तर्केण मतिरपनेया प्रोक्तान्येनैवसुज्ञानाय प्रेष्ठा",

उस साधनदीपिका नामक ग्रन्थ में गुरु एवं शिष्यादिकों के लक्षण प्रकाशित रूप से हम बिचार करेंगे, बिना दीक्षा के किसी भी प्रकार भगवान की भक्ति नहीं होती है ।।४।।

शास्त्रज्ञाताओं ने भक्ति के पुरुषार्थत्व का निरूपण किया है, वह भक्ति गुरुदेव ही से लाभ होती है, कहीं भी अन्य प्रकार से नहीं देखने में आती है ।।५।।

अपरिमित तेज-वाले, परम-पुरुष श्रीकृष्ण की जिसके प्रति कृपा होती है, उसी व्यक्ति को साध्य-साधन विभेद करने वाला (अर्थात् पृथक् बतलाने वाला) आचार्यसङ्ग प्राप्त होता है ।।६।।

शिवः पार्वतीं प्रति—

"अदीक्षितस्य वामोरु कृतं सर्व्वमनर्थकम् ।
पशुयोनिमवाप्नोति दीक्षाहीनो नरो मृतः ।।
विना श्रीवैष्णवीं दीक्षां प्रसादं सद्गुरोर्विना ।
विना श्रीवैष्णवं धर्म्मं कथं भागवतो भवेदि"ति।।

अतो ह्यधिकारसंपादनार्थमवश्यं च दीक्षा ग्राह्या तदुक्तं नारदपञ्चरात्रे षोडशे पटले भगवद्वाक्यम्—

"शृणु दीक्षां प्रवक्ष्यामि शिष्यानां भावितात्मनाम् ।
देवाग्निगुरुपूजादावधिकारो जया भवेत्" ।।

पहले भगवान् की भक्ति में गुरु-शरणागति ही कारण रूप है उस का अन्वय-व्यतिरेक रूप में बर्णन करते हैं । अन्वयमुख में-श्रुति में कहा गया है कि-मातृभक्त पितृभक्त तथा आचार्य्य-भक्त अर्थात् गुरुभक्त पुरुष ही ब्रह्म को जानता है । ब्राह्मण पहले शास्त्रविहित कर्मों को जो कि इस लोक में पुण्यादि देने वाले हैं उनकी परीक्षा कर अर्थात् बे सब अनित्यतुच्छ फल के दाता हैं ऐसा जान कर उस ब्रह्म को जानने के लिये हाथ में समि प्रभृति उपहार रखकर बेदज्ञ, ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु के समीप उपस्थित होवें । अर्थात् उन गुणों से युक्त गुरु के शरण में आवें । श्रीभागबत में भी कहा है-अतः जिज्ञासु उत्तम श्रेय प्राप्ति के लिये शब्द ब्रह्म एवं परब्रह्म में पारदर्शी तथा परब्रह्म श्रीकृष्ण में भक्ति परायण श्रीगुरुदेब का आश्रय ग्रहण करें ।। व्यतिरेकमुख से-ज्ञान प्राप्त इस बुद्धि को तर्क के द्वारा परिभूषित न करें । शिवजी पार्व्वती के प्रति बर्णन करते हैं कि-हे वामोरु ! अदीक्षित-व्यक्ति के समस्त कृत्य अनर्थक माना जाता है । दीक्षारहित व्यक्ति मर कर पशु-योनि को प्राप्त होता है। बैष्णवीदीक्षा के

इत्यादिना गुरूपसत्तेर्नित्यत्वं कर्म्मणि शुचित्वं तत्काल-जीवितवत् । एकादशे च—

मदभिज्ञं गुरुं शान्तमुपासीत मदात्मकमिति ।

आगमेऽपि—

"द्विजानामनुपेतानां स्वकर्म्माध्ययनादिषु ।
यथाधिकारो नास्तीह स्याच्चोपनयनादिषु ॥
तथात्रादीक्षितानां तु मन्त्रदेवार्च्चनादिषु ।
नाधिकारोऽस्त्यतः कुर्य्यादात्मानं शिवसंस्तुतमि"ति ॥७॥

अथ गुरुलक्षणं शारदायाम्—

"मातृतः पितृतः शुद्धः शुद्धभावो जितेन्द्रियः ।
सर्वागमानां सारज्ञः सर्व्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥

बिना, सद्गुरु प्रसाद के बिना तथा वैष्णव-धर्म्म के बिना मनुष्य किस प्रकार भागवत माना जा सकता है अर्थात् नहीं । अतएव भगवद्सेवाधिकार संपादन के लिये दीक्षा-ग्रहण अवश्य होना चाहिये । नारदपञ्चरात्र के षोडश-पटल में भगवान् का बचन यथा-आत्म भावना करने बाले शिष्यों के प्रति दीक्षा-विधान का कथन करते हैं सुनो, जिससे देवता-अग्नि-गुरु-पूजादि में अधिकार प्राप्त होता है । इत्यादि बचन से गुरुशरणागति का नित्यत्व एवं समस्त शुभकर्म में पवित्रत्व सिद्ध होता है । एकादश स्कन्ध में भगवान् ने कहा है कि-मुझ को जानने बाला, शान्त, मदात्मक गुरु की उपासना करें । आगमशास्त्र में कहा है-अनुपनीत ब्राह्मणों के अपने-कर्म्म अध्यापनादि तथा उपनयनादि में जिस प्रकार अधिकार नहीं है ठीक उसी प्रकार यहाँ अदीक्षित व्यक्तियों के मन्त्र-देवतार्च्चनादि कार्य्य में अधिकार नहीं है । अतः अपने को दीक्षित करना चाहये ॥७॥

परोपकारनिरतो जप-पूजादितत्परः ।
अमोघवचनः शान्तो वेदवेदार्थपारगः" ॥

रामार्च्चनचन्द्रिकायाम्—

शान्तो दान्तः कुलीनश्च विनीतः शुद्धवेषवान् ।
शुद्धाचारः सुप्रसिद्धः शुचिर्दक्षः सुबुद्धिमान् ॥

मन्त्रमुक्तावल्याम्—

अवदातान्वयः शुद्धः स्वाचिताचारतत्परः ।
आश्रमी क्रोधरहितो वेदवित्सर्वशास्त्रवित् ॥

अगस्त्यसंहितायाम्—

तत्त्वज्ञो यन्त्रमन्त्राणां मर्मभेत्ता रहस्यवित् ।
पुरश्चरणकृद्धोम-मन्त्रसिद्धः प्रयोगवित् ॥
तपस्वी सत्यवादी च गृहस्थो गुरुरुच्यते ।

अब गुरु का लक्षण कहते हैं-शारदातिलक में कहा है-माता एवं पिता से शुद्धरूप से उत्पन्न, शुद्धभाव बाला, जितेन्द्री, समस्त आगमों के सार ग्रहण करने बाला, समस्त शास्त्रों के अर्थों को जानने बाला, निरन्तर परोपकारी, जप-पूजादि में तत्पर, अमोघ बोलने बाला, शान्त तथा वेद-वेदार्थ में पारंगत गुरुपदबाच्य है । रामार्च्चनचन्द्रिका में कहा है-शान्त, इन्द्रिय दमनशील, कुलीन, विनीत, पवित्रवेषधारी, शुद्ध आचार-बाला, सुप्रसिद्ध, शुचिपरायण, समस्त कर्म में दक्ष, वुद्धिमान् व्यक्ति गुरुपदबाच्य है । मन्त्रमुक्तावली में कहा गया है यथा-पवित्र-कुल में उत्पन्न, शुद्ध, निजाचारपरायण, आश्रमविशिष्ट, क्रोधरहित, वेदके ज्ञाता, सर्वशास्त्रज्ञ गुरु पद बाच्य है । अगस्त्य-संहिता में कहा है-तत्वज्ञ, यन्त्र-मन्त्र के रहस्य को जानने बाला, पुरश्चरण-कारी, हवन-मन्त्रादि में सिद्ध, तन्त्र-मन्त्रों के प्रयोग

शाण्डिल्य ऋषीन्प्रति—

य: सम: सर्वभूतेषु बिरागी वीतमत्सर: ।
जितेन्द्रिय: शुचिर्दक्ष: सर्वाङ्गावयबान्वित: ॥८॥

अथ निषिद्ध: बिष्णुस्मृतौ—

"परिचर्य्या-यशो-लाभलिप्सु: शिष्याद्गुरुर्न हि" ।
"कामाद्वा लोभतो वापि यो गृह्णीयाददीक्षया ।
तस्मिन्गुरौ सशिष्ये च देवताशाप आपतेत्" ॥

पाद्मे—

महाभागवतश्रेष्ठो ब्राह्मणो वै गुरुर्नृणाम् ।
सर्वेषामेव लोकानामसौ पूज्यो यथा हरि: ॥
महाकुलप्रसूतोऽपि सर्वयज्ञेषु दीक्षित: ।
सहस्रशाखाध्यायी च न गुरु: स्यादवैष्णव: ॥

तत्त्वसागरे—

अरोमा वहुरोमा च निन्दिताश्रमसेवक: ।
कालदन्तोऽसितौष्ठश्च दुर्गन्ध-श्वासवाहक: ।
वह्वाशी दीर्घसूत्री च विषयादिषु लोलुप: ।
हेतुवादरतो दुष्टोऽवाग्वादि गुणनिन्दक: ।

को जानने बाला, तपस्वी, सत्यवादी गृहस्थ भी गुरु कहा जा सकता है। शाण्डिल्य ने ऋषियों के प्रति कहा है—जो समस्त भूतों में समान-भाव रखने वाला है, विरागी है, मत्सरशून्य है, जितेन्द्रिय है, शुचि विशिष्ट है, दक्ष है एवं समस्त अङ्ग-प्रत्यंगों से सुगठित है वह गुरु पद बाच्य है ॥८॥

गुरु के निषेधलक्षण यथा-बिष्णुस्मृति में कहा है—शिष्य से सेवा-यश-लाभादि की इच्छा रखने बाला, गुरु नहीं है। कामना रखकर, लोभ रखकर जो शिष्य को दीक्षा देता है उस

दुष्टलक्षणसम्पन्नो यद्यपि स्वयमीश्वर: ।
वहुप्रतिग्रहासक्त आचार्य्य: श्रीक्षयावह: ॥

हेतुवादिनश्च हयशीर्षे—

जैमिनि: सुगतश्चैव नास्तिको नग्न एव च ।
कपिलश्चाक्षपादश्च षडेते हेतुवादिन: ॥

एतन्मतानुसारिणां नानुसरेदित्यर्थ: । पूर्वोक्तलक्षणयुक्त एतल्लक्षणहीनो ब्राह्मण एव गुरु: । नारदपञ्चरात्रौ यत्तु जयाख्य-संहितायां-क्षत्रियादीनामथाभ्यनुज्ञानं हीनवर्णै: । तथाहि—

क्षत्रविट्शूद्रजातीनां क्षत्रियोऽनुग्रहे क्षम: ।
क्षत्रियस्यापि च गुरोरभावादीदृशो यदि ।
वैश्य: स्यात्तेन कार्य्यश्च द्वयोर्नित्यमनुग्रह: ।
सजातीयेन शूद्रेण तादृशेन महामते ! ।
अनुग्रहाभिषेकौ च कार्य्यौ शूद्रस्य वै सदा ।
उपायेन भयाल्लोभात्सर्वेषु स्याद्द्विजोत्तम ॥ इत्यादि

गुरु में शिष्य के साथ देवता शाप आ पड़ता है। पद्मपुराण में कहा है—महाभागवतश्रेष्ठ ब्राह्मण ही मनुष्यों का गुरु माना जाता है। वह श्रीहरि की भाँति समस्त लोगों में पूजनीय है। महान-कुल में उत्पन्न होने पर भी समस्त यज्ञ में दीक्षित होने पर भी, तथा वेदों की सहस्र-शाखा के अध्ययन करने पर भी यदि अवैष्णव है तो वह गुरु नहीं माना जा सकता है। तत्वसागर में यथा-लोमरहित, बहुलोमबाला, निन्दित-आश्रम की सेवा करने बाला, काला दन्तबाला, कालाहोंठबाला, दुर्गन्धिश्वास को बहानेबाला, वहुत भोजन करनेबाला, दीर्घसूत्री, विषयलोलुप, हेतुबाद में रत, दुष्ट, मिथ्याबादी, गुणों की निन्दा करने बाला, दुष्टलक्षणों

तत्तु क्षत्रियादीनां भक्तियुक्तानामन्यसंसारनाशकसामर्थ्य-प्रतिपादनपरं न तु गुरुत्वं गुरोरपि तथा फलकत्वात् । यद्वा क्षत्रियादीनां ब्राह्मणसेवया जन्मान्तरे प्राप्तब्राह्मणत्वेनैव कृतार्थत्व-मनुग्राहकत्वं चेति भगवद्दीक्षया भवितव्यम् । यद्वा–"अवैष्णवानां संलाप-बन्दनादि विवर्जयेत । सहस्रशाखाध्यायी च न गुरुः स्याद्वैष्णवः" ।। इति पाद्मवचनमवलम्ब्य क्रियादिना श्रेष्ठे-ऽथ वैष्णवे विद्यमाने वैष्णवादेव दीक्षा ग्राह्या, यद्वा आसन्न-मरणे ब्राह्मणवैष्णवाभावे वैष्णवमात्रात् दीक्षा ग्राह्या यथा श्रुत-मेव वा भावविशेषाविशेषाभ्यां व्यवस्थयेत्यलमतिविस्तरेण ।।६।।

से युक्त, बहु प्रतिग्रह में आसक्त स्वयं ईश्वर भी गुरु पदवाच्य नहीं है। इस प्रकार का गुरु श्री को नष्ट करने वाला है। हयशीर्ष में हेतुवादियों का निर्णय-जैमिनि, सुगत, नास्तिक, नग्न, कपिल, अक्षपाद, ये छै हेतुवादी हैं। अर्थात् ब्रह्म को जगत् कारण-रूप में नहीं मानते हैं। इन मतों के अनुसरण करने वालों का अनुसरण न करें । पूर्व कथित लक्षणों से युक्त तथा इन लक्षणों से रहित ब्राह्मण गुरु हो सकता है। नारदपञ्चरात्र की जयाख्यसंहिता में--हीनवर्णों के प्रति क्षत्रियादि का अनुग्रह करना उल्लेख है । यथा-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र इन जाति को अनुग्रहीत करने में क्षत्रिय समर्थ है । यदि उस प्रकार क्षत्रिय गुरु का अभाव हो तो वैश्य भी वैश्य-एवं शूद्र दोनों को अनुग्रहीत कर सकता है । समान जाति शूद्र के द्वारा शूद्र का अनुग्रह एवं अभिषेक हो सकता है। हे महामते द्विजोत्तम ! सुनो, उपाय (नाना चेष्टा) से, भय से एवं लोभ से समस्त--कर्म्म में सब कोई अनुग्रह करता है। भक्ति परायण-क्षत्रियादिओं को अन्य व्यक्ति के संसार नाश-

पद्मपुराणोत्तरखण्डे—

आचार्य्यो वेदसम्पन्नो विष्णुभक्तो विमत्सरः ।
मन्त्रज्ञो मन्त्रभक्तश्च सदा मन्त्राश्रयः शुचिः ।
अनन्यसाधनश्चैव तथानन्यप्रयोजकः ।
ब्राह्मणो वीतरागश्च क्रोधलोभविवर्जितः ।। इति ।

करने में सामर्थ्य हो सकता है परन्तु उन में गुरुत्व नहीं है, गुरु में संसार नाशकत्वादि फल मौजूद है । अथवा ब्राह्मण सेवा से क्षत्रियादिओं को जन्मान्तर में ब्राह्मणत्व प्राप्ति है अतः उन में कृतार्थत्व व अनुग्राहकत्व आ जाता है । कृतार्थत्व व अनुग्राहकत्व ये दोनों भगवद्दीक्षा से होते हैं । अथवा अवैष्णवों के साथ आलाप-बन्दनादि का बर्ज्जन करें । सहस्रशाखा—ध्यायी अवैष्णव गुरु नहीं हो सकता है इस पद्मपुराण के बचन का अबलम्बन कर—क्रियादि में श्रेष्ठ वैष्णव के विद्यमान रहने पर वैष्णव से ही दीक्षाग्रहण करनी चाहिये । अथवा आसन्न-मरण में (निकट में मरण उपस्थित होने पर) यदि ब्राह्मणवैष्णव न मिले तो वैष्णव से अर्थात् किसी जाति के वैष्णव से दीक्षा—ग्रहणकर लें। ब्राह्मणवैष्णव के अभाव व उपस्थिति में इस प्रकार व्यवस्था की गई है ।। अब यहाँ इसका अधिक विचार नहीं किया जा रहा है ।। ६ ।।

पद्मपुराण के उत्तरखण्ड में कहा है-वेदपरायण, विष्णुभक्त, मत्सररहित, मन्त्रज्ञ, मन्त्रभक्त (मन्त्रनिष्ठ) निरन्तर मन्त्राश्रयी, पवित्र, अनन्य साधक, अन्य प्रयोजन न रखने वाला, ब्राह्मण, वीतराग, क्रोध-लोभविवर्जितजन आचार्य्यपद बाच्य है । पद्म-पुराण के उत्तरखण्ड में बत्तीसवे अध्याय में कहा है–जो वैष्णव मन्त्र द्वय का अर्थात् राधा-कृष्ण, लक्ष्मी-नारायण सीतारामादि

पाद्मे उत्तरखण्डे द्वात्रिंशे—

यस्तु मन्त्रद्वयं सम्यगध्यापयति बैष्णव: ।
स आचार्य्यस्तु बिज्ञयो भवबन्धबिदारक: ॥
द्वयोपदेशपूर्बेण सर्व्बकर्म्म समाचरेत् ।
द्वयाधिकारी न भवेत् सर्वमन्त्रेषु नार्हति ॥

तथा श्रीभागवतबिधानाच्च । "शाब्दे परे च निष्णात" इत्युक्ते: । किञ्च क्षत्रियादीनां यद्यधिकबिधानं स्यात्तर्ह्यग्रे निषेधं न कुर्य्यात् । तथाहि—

"क्षत्रविट्शूद्रजातीनामित्यादि श्लोक-निषेधात् ।
उपायेन भयाल्लोभात्सर्वेषु स्याद्‌द्विजोत्तम ! ।
बर्णोत्तमेऽथ गुरौ च सति वा बिश्रुतेऽपि च ।
स्वदेशतो बान्यत्रापि नेदं कार्य्यं कदाचने"ति ॥

के "सम्मिलित" मन्त्र का अध्यापनादि करता है वह भव-बन्ध बिदारण करने वाला आचार्य्य माना जाता है। दोनों मन्त्रों का उपदेश करते हुए समस्त कर्म्म का आचरण करें तथा दोनों के पृथक् अधिकारी न हों। समस्त मन्त्रों में अधिकार नहीं हो सकता है। भागवत में बिधान है कि—शब्द ब्रह्म एवं पर ब्रह्म में निष्णात गुरु पद बाच्य है। और कहते हैं कि—यदि क्षत्रियादि के बिशेष रूप से बिधान होता तो आगे निषेध नहीं करते। जैसा कि कहा—"क्षत्रिय-वैश्य-शूद्रजाति का इत्यादि श्लोक में इन जातियों का गुरुत्व निषेध है। उपाय अर्थात शिष्य बनाने की चेष्टा से, भय से, लोभ दिखा कर क्षत्रियादि गुरु बनते हैं। परन्तु यथार्थ में नहीं। उत्तमबर्ण के गुरु के बिद्यमानता में, अथबा प्रसिद्धि प्राप्त गुरु के बिद्यमानता में, अपने देश में व अन्यत्र अन्य जातियों को कभी गुरु बनाना

किञ्च श्रोत्रियमित्यादिपदेन ब्राह्मणस्यैवाधिकारित्वं श्रुत्या बाध्यते श्रुतिस्मृत्योर्बिरोधे श्रुतेरेव गरिष्ठत्वात् । अन्यच्च श्रीभागवतस्य श्रुतिफलरूपत्वेनोक्ते चोपब्रह्मणस्यैबाधिकार: । अयं तु फलितार्थ: । यस्तु भक्तत्वेन संमतोऽनीत्या विरुद्धग्राही स गुरुर्दूरतर एव सेव्य: । तदुक्तं पञ्चरात्रे—

यो बक्ति न्यायरहितमन्यायेन श‍ृणोति य: ।
तावुभौ नरकं घोरं ब्रजत: कालमक्षयमिति ॥

भक्तिबैष्णवद्वेषी चेत्सर्वथा त्याज्य: । उक्तं च—

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्य्याकार्य्यमजानत: ।
उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो बिधीयते ॥

स्मार्त्तानामाचार्य्याणां च मते न एव पन्था तत उक्तैव रीतिरित्यनु भगवदीयानां मतम् ॥१०॥

नहीं चाहिये। और भी सुनिये—श्रोत्रिय इत्यादि पद से ब्राह्मण का ही अधिकार है। जहाँ श्रुति-स्मृति दोनों का बिरोध आ पड़ता है वहाँ श्रुतिवचन ही बलवान् माना जाता है। श्रुति के द्वारा स्मृति बाधित होती है। "श्रीभागवत" श्रुति के फलस्वरूप है, उस में ब्राह्मण का अधिकार बतलाया गया है। फलितार्थ यह है कि-"भक्त रूप से सब की सम्मति प्राप्त अथच नीतिबिरुद्ध में चलता है" एसे गुरु की सेबा शिष्य को दूर में रह कर करनी चाहिये। नारदपञ्चरात्र में कहा है—"जो गुरु न्याय रहित उपदेश करता है एवं जो शिष्य अन्याय से श्रबण करता है वे दोनों (गुरु-शिष्य) अक्षय काल तक घोर नरक में गमन करते हैं। यदि गुरु भक्त एवं बैष्णव का द्वेष करता है तो उस गुरु का सर्ब प्रकार से परित्याग कर देना चाहिये। जैसा कि कहा है-"पापादि में अवलिप्त, कार्य्या-

अथ शिष्यलक्षणं रामार्च्चनचन्द्रिकायाम्—
शान्तो बिनीतः शुद्धात्मा श्रद्धावान धारणक्षमः ।
मन्त्रमुक्ताबल्याम्—
शिष्यः शुद्धान्वयः श्रीमान् बिनीतः प्रियदर्शनः ।
सत्यवाक् प्रियचरितोऽदभ्रधीर्दम्भबर्जितः ।
कामक्रोधपरित्यागी भक्तश्च गुरुपादयोः ।
इत्यादि लक्षणैर्युक्तः शिष्यो भवति नान्यथा ॥११॥

सभर्त्तृकानामपि स्त्रीणां दीक्षायामधिकारः । ननु नास्ति स्त्रीणां पृथक् यज्ञो न ब्रतं नाप्युपोषणम् । पतिं संश्रूषयेद्धया तु तेन स्वर्गे महीयते" तथा च बृहद्व्याससमृतौ-"न पृथग्विद्यते स्त्रीणां त्रिवर्गविधिसाधनम्" इत्यादिवाक्यैर्न्निषेधान्नाधिकार इति चेन्न,

---

कार्य्य न जानने बाला, उत्पथ में चलने बाला गुरु का परित्याग कर देना बिधान है"। स्मार्त्त आचार्य्यों के मत में यह पन्थ नहीं है। यह रीति भगवद्दियों की है ॥ १० ॥

अब शिष्य-लक्षण का विवेचन करते हैं—रामार्च्चनचन्द्रिका में कहा है-"शान्त, बिनीति, पवित्रात्मा, श्रद्धावान् उपदेश धारण में क्षम शिष्य पद बाच्य है"। मन्त्रमुक्तावली में कहा है—"शुद्ध-कुल में उत्पन्न श्रीमान् , विनयी, प्रियदर्शन अर्थात् जिसका दर्शन सब को प्रिय है, सत्य बोलने वाला, प्रिय चरित बाला, मेधावी, दम्भरहित, काम-क्रोध परित्याग करने वाला, गुरु चरणों में भक्ति रखने बाला इन समस्त लक्षणों से युक्त व्यक्ति शिष्य होता है, अन्य प्रकार नहीं ॥११॥

पति के साथ स्त्री का भी दीक्षा में अधिकार है । अच्छा यहाँ संशय है कि-"स्त्रियों का पृथक् कोई यज्ञ नही है, न कोई पृथक् व्रत व उपवास है। जो स्त्री पति का सेवन करती है वह

पतिशुश्रूषाविरोधिबिषयत्वाद्वा भक्तिश्रवणाच्च । तथोक्तं नारद-पञ्चरात्रे षोडशे पटले-"स्त्रीणां बिशेषतो दद्यात्पतिः भक्तिसमन्विताभि"ति ।
गौतमीये प्रथमपटले—
"सर्वबर्णाधिकारश्च नारीणां योग्य एव च ।
तं ब्रूहि भगवन्मन्त्रमल्पायासफलप्रद"मिति ॥
दशाक्षरबिषये । ब्रह्माण्डे ब्रह्मवाक्यम्—
सभर्त्तृका सविधवा बिष्णुभक्तिं करोति या ।
समुद्धरति चात्मानं कुलमेकोत्तरं शतम् ॥

पञ्चबर्षमारभ्य सर्वेषां दीक्षायामधिकारः । तदुक्तं श्रीभागवते-"कौमार आचरेत्प्राज्ञो धर्म्मान्भागवतानिहे"ति । स्त्रीणां तल्लक्षणं तादृक् न शास्त्रेण बिचार्य्यते कचिद् दृश्यते तासामव्यभिचारादिवर्ज्जनम् ॥१२॥

स्वर्ग में पूजित होती है।" बृहद्व्याससमृति में भी कहा है-"स्त्रियों का पृथक् रूप में त्रिवर्गबिधि (धर्म-अर्थ-काम) में कोई साधन नहीं हैं" । इत्यादि बचनों से निषेध किया गया है, अतः दीक्षा-ग्रहण में स्त्रियों का अधिकार नहीं है । इस प्रकार संशय का उत्तर यह है—पति-शुश्रूषा में भगवद्भक्ति कोइ बाधक रूप नहीं है, भक्ति एक स्वतन्त्र बस्तु है । नारद-पञ्चरात्र के षोडश-पटल में कहा कि-"पति भक्तिपरायण अपनी स्त्री को दीक्षा प्रदान करें"। गौतमतन्त्र के प्रथम-पटल में कहा है कि-"समस्तवर्णों में स्त्रियों का दीक्षा में अधिकार उचित है । हे भगवन्! अल्प प्रयत्न से फलप्रद उस मन्त्र का वर्णन करो" । श्रीकृष्ण के दशाक्षर मन्त्र के विषय में यह प्रसंग है । ब्रह्माण्ड-पुराण में ब्रह्माजी का बाक्य है-"स्त्री सधवा हो अथवा बिधवा

बिष्णुयामले—

ब्राह्मणान्क्षत्रियान् वैश्यान् सच्छूद्रान्सत्स्त्रियोऽपि बा ।
बिष्णुभक्तिरतान्साधून् दीक्षयेद्विधिना गुरुः ॥

शूद्राणामपि दीक्षायामधिकारो अन्यथा "शूद्रस्तूष्णीं जपन्भौमम्रास्ते भोगबिबर्जित" इति बिधानं न स्यात् । किञ्च-क्रमदीपिकायामपि—

यं बर्णमाश्रितो यः शूद्रः स च तन्नतभ्रुवाम् ।
बिदधीत जपं विधिवच्छ्रद्धाबान् भक्तिभराबनम्रतनुः ॥

हो यदि वह बिष्णु की भक्ति करती है तो वह स्त्री अपने एक सौ एक कुल का उद्धार कर लेती है।" पांच वर्ष से आरम्भ कर सब को दीक्षा में अधिकार हैं। भागवत में प्रह्लादजी के प्रसंग में-"चतुर व्यक्ति बाल्यावस्था से ही प्रारम्भ कर भागवत-धर्म्मों का आचरण करें।" ऐसा कहा है। यहाँ शास्त्र में स्त्रियों के भक्ति-लक्षण का बिचार नहीं किया जा रहा है। कहीं कहीं शास्त्र में भी भगवान् में भक्ति करने बाली स्त्रियों का अब्यभिचारित्व गुण बतलाया गया है ॥१२॥

बिष्णुयामल में कहा है-"गुरुदेव-ब्राह्मण, क्षत्रिय, बैश्य, सच्छूद्र, सत्स्त्री, बिष्णुभक्ति निरत साधुओं का बिधि पूर्वक दीक्षित करें"। शूद्रों का भी दीक्षा में अधिकार है, नहीं तो "शूद्र, भोग रहित एवं मौनी होकर पृथ्वी पर बैठकर जप करें" इस प्रकार बिधान नहीं किया जाता। और भी क्रमदीपिका में कहा है-जो शूद्र जिस बर्ण का आश्रय लेता है वह उस की रमणियों के उद्देश्य में यथाबिधि श्रद्धावान्, भक्तिमान्, नम्रशरीर होकर जप कर सकता है। काशीखण्ड में कहा है-"उन अम्बरीष महाराज के राज्य में अन्त्यज भी शङ्ख-चक्र चिह्न का धारण

तथोक्तं काशीखण्डे—

अन्त्यजा अपि तद्राष्ट्रे शङ्खचक्राङ्कधारिणः ।
संप्राप्य बैष्णवीं दीक्षां दीक्षिता इव सम्बभुरिति ॥१३॥

अगस्त्यसंहितायाम्—

बर्ज्या मलिना संक्लृष्टा दाम्भिकाः कृपणास्तथा ।
दरिद्रा रोगिणोऽतुष्टा रागिणो भोगलालसाः ।
असूया-मत्सराग्रस्ताः शठाः पुरुषबादिनः ।
अन्यायोपार्जितधनाः परदाररताश्च ये ॥

नारदीये—

दाम्भिकं भिन्नमर्य्यादं नास्तिकं लुब्धचेतसम् ।
बिद्वान्नैबानुगृन्हीयात्तं शिष्यं नरकप्रदम् ॥१४॥

अथापवादः—

सर्वलक्षणहीनोऽपि गुरौ देवे च भक्तिमान् ।
प्रायश्चित्तेन संशोध्य सोऽनुग्राह्य इतीश्वरः ॥
एवं ज्ञात्वा प्राणिमात्रेष्वनुग्रहं कुर्य्यात् ।

कर बैष्णवी-दीक्षा का लाभ कर दीक्षित रूप हुए ॥१३॥

अगस्त्यसंहिता में कहा गया है-मलिन, दुःखी, दाम्भिक, कृपण, दरिद्र, रोगी, असन्तोषी, विषयाविष्ट, भोग में लालस, असूया एवं मत्सर से ग्रसित, शठ, पौरुषबादी, अन्याय पूर्बक धन उपार्जन करने बाला, परदार रत ये सब दीक्षा बिषय में बर्जित हैं। नारदपुराण में कहा है-दाम्भिक, मर्य्यादा को तोड़ने बाले, नास्तिक, लुब्धचित्तवाले, व्यक्ति को बिद्वान् गुरु, शिष्य रूप में ग्रहण न करें क्यों कि वह शिष्य नरक को देने वाला है ॥१४

अपवाद बिधि का बिवेचन-"समस्त लक्षणों से हीन, शिष्य यदि गुरु में अथवा इष्टदेवता में भक्तिमान् होता है तो वह

तथोक्तं नारदपञ्चरात्रे—

"दीक्षयेन्मेदिनीं सर्व्वां किं पुनश्चोपसन्नतान् ।"

गुणदोषान् ज्ञात्वानुगृह्णीयादनुसरेच्च ।

उक्तं च रामार्च्चनचन्द्रिकायाम्—

"गुरुता शिष्यता चापि तयोर्वत्सरबासतः" । सारसंग्रहे च-"स गुरुः स्वाश्रितं शिष्यं बर्षमेकं परीक्षयेन" । यावता गुणदोष-ज्ञानं भवति तावता परीक्षयेदिति हृदयम् । एतदर्थमवश्यं परीक्षा ।

सारसंग्रहे—

"राज्ञि चामात्यजा दोषाः पत्नीपापानि भर्त्तरि ।
तथा शिष्यार्ज्जितं पापं गुरुः प्राप्नोति निश्चितमि"ति ।

अथ शिष्यः गुरुसमीपे गत्वैवं प्रार्थयेत् ॥१५॥

प्रायश्चित्त के द्वारा संशोधित हो कर अनुग्रह पात्र हो सकता है ।" ऐसा मान कर प्राणिमात्र में अनुग्रह करें । नारदपञ्चरात्र में कहा है-"समस्त पृथिवी को दीक्षित करें" । शिष्य बनने के लिये उपागत व्यक्तियों के बारे में तो कहना ही क्या है । गुरु, शिष्य के गुण-दोषों को जान कर अनुग्रह करें तद्वत् शिष्य भी परीक्षा कर अनुसरण करें । रामार्च्चनचन्द्रिका में कहा है-एकवर्ष वास करने पर शिष्य गुरु की गुरुता को तथा गुरु शिष्य की शिष्यता को जान सकता है । सारसंग्रह में कहा है-वह गुरु निजाश्रित शिष्य को एक वर्ष पर्य्यन्त रख कर परीक्षा करे । जब तक गुणदोष ज्ञात नहीं होता है तब तक परीक्षा करे यह हृदय का भाव है । इसी लिये अवश्य परीक्षा की आवश्यकता है । सारसंग्रह में यथा-"राजा में मन्त्रियों का दोष, पति में पत्नियों का पाप अवश्य लगता है । उसी प्रकार गुरु शिष्यार्ज्जित पाप को निश्चय प्राप्त करता है ॥१५॥

तथा चोक्तं नारदीये—

"त्रायस्व भो जगन्नाथ गुरो संसारवह्निना ।
दग्धं मां कालदंष्ट्रं च त्वामहं शरणं गतः" ॥इति

संप्रार्थ्य भागवती दीक्षां गृह्णीयान्न सशल्यां-तथा चोक्तं बिष्णु-तन्त्रे—

आलिङ्गनं बरं मन्ये सिंहव्याघ्रजलौकसाम् ।
न बरं शल्ययुक्तानां नानादेवैकसेबिनाम् ॥१६॥

केचित्तु पञ्च देवतापूजनं नित्यं मन्यन्ते ।
तथाहि—"शिवं भास्करमग्निं च केशवं कौषिकीमपि । मनसा नार्च्चयन् याति ब्रह्मलोकादधोगतिमि"त्यादि बचनानि तत्र काम्यपूजनविषयाणि अवैष्णवबिषयानि चान्यथा बहुशास्त्रं व्याकुलीभवेत् ।

अनन्तर शिष्य गुरु के समीप जा कर इस प्रकार प्रार्थना करे । यथा नारदीय में-हे जगत्स्वामिन् हे गुरुदेव ! संसार-अग्नि से दग्ध, काल से दंशित मेरी रक्षा करो, मैं तुम्हारे शरण में आया हूँ ।" इस प्रकार प्रार्थना कर भागवती दीक्षा को ग्रहण करे, परन्तु सशल्य दीक्षा को कभी ग्रहण न करे । बिष्णु-तन्त्र में कहा गया है-सिंह, व्याघ्र, मगर आदि जलजन्तु का आलिङ्गन भले-करले परन्तु शल्ययुक्त, नाना देवतासेवियों का संग न करें ॥१६॥

कोई कोई नित्य पञ्चदेवता की पूजा मानते हैं । जैसा कि कहा-"शिब, भास्कर, अग्नि, बिष्णु, देवी इनकी मन लगाकर यदि अर्च्चना नहीं की जाती है तो ब्रह्मलोक से अधोगति प्राप्त होती है ।" यह सब वचन काम्य-पूजन-बिषय को लेकर अथवा अवैष्णव बिषय को लेकर हैं ऐसा जानना चाहिये । नहीं तो बहु

तथाहि स्कान्दे भारते च—

नान्यं देवं नमस्कुर्य्यान्नान्यं देवं निरीक्षयेत् ।
चक्राङ्कितः सदा तिष्ठेन्मद्भक्तः पाण्डुनन्दन ! ॥

तथाम्बरीषं प्रति नारदबचनम्—

यस्मिन्नाराधिते बिष्णौ बिश्वमाराधितं भवेत् ।
तुष्टे चराचरतुष्टं सर्वदेवमये हरौ ॥

नारदीये—

बिष्णुं बरेण्यं वरदं शरण्यं भक्तवत्सलम् ।
श्रीनिवासमृते योऽन्यं भजते स तु नारकी ॥
हित्वा बिष्णुं सुखाराध्यं भजेतान्यं पतत्यधः ।
इहामुत्र - सुखभ्रष्टः सप्तजन्मानि नारकी ।
सकृदाराधयेत बिष्णुमन्यदेवमुपासते ।
तस्य क्रुद्धो हरिस्तात ! शतबर्षाणि नारकी ।

शास्त्र दुर्ब्बल हो जाएगें। स्कन्दपुराण में तथा महाभारत में कहा है—"हे पाण्डुपुत्र! मेरे भक्त चक्राङ्कित होकर निरन्तर ठहरें। वह न अन्य देवता को नमस्कार करें न अन्य देवता का निरिक्षण करें।" अम्बरीष के प्रति नारदजी का वचन यथा—जिन बिष्णु के आराधन होने पर समस्त बिश्व आराधित होता है उन सर्व देवमय हरि के प्रसन्न होने पर समस्त चराचर प्रसन्न होता है। नारदीय में कहा है-जो व्यक्ति सर्वोत्तम, बरदाता, शरण्य, भक्तबत्सल, लक्ष्मीनिवास बिष्णु का परित्याग कर अन्य का भजन करता है, वह नारकी है। जो सुखाराध्य बिष्णु का परित्याग कर अन्य का भजन करता है, वह अधःपात में जाता है। तथा इह लोक परलोक के सुख से भ्रष्ट होकर सात जन्म पर्य्यन्त नरक भागी होता है। जो एकबार बिष्णु के

आब्रह्मतृणपर्य्यन्तं जगदस्य निदेशकः ।
तं हित्वा भजते योऽन्यं स पापी स तु ब्रह्महा ।
ब्रह्मा-रुद्र-सहस्राक्षः तथा सङ्कर्षणः स्वराट् ।
प्रसादं यस्य बाञ्छन्ति तं हित्वा कं भजेन्नरः ॥

गौतमीये नारदबाक्यम्—

तुलसीजलमात्रेण जलस्य चुलकेन च ।
बिक्रीणिते स्वमात्मानं भक्तेभ्यो भक्तवत्सलः ॥

भागवते—

तस्मात्कृष्णाय महते दीयतां परमार्हणम् ।
एवं चेत्सर्बभूतानामात्मनश्चार्हणं भवेत ॥
यथा तरोर्म्मूलनिषेचणेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः ।
प्राणोपहारेण यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या ॥

शरण में आकर अन्यदेवता की उपासना करता है उस पर श्रीहरि क्रोधित होते हैं। वह शतबर्ष पर्य्यन्त नरक में गिरता है। ब्रह्मा से लेकर तृण पर्य्यन्त सर्ब्ब जगत् उन के आधीन में है, उन का परित्याग कर जो अन्य का भजन करता है वह पापी है, ब्रह्मघाती है। ब्रह्मा-रुद्र, इन्द्र, सङ्कर्षण, स्वराट् जिन के प्रसाद की कामना करते हैं उन का त्याग कर मनुष्य किस का भजन करे ? गौतमतन्त्र में नारदजी का वचन है—भगवान् की यह भक्तवत्सलता है कि--तुलसीजल अर्पण—मात्र से; व जल-चुलुक प्रदान-मात्र से; भक्तवत्सल भगवान, भक्तों के प्रति निज आत्मा को भी बेच देते हैं। तात्पर्य्य यह है—देवता घोरतर तपस्या करने पर ही प्रसन्न हो कर वर देते हैं। भागवत में कहा है-यथा-"अतः महान् श्रीकृष्ण के लिये पूजा का अर्पण करो, ऐसा करने पर समस्त

पाद्मे बैशाखमाहात्म्ये—

व्यामोहाय चराचरस्य जगतस्ते ते पुराणागमा-
स्तां तामेव हि देवतां परमेकां जल्पन्तु कल्पावधिः ।
सिद्धान्ते पुनरेक भगवान् बिष्णुः समस्तागम-
व्यापारेषु बिवेचनं व्यतिकरं नीतेषु निश्चीयते ॥

स्कान्दे—

बासुदेवं परित्यज्य योऽन्यदेवमुपासते ।
स्वमातरं परित्यज्य श्वपचीं बन्दते हि सः ॥

नारदपञ्चरात्रे—

यो मोहाद्विष्णुमन्येन हीनदेवेन दुर्मेधा ।
साधारणं सकृद्ब्रूते सोऽन्त्यजो नान्त्यजोऽन्त्यजः ॥

भूतों का एवं आत्मा का भी आपही आप पूजन हो जावेगा।" जिस प्रकार वृक्ष के मूल को सींचने से स्कन्ध, शाखा, उपशाखा स्वयं तृप्त हो जाते हैं, जिस प्रकार प्राण के उपहार देने से इन्द्रियों की तृप्ति हो जाती है ठीक उसी प्रकार अच्युत की पूजा से सब की पूजा होती है। पद्मपुराणके बैसाख माहात्म्य में कहा है—वे सब पुराण-आगम चराचर जगत् के व्यामोहार्थ उन उन देवताओं को कल्प पर्य्यन्त श्रेष्ठ कर के जल्पना करते हैं करने दो, परन्तु सिद्धान्त में समस्त शास्त्रव्यापारों की बिवेचन-परम्परा से भगवान् बिष्णु ही सब के उपास्य हैं यह निश्चिन्त है। स्कन्धपुराण में कहा है--"जो बासुदेव का परित्याग कर अन्य देवता की उपासना करता है वह मानो अपनी माता का त्याग कर चण्डालिनी की बन्दना करता है।" नारदपञ्चरात्र में-"जो दुर्मेधा मोह से अन्य हीन-देवता के साथ बिष्णु को एकबार भी साधारण कहता है वह अन्त्यज

पाद्मे—

यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदैवतैः ।
समत्वेनैव वीक्ष्येत स पाषण्डी भवेत्सदा ॥

भक्तौ बिघ्नान् निवार्य्य भक्तिं कुर्य्यात्। विष्णुधर्म्मे—"सत्यं शतेन बिघ्नेन सहस्रेण तथा तपः। बिघ्नायुतेन गोविन्दे नृणां भक्तिर्निवार्य्यते"। तस्मान्निशल्यां दीक्षां गृह्णीयात् ॥१७॥

अथ गुरुकृत्यम्



गुरुस्तु सोधयेन्मन्त्रं राजयोगावधिं क्रमात् ।
सिद्धस्तु दीयते मन्त्रं सद्भिः शास्त्रानुसारगैः ।
राजयोगश्च सर्वै हि चक्रैः सिद्धमनुस्मृतः ।
चक्रभेदास्तु बिज्ञेयाः आगमान्तरसेवनात् ॥

अर्थात् चाण्डाल है परन्तु चाण्डाल चाण्डाल नहीं है।" पद्म-पुराण में कहा है- "जो नारायण देव को ब्रह्म रुद्रादि देवताओं के साथ समान रूप से देखता है वह सर्वदा पाषण्डी माना जाता है।" भक्ति बिघ्नों का निबारण कर भक्ति करनी चाहिये। बिष्णुधर्म में कहा है-सत्य में शत बिघ्न, तपस्या में सहस्र बिघ्न, गोविन्द की भक्ति में अयुत-बिघ्न उपस्थित होते हैं। अतः उन का निवारण कर भक्ति करें। अतः शल्य-रहित दीक्षा का ग्रहण करना चाहिये ॥ १७ ॥

अब गुरुकृत्य का बर्णन करते हैं—गुरु राजयोग तक क्रम से मन्त्र का सोधन करे। शास्त्रानुसार साधुओं के द्वारा मन्त्र का सोधन किये जाने पर वह मन्त्र सिद्ध हो जाता है। समस्त-चक्रों का राजयोग तक सिद्ध माना गया है। आगमान्तर की

सिद्धादि-चक्ररेखाभिस्तस्थुः कोष्ठानि षोडशः ।
पत्रवर्णा अकाराद्या हांता माण्डलिका स्मृता ।
चतुश्चतुष्कविज्ञाय आद्यं चाद्येन योजयेत् ।
तथा त्रिष्वपि विज्ञेयमावृत्ति क्रमतः सुधीः ।
एवं द्वितीय-तृतीयेषु योऽयं चतुर्थकोष्ठे च मनीषया बुधः ।

यद्वा रामार्चनचन्द्रिकायां प्रकारः—"इन्द्वग्निरुद्रनवनेत्रयुगार्क-दिक्षु, ऋत्वष्ट-षोडश-चतुर्दशभौतिकेषु । पातालपञ्चदश-वन्हि-हिमांशुकोष्ठे वर्णाल्लिखेल्लिपिभवान् क्रमशस्तु धीमान्" ॥ शारदायां शोधनप्रकारः—

अकारादि क्षकारान्ताः स्व स्वनामाक्षरादितः ।
सिद्धादीन्कल्पयेन्मन्त्री कुर्य्यात् सिद्धादिभिः पुनः ॥
सिद्धार्णा बान्धवाः प्रोक्ताः साध्यास्ते सेवकाः स्मृताः ।
सुसिद्धाः पोषका ज्ञेया शत्रवो घातका मताः ॥

सेवा करने से चक्रों का भेद जाना जाता है । तन्त्रशास्त्र में मन्त्रउद्धारार्थ षट् चक्र कहे गये हैं-कुलाकुलचक्र, राशिचक्र, नक्षत्रचक्र, अकथहचक्र, अकडमचक्र, ऋणिधनिचक्र । इनका लक्षण तन्त्र में बिस्तारित है । रामार्च्चनचन्द्रिका में प्रकार-यथा-इन्दु १, अग्नि ३, रुद्र ११, नव ९, नेत्र २, युग ४, इन १२, दिक् १०, ऋतु ६, अष्ट ८, षोडश १६, चतुर्दश १४, भौतिक ५, पाताल ७, पञ्चदश १५, वह्नि १३ हिमांशु १ । इन साङ्केतिक कोठ में यथाक्रम अकारादि बर्ण लिखें । अर्थात् प्रथम कोठे में अ, तीसरे में आ, ग्यारहवें में इ, नवे में ई, दूसरे घर में उ, चौथे घर में ऊ, बारहवें घर में ऋ, दशवें घर में ॠ, छटे घर में ऌ, आठवें घर में ॡ, सोलहवें घर में ए, चौदहवें घरमें ऐ, पांचवे घर में ओ, सातवे घर में औ, पन्द्रहवें घर में अं, तेरहवें घर

सिद्धः सिद्धयति कालेन साध्यस्तु जपहोमतः ।
सुसिद्धो ग्रहमात्रेण रिपुर्मूलनिकृन्तनः ॥
सिद्धसिद्धो यथोक्तेन द्विगुणात्सिद्धसाधकः ।
सिद्धसुसिद्धोऽर्द्ध जपात्सिद्धारिर्हन्ति बान्धबान् ॥
साध्यसिद्धो द्विगुणितः साध्यसाध्यो निरर्थकः ।
तत्सुसिद्धस्त्रिगुणितान् साध्यारिर्हन्ति गोत्रजान ॥
सुसिद्धसिद्धोऽर्द्ध जपात् तत्साध्यस्तु गुणाधिकात् ।
तत्सुसिद्धो ग्रहादेव सुसिद्धारिः स्वगोत्रहा ॥
अरिसिद्धः सुतान्हन्यादरिसाध्यस्तु कन्यकाः ।
तत्सुसिद्धस्तु पत्नीघ्नस्तदरिर्हन्ति साधकम् ॥
कोष्ठान्येकादशान्येव वेदेन पूरितानि च ।
अकारादि-हकारान्तं लिखेत्कोष्ठेषु तत्त्ववित् ॥
प्रथमं पञ्चकोष्ठेषु ह्रस्वदीर्घक्रमेण तु ।
द्वयं द्वयं लिखेत्तत्र बिचारे खलु साधकः ।
शेषेष्वेकै कशो बर्णान् क्रमतस्तु लिखेत्सुधीः ॥

अथ ऋणिधनिचक्रम्—

"इन्द्रर्त्तुनेत्ररबि-पञ्चदश चतुर्वेदवन्ह्युधाष्टनवभिर्गुणितांश्च साध्यवर्णान् दिग् । श्रुतिगजाग्निमुनीषुवेदषट्बन्हिभिश्च गुणिता-

---

में अः इस प्रकार लिखे । पुनः पहले घर में क, तीसरे घर में ख, ग्यारहवे घर में ग, इस प्रकार सोलह कोठो में बर्ण लिख कर जब तक ऊन-पञ्चाशद्वर्ण (४९) अर्थात् अकार से लेकर ह पर्य्यन्त बर्णक्रम शेष न हों तब तक इसी प्रकार पुनर्वार प्रथम से उस नियमानुसार बर्ण बिन्यास करें तो चार कोष्ठ एवं चार मण्डल बनते हैं । इस प्रकार बुद्धिमान गुरु चक्र की कल्पना

नथ साधकार्णान्। नामाजूझलादकण्ठवादृगजभुक्तशेषा ज्ञात्वो-
भयोरधिकशेषमृणं धनं स्यात्" ॥
अन्ये भेदास्त्वागमान्तरात्। अपवादस्तु रामार्च नचन्द्रिका-
याम्—

नृसिंहार्क्कबराहाणां प्रासादप्रणवस्य च ।
वैदिकस्य च मन्त्रस्य सिद्धादीन्नैव शोधयेत् ।
स्वप्नलब्धे स्त्रिया दत्ते मालामन्त्रे त्रिबीजके ।
एकाक्षरे तथा मन्त्रे सिद्धादीन्नैव शोधयेत् ।
एकाक्षरस्य मन्त्रस्य मालामन्त्रस्य पार्वति ! ।
वैदिकस्य च मन्त्रस्य सिद्धादीन्नैव शोधयेत् ॥

करें। शारदातिलक में शोधन के प्रकार-यथा-पहले पश्चिम की ओर सीधी पांच उर्द्ध रेखा अङ्कित कर उस के ऊपर उत्तर और दक्षिण की ओर सीधी पाँच रेखा लिखें। इस प्रकार करने से चार चार चौकोण अर्थात् षोलह कोष्ठ बनते हैं। इस प्रकार एक मण्डल बनता है। मध्यभाग में चौकोण चार मण्डल एवं उन के चार ओर अर्थात् पूर्व-दक्षिण-पश्चिम-उत्तर प्रत्येक दिशा के ओर चौकोण चार चार मण्डल बनते हैं। शिष्य का जन्म--नक्षत्राश्रित नाम के प्रथम बर्णयुक्त कोठे से आरम्भ करके जिस कोठे में मन्त्र का प्रथम बर्ण है उस कोठे तक सिद्ध-साध्यादि की गणना करे। सिद्धबर्ण बान्धव, साध्यबर्ण सेवक, सुसिद्धबर्ण पोषक, शत्रुबर्ण घातक माने जाते हैं। सिद्ध मन्त्र मन्त्रकाल में अर्थात् तन्त्रानिरूपित मन्त्रग्रहण समय में, साध्य मन्त्र-जप एवं होम से, सुसिद्ध मन्त्र के ग्रहण मात्र से, ही सिद्ध होता है। अरी मूल अर्थात् मन्त्रबीज को ध्वंस कर देता है। सिद्धसिद्ध यथोक्त समय में अर्थात् तन्त्र-निर्दिष्ट काल में, सिद्धसाध्य इस की

अष्टादशाक्षरमधिकृत्य तन्त्रे--

न चात्र शात्रवा दोषा वर्णस्वादिबिचारणा ।
ऋक्ष-राशिबिचारो वा न कर्त्तव्यो मनौ प्रिये ! ॥१८॥

अथ मासशुद्धिः—

चैत्रे बहुविधं दुःखं बैशाखे भरसञ्चयः ।
ज्येष्ठे तु मरणं ज्ञेयमाषाढ़े गोत्रनाशनम् ।
श्रावणे सर्वसम्पत्तिर्भवेद्भाद्रपदे क्षयः ।
प्रजानामाश्विने मासि सर्वत्र शुभमेवहि ।
ज्ञानं कार्त्तिकमासे स्यात्मार्गशीर्षः सुखप्रदः॥
ज्ञाननाशः पौषमासे माघे मेधाविवर्द्धनम् ।

अपेक्षा दूने समय में सिद्ध होता है। साध्यसाध्य मन्त्र व्यर्थ होता है, साध्यसुसिद्ध मन्त्र तिगुने समय में सिद्ध होता है एवं साध्यारि-मन्त्र परिवार का नाश करता है। सुसिद्ध-मन्त्र अर्द्ध जप से, सुसिद्धसाध्य दूने जप से और साध्यसुसिद्ध ग्रहण-मात्र से ही सिद्ध होता है। सुसिद्धारि अपने गोत्र को ध्वंस करता है। अरिसिद्ध मन्त्र पुत्रों को, अरिसाध्य कन्याओं को, अरिसुसिद्ध भार्या को तथा अरिसिद्ध मन्त्र साधक को बिनास करता है। नृसिंह-मन्त्र का, सूर्य्यमन्त्र का, बराह मन्त्र का, प्रासादमन्त्र का (हौं इस शिव मन्त्र का) प्रणव एवं वैदिकमन्त्र का सिद्धादि शोधन न करे। स्वप्न में प्राप्तमन्त्र, स्त्रीजाति का दिया मन्त्र, मालामन्त्र, तीन अक्षर का मन्त्र, एकाक्षर-मन्त्र इन सब के सिद्धादि शोधन की आवश्यकता नहीं है ॥ १८ ॥

मासशुद्धि—चैत्रमासमें मन्त्र ग्रहण करने पर नाना प्रकार दुःख होता है, वैसाख में रत्नसञ्चय, ज्येष्ठ में मरण, आषाढ़ में

समृद्धिः फाल्गुने मासि मलमासं परित्यजेत् ॥
यद्यपि चैत्रे निषिद्धिः तथापि मन्त्रबिशेषे बिहितः।

त्रैलोक्यसंमोहनतन्त्रे—

मधुमासे तु संप्राप्ते द्वादश्यां समुपोषितः ।
आपूर्यमानपक्षे तु संशुद्धं भावयेत्ततः ।
गृहीतव्यो मनुः स्नेहात् दीक्षाबिधि पुरः सरः ॥

इति मासशुद्धिः ॥१६॥

रवौ गुरौ तथा सोमे कर्त्तव्यं बुधशुक्रयोः ।

इति वारशुद्धिः ।

अथ नक्षत्रशुद्धिः रामार्चनचन्द्रिकायाम्—

अश्विनी-रोहिणी-श्वाति-बिशाखा-हस्तभेषु च ।
ज्येष्ठोत्तरात्रयोश्चैव कुर्य्यान्मन्त्राभिषेचनम् ॥

बन्धुनाश, श्रावण में समस्त सम्पत्ति-प्राप्ति, भाद्र में सम्पत्ति का क्षय, आश्विन में सब प्रकार शुभ, कार्त्तिक में ज्ञान की प्राप्ति, मार्गशीर्ष में सुखप्रद, पौष में ज्ञान का नाश, माघ में मेधा की वृद्धि, फाल्गुन में समृद्धि है। मलमास में मन्त्र ग्रहण न करे। यद्यपि चैत्रमास में मन्त्र ग्रहण का निषेध है तो भी मन्त्रबिशेष में विधान है। त्रैलोक्यसंमोहनतन्त्र में कहा है—चैत्र-मास के उपस्थित होने पर द्वादशी से उपवास करते हुए जब तक उस पक्ष का शेष न हो तब तक शुद्ध मान कर दीक्षाबिधि के अनुसार मन्त्र को ग्रहण करें ॥ १६ ॥

बारशुद्धि—रवि, गुरु, सोम, बुध, शुक्र, इन बारों में मन्त्र ग्रहण कर्त्तव्य है। नक्षत्रशुद्धि-रामार्च्चनचन्द्रिका में कहा है—अश्विनी, रोहिणी, स्वाति, बिशाखा, हस्ता, ज्येष्ठा एवं उत्तरात्रय

नारदतन्त्रे—

रोहिणी श्रवणार्द्रा च धनिष्ठा चोत्तरा-त्रयम् ।
पुष्यं शतभिषक् चैव दीक्षानक्षत्रमुच्यते ॥

इति नक्षत्रशुद्धिः ।

पूर्णिमा पञ्चमी चैव द्वितीया सप्तमी तथा ।
त्रयोदशी च दशमी प्रशस्ता सर्व्वकामदा ॥

मन्त्रसारसंग्रहे—

द्वितीया पञ्चमी चैव षष्ठी चापि बिशेषतः ।
द्वादश्यामपि कर्त्तव्यं त्रयोदश्यामथापि वा ॥

नारदपञ्चरात्रे षोडशे पटले—

यद्यप्युक्ता मया बिप्र तिथयः पूजने पुरा ।
तथापि द्वादशी श्रेष्ठा दीक्षायां पूजने हरेः ॥

इति तिथिशुद्धिः ।

तात्कालिकं मुहूर्त्तं च शुभं ग्राह्यं शुभार्थिना ।
पक्षोऽपि शुक्ल एव स्यात् कृष्णे तु दिनपञ्चकम् ॥२०॥

में मन्त्राभिषेक करने चाहिये। नारदतन्त्र में कहा है कि-रोहिणी, श्रवण, आर्द्रा, धनिष्ठा, तीन उत्तरा, पुष्य, शतभिषा ये सर्व दीक्षा नक्षत्र हैं। तिथि—पूर्णिमा, पञ्चमी, द्वितीया, सप्तमी, त्रयोदशी तथा दशमी ये तिथियाँ समस्त कामना को देने वाली एवं प्रशस्ता हैं। मन्त्रसारसंग्रह में कहा है-द्वितीया, पञ्चमी, षष्ठी, विशेष रूप से द्वादशी, अथवा त्रयोदशी इन तिथियों में दीक्षा कर्त्तव्य है। नारदपञ्चरात्र के षोडष पटल में कहा-हे बिप्र! यद्यपि मैंने पहले पूजादि-बिषय में तिथियों को कहा है तो भी श्रीहरिपूजन में एवं दीक्षा-ग्रहणादि में उन सब से द्वादशी श्रेष्ठा है। तात्कालिक कोई शुभ-मुहूर्त्त आ जावे तो शुभ चाहने वाला

अथ बिशेषः रामार्च्चनचन्द्रिकायाम्—रुद्रयामलतः-

सत्तीर्थेऽर्कविधुग्रासे तन्तुदामनपर्वणोः ।
मन्त्रदीक्षां प्रकुर्व्वीत मासर्क्षादि न शोधयेत् ।
सूर्य्यग्रहणकाले तु नान्यदन्वेषितं भवेत् ।
चन्द्रसूर्य्यग्रहे तीर्थे सिद्धक्षेत्रे शिवालये ।
मन्त्रमात्रप्रकथनमुपदेशः स उच्यते ।

सनत्कुमारसंहितायाम्—

साध्य-सिद्ध-सुसिद्धश्च अरिश्चैव च नारद ! ।
गोपालेषु न बोधव्यः स्वप्रकाशो यतः स्मृतः ॥

उस शुभ मुहूर्त्त का ग्रहण करलें। परन्तु वह शुभ मुहूर्त्त शुक्लपक्ष में अथवा कृष्णपक्ष के पांचवे दिन में होनी चाहिये ॥ २० ॥

इस का बिशेष बिवरण रामार्च्चनचन्द्रिका में रुद्रयामल के बचन को उद्धृति कर कहा गया है। उत्तमतीर्थ में, सूर्य्यग्रहण एवं चन्द्रग्रहण काल में, तन्तु-पर्व्व तथा दामन-पर्व में मास-नक्षत्रादि का सोधन न कर मन्त्रदीक्षा कर सकता है। सूर्य्य-ग्रहण—समय में किसी बात (विधि) की अपेक्षा न करे, चन्द्र-सूर्य्यग्रहण में, उत्तम तीर्थ मे, सिद्धक्षेत्र में, शिवालय में केवल मन्त्र का कथन ही उपदेश माना जाता है। सनत्कुमारसंहिता में कहा—हे नारद ! गोपाल-सम्बन्धि मन्त्र में साध्य-सिद्ध-सुसिद्ध, अरि आदि को ज्ञात करने की आवश्यकता नहीं है। क्यों कि गोपाल-मन्त्र स्वप्रकाश स्वरूप है। दुर्ल्लभ सद्गुरु के एक बार मात्र संग लाभ होने पर उन की इच्छा व आज्ञा से दीक्षा-ले लें वह अवसर महान् है ऐसा मान लेना चाहिये। ग्राम में, अरण्य में, क्षेत्र में, दिन में, रात्रि में, जब तब दैवात् सद्गुरु का आगमन होता है तो उन की इच्छा से उन्ही की

तत्त्वसागरे—

दुर्ल्लभे सद्गुरूणां तु सकृत्सङ्ग उपस्थिते ।
तदनुज्ञा यदा लब्धा स दीक्षावसरो महान् ॥
ग्रामे वा यदि वारण्ये क्षेत्रे वा दिवसे निशि ।
आगच्छति गुरुर्दैवाद्यदा दीक्षा तदाज्ञया ।
यदैवेच्छा तदा दीक्षा गुरोराज्ञानुरूपतः ।
न तिथिर्न ब्रतं होमो न स्नानं न जपक्रिया ।
दीक्षायाः कारणं किन्तु स्वेच्छाप्राप्ते तु सद्गुरौ ॥
इति शुद्धिं सर्वं ज्ञात्वा दीक्षयेत्तु यथा विधिः ।
पूर्वं तु श्रावयेच्छिष्यं चतुःशतविधीन् गुरुः ॥२१॥

तथा बिष्णुयामले—

ब्राह्मणान् क्षत्रियान् बैश्यान सच्छूद्रान्सत्स्त्रियोऽपि वा ।
बिष्णुभक्तिरतान्साधून् दीक्षयेद्विधिना गुरुः ।
गुरुः परीक्षयेच्छिष्यं संवत्सरमतन्द्रितः ।

आज्ञा से ही दीक्षा ले लेनी चाहिये। अपनी अभिलषित इच्छा के प्राप्त सद्गुरु की उपस्थिति ही दीक्षा का कारण है परन्तु तिथि, ब्रत, होम, स्नान, जपक्रियादि नहीं है। इसी प्रकार शुद्धयादि ज्ञात कर गुरुदेव शिष्य को यथा बिधि दीक्षित करें। पहले शिष्य को एक सौ चार प्रकार के बिधि-निषेध का श्रवण करावें ॥ २१ ॥

इस बिषय में बिष्णुयामल में लिखा है, कि-गुरुदेव निरालस्य होकर एक बर्ष-तक शिष्य की परीक्षा करें और एक सौ चार विहित और परित्याज्य (त्यागने योग्य) नियम सुनावें अब वही सब नियम कथित होते हैं-(१) ब्राह्ममुहूर्त्त में गात्रोत्थान अर्थात् उठना, (२) महाबिष्णु का प्रबोधन, (३)

नियमान् बिहितान्वर्ज्यान् श्रावयेच्च चतुः शतम् ।
ब्राह्ममुहूर्त्ते उत्थानं महाबिष्णोः प्रबोधनम् ।
नीराजनं च बाद्यूचेन प्रातः स्नानं बिधानतः ।
बिशुद्धाहतयुग्वस्त्रधारणं देवतार्च्चनम् ।
गोपीचन्दनमृत्स्नायाः सर्व्वदा चोर्द्ध पुण्ड्रकम् ।
पञ्चायुधानां विधृतिश्चरणामृतसेवनम ।
तुलसीमणिमालादिभूषाधारणमन्वहम् ।
निर्म्माल्योद्वासनं बिष्णोस्तच्चन्दनबिलेपनम् ।
शालग्रामशिलापूजा प्रतिमासु च भक्तितः ।
निर्म्माल्यतुलसी भक्ष्यस्तुलस्यवचयो बिधेः ।
विधिना तान्त्रिकी सन्ध्या शिखाबन्धो हि कर्म्मणि ।

बाजों के सहित नीराजन, (४) बिधि-पूर्वक प्रातःस्नान, (५) विशुद्ध नूतन वस्त्रद्वय अर्थात् परिधेय और उत्तरीय बस्त्र धारण, (६) देवार्चन अर्थात् तर्पणादि द्वारा जल में निज इष्टदेवता का पूजन, (७) गोपीचन्दन-मृत्तिका द्वारा सदा ऊर्द्ध पुण्ड्र लगाना, (८) नित्य आयुध पञ्चक धारण अर्थात् यथायोग्य अङ्ग में शङ्ख, चक्र, गदा, खड्ग और सशरासन शार्ङ्गाख्य धनुः-धारण (९) चरणामृत-सेवन, (१०) नित्य तुलसी का, व मणि से उत्पन्न हुआ मालादि विभूषण का धारण, (११) निर्माल्योद्वासन अर्थात् विष्णुनिर्माल्य का दूर करना, (१२) देह में बिष्णु का निर्माल्य-चन्दन लेपन. (१३) शालग्राम-शिला और प्रतिमाओं में भक्ति सहित अभीष्ट देवता की अर्चना, (१४) निर्माल्यतुलसी-भक्षण, (१५) यथा बिधि तुलसी-चयन (१६) यथाविधि तान्त्रिकी सन्ध्या की उपासना, (१७) धर्मकार्य्य में शिखा-बन्धन (१८) बिष्णुपादोदक (चरणामृत) द्वारा ही

बिष्णुपादोदकेनैव पितृणां तर्पणक्रिया ।
महाराजोपचारैश्च शक्त्यां तु पूजनं हरेः ।
बिष्णुभक्त्यविरोधेन नित्यनैमित्तिकी क्रिया ।
भूतशुद्ध्यादिकरणं न्यासाः सर्व्वे यथाबिधि ॥
नवीनफलपुष्पादेर्भक्तितः संनिवेदनम् ।
तुलसीपूजनं नित्यं श्रीभागवतपूजनम् ।
त्रिकालं-बिष्णुपूजा च पुराणं श्रुतिरन्वहम् ।
बिष्णोर्निवेदितानां वै बस्त्रादीनां च धारणम् ।

पितरों की तर्पण-क्रिया, (१९) सामर्थ्य होने पर महाराजोपचार से श्रीहरि का पूजन (२०) विष्णुभक्ति के अविरोध में अर्थात् जो विष्णु-भक्ति के सहित विरुद्ध नहीं है,-ऐसी नित्य-नैमित्तिकी क्रिया का अनुष्ठान, (२१) भूतशुद्ध्यादि और विधान से सब न्यास सम्पादन (२२) भगवान् को भक्तिसहित नवीन फल पुष्पादि निवेदन (२३) नित्य तुलसीपूजन, (२४) नित्य श्रीभागवत-पूजन, (२५) प्रतिदिन तीनों काल में बिष्णु की अर्चना, (२६) नित्य श्रीभागवतादि पुराण का श्रवण, (२७) विष्णुनिवेदित-वस्त्रादि धारण (२८) भगवान् का आदेश समझ कर व भगवान् ने जिस प्रकार नियुक्त किया है, उसी प्रकार कर्म करता हूँ-यह जान, अथवा भगवान् के दास भाव से संपूर्णपुण्य कार्यों में प्रवृत्त होना (२९) गुरु की आज्ञा ग्रहण (३०) गुरु के कहे बचन में विश्वास (३१) निजमंत्र-देवतानुसार मुद्रा-धारण (३२) भक्तिसहित गीत, (३३) और भक्तिसहित नृत्यादि-करण (३४) शंखादि मंगलध्वनि-करण (३५) लीला का अनुकरण, (३६) यथाबिधि नित्य होम करना (३७) नित्य यथाबिधि नैवेद्य अर्पण, (३८) साधुगणों का

सर्वेषां पुण्यकार्य्याणां स्वामिदृष्ट्या प्रवर्त्तनम् ।
गुर्व्वाज्ञाग्रहणं तत्र बिश्वासो गुरुणोदिते ।
यथास्व - मुद्राधारणं गीतनृत्यादिभक्तितः ।
शङ्खादिध्वनिमाङ्गल्यं लीलाद्यभिनयो हरेः ।
नित्यं होमबिधानं च बलिदानं यथाविधिः ।
साधूनां स्वागतं पूजा शेषनैवेद्यभोजनम् ।
ताम्बूलशेषग्रहणं बैष्णवैः सह सङ्गमः ॥
बिशिष्टधर्म्मजिज्ञासा दशम्यादिदिनत्रये ।
व्रते नियमतः स्वास्थ्यं सन्तोषो येन केन वै ॥
पर्वयात्रादिकरणं वासराष्टकसद्विधिः ।
बिष्णोः सव्वर्त्तु चर्य्या च महाराजोपचारतः ।
सर्वेषां वैष्णवानां च व्रतानां प्रतिपालनम् ।
गुरावीश्वरभावश्च तुलसीसंग्रहः सदा ।
शयनाद्युपचारश्च रामस्कन्दादिचिन्तनम् ।

इति बिधिः ॥२२॥

स्वागत और पूजा, (३९) शेष नैवेद्य- भक्षण, (४०) ताम्बूल-शेष ग्रहण (४१) वैष्णव- संगम (४२) विशिष्ट धर्म का अर्थात वैष्णव-कृत्य का वा भगवद्धर्म का पूछना, (४३) एकादशी, द्वादशी और दशमी-इन तीन दिन में विहित व्रत-विषय में यथानियम श्रद्धासहित स्थैर्य्य-धारण, (४४) जिस किसी प्रकार की ही अवस्था क्यों न हो-सदा ही सन्तोष (४५) पर्व और यात्रादि करना (४६) विधि पूर्वक अष्टमहाद्वादशी का प्रतिपालन, (४७) वसन्तादि सब ऋतु में तत्कालीन पुष्पादि द्वारा महाराजोपचार से विष्णु की परिचर्या (४८) संपूर्ण वैष्णव व्रतों का परिपालन, (४९) गुरु में ईश्वर भाव अर्थात

सन्ध्ययोः शयनं नैव न शौचं मृत्तिकां बिना ।
तिष्ठिताचमनं नैव तथा गुर्व्वासनासनम् ॥
गुर्व्वग्रे पादबिस्तारः छायायाः लङ्घनं गुरोः ।
शक्तौ स्नानक्रियाहानिः देवतार्चनलोपनम् ॥
देवतानां गुरूणां च प्रत्युत्थानाद्यभावनम् ।
गुरोः पुरस्तात्पाण्डित्यं प्रौढ़पादक्रिया तथा ॥
अमन्त्रतिलकाचामौ नीलीबस्त्रबिधारणम् ।
अभक्तैः सह मैत्र्यादि असच्छास्त्रपरिग्रहः ॥
तुच्छस्वर्गसुखासक्तिर्मद्यमांसनिषेवणम् ।
मादकौषधिसेवा च मसूराद्यन्नभोजनम् ॥

ईश्वर- बुद्धि (५०) सदा तुलसी-संग्रह, (५१) शयनादि उपचार अर्थात शय्या-प्रदान और पाद-सम्वाहनादि (५२) रामस्कन्दादि का चिन्तन, (५३) यह सब करना चाहिये ॥२२॥

दोनों संध्या में शयन नहीं करना (५४) मृत्तिका के बिना शौच नहीं करना (५५) खड़े होकर आचमन नहीं करना (५६) गुरुदेव के आसन पर नहीं बैठना (५७) गुरुदेव के सन्मुख पैर नहीं फैलाना (५८) और गुरुदेव की छाया नहीं उलंघना (५९) शक्ति-विद्यमान् होने पर भी स्नान-क्रिया की हानि अर्थात नहीं करना (६०) देवपूजा विलुप्त नहीं करना, (६१) देवता और गुरुजनों का अप्रत्युत्थानादि अर्थात् देवता के आह्वान में तथा गुरुजन के आने पर उनका अशिष्टाचार न करना (६२) गुरुदेव के सन्मुख पाण्डित्य-प्रकाश नहीं करना (६३) प्रौढ़पाद-क्रिया अर्थात ऊर्ध्व जानु होकर नहीं बैठना (६४) मंत्र के बिना तिलक रचना और आचमन नहीं करना (६५) नीला-वस्त्र धारण नहीं करना (६६) अभक्त अर्थात

शाकं तुम्वी - कलञ्जादि तथाभक्तान्नसंग्रहः ।
अबैष्णवब्रतारम्भस्तथा जप्यमवैष्णवम् ॥
अभिचारादिकरणं शक्त्या गौणोपचारकम् ।
शोकादिपारबश्यं च दिग्विद्धैकादशीब्रतम् ॥
शुक्ला कृष्णा विभेदश्चासद्‌व्यापारो ब्रते तथा ।
शक्तौ फलादिभुक्तिश्च श्राद्धं चैकादशीदिने ॥
द्वादश्यां च दिवास्वापस्तुलस्यावचयस्तथा ।
तत्र बिष्णोर्दिवा स्नानं श्राद्धं हर्यनिवेदितैः ।
बृद्धाबतुलसी श्राद्धं तथा श्राद्धमबैष्णवम् ॥
चरणामृतपानेऽपि शुद्ध्यर्थाचमनक्रिया ।
काष्ठासनोपबिष्टेन बासुदेवस्य पूजनम् ॥
पूजाकालेऽसदालापः करवीरादिपूजनम् ।
आयसं धूपपात्रादि तिर्य्यक् पुण्ड्रं प्रमादतः ॥

हरि-पराङ्मुख मनुष्यों से मित्रतादि नहीं करना (६७) असत शास्त्र-ग्रहण नहीं करना (६८) तुच्छ-संग और तुच्छ-सुख में आसक्ति नहीं करना (६९) मद्य-मांस सेवन नहीं करना (७०) मादकौषधि सेवन नहीं करना (७१) मसूरादि अर्थात मसूर और दग्धअन्नादि (भुने अन्नादि) भोजन नहीं करना (७२) शाक भोजन नहीं करना (७३) तुम्वी, कलञ्ज और बृन्ताकादि भक्षण नहीं करना (७४) अभक्त अर्थात् अवैष्णव मनुष्यों के निकट से अन्नसंग्रह नहीं करना (०) (७५) विष्णुसंबन्ध के अतिरिक्त ब्रतान्तर (अन्यब्रत) का आचारण नहीं करना (७६) विष्णु-मंत्र के अतिरिक्त अन्य मंत्र का जप नहीं करना (७७) अभिचारादि अर्थात उच्चाटन, वशीकरण इत्यादि कर्म नहीं करना

पूजा चासंस्कृतैर्द्रव्यैस्तथा चञ्चलचित्ततः ।
एकहस्तप्रणामादि अकाले स्वामिदर्शनम् ॥
पर्य्युषितादि दुष्टानामन्नादीनां निवेदनम् ।
संख्यां बिना मन्त्रजपस्यथा मन्त्रप्रकाशनम् ॥
सदा शक्त्या मुख्यलोपो गौणकालपरिग्रहः ।
प्रसादाग्रहणं बिष्णोर्वर्ज्जयेद्वैष्णवः सदा ॥
चतुः-शत-बिधीनेतान् निषेधान् श्रावयेद् गुरुः ।
अङ्गीकारे कृते वाढ़ं तन्नीराजनपूर्व्वकम् ।
देवपूजां कारयित्वा दक्षकर्णे मनुं जपेत् ॥२३॥

---

(७८) शक्ति विद्यमान रहते गौणोपचार अर्थात न्यून कल्प में उपचार प्रदान नहीं करना (७९) शोकादि के वशीभूत नही होना (८०) दशमीबिद्धा एकादशी नहीं करना (८१) शुक्ल और कृष्ण इन दोनों पक्ष की एकादशी का प्रभेद नहीं करना (८२) ब्रत धारण कर द्यूत क्रीड़ादि नहीं करना (८३) शक्तिविद्यमान रहते ब्रतके दिन फलादि भक्षण नहीं करना (८४) एकादशी के दिन में श्राद्ध नहीं करना (८५) द्वादशी के दिवाभाग में नहीं सोना (८६) और द्वादशी के दिन तुलसी-चयन नहीं करना (८७) द्वादशी के दिन में विष्णु को दिवा स्नान नहीं कराना (८८) हरि को बिना निवेदित किये अन्न से श्राद्ध नहीं करना (८९) बृद्धिश्राद्ध में तुलसी के बिना श्राद्धक्रिया नहीं करना (९०) अवैष्णव श्राद्ध नहीं करना अर्थात् वैष्णवपुरोहित-रहित अथवा बिष्णुनिर्म्माल्यरहित श्राद्ध नहीं करना (९१) चरणामृत-पान के विद्यमान होने पर भी शुद्धि के अर्थ अन्यजल द्वारा आचमन नहीं करना (९२) काष्ठ के आसन पर बैठ कर बासुदेव की पूजा नहीं करना (९३) पूजा के समय असदालाप नहीं करना (९४) गृह करवीर और आक के

अथ दीक्षापवादः तन्त्रे—

यदृच्छया श्रुतं चापि छन्नेनापि छलेन वा ।
पत्रे स्थितं वा गाथायां बर्ज्जयेत्तदनर्थवत् ।
मन्त्रमार्गानुसारेण साक्षात्कृत्वेष्टदेवताम् ।
गुरुश्चे द्बोधयेच्छिष्यं मन्त्रदीक्षेति सोच्यते ॥२४॥

फूलों से भगवान् की पूजा नहीं करना (९५) लोहे के बने-धूप-पात्रादि का व्यवहार नहीं करना (९६) भूल कर भी बक्र पुण्ड्र धारण नहीं करना (९७) असंस्कृत द्रव्य द्वारा और चंचलचित्त से भगवान की पूजा नहीं करना (९८) एक हस्त द्वारा प्रणाम और एक बार मात्र प्रदक्षिणादि नहीं करना (९९) अकाल में भगवान का दर्शन नहीं करना(१००) पर्युषितादि (बासी-दूषितान्न इत्यादि) का निवेदन नहीं करना (१०१) संख्या के बिना मंत्र का जप नहीं करना (१०२) और मंत्र-प्रकाश नहीं करना (१०३) शक्ति-विद्यमान रहते मुख्यकाल का लोप सुतरां गौण-काल का ग्रहण (१०४) और विष्णु के प्रसाद लेने में अस्वीकार न करना-यह एक सौ चार वैष्णव-कर्त्तव्य, अकर्त्तव्य गुरुदेव शिष्य को सुनावें शिष्य के उन समस्त उपदेश का अंगीकार करने पर गुरुदेव उससे नीराजन-पूर्वक देवार्चना कराकर उसके दक्षिण-कर्ण में मंत्र का जप करें ॥२३॥

दीक्षा जिस किसी के द्वारा बोलते हुए सुना गया , दगा से व छल से प्राप्त, पत्र में स्थित, किम्बा गाथा में लिखित मन्त्र का अनर्थ जान कर बर्ज्जन करें । गुरु मन्त्र मार्गानुसार इष्टदेवता का साक्षात्कर कर यदि शिष्य को बोध प्राप्त करता है उसको दीक्षा कहते हैं ॥२४॥

अथ दीक्षाप्रकारः—

दीक्षा चतुर्विधा प्रोक्ता क्रियावर्ण्यादिभेदगाः ।
उपदेशबिधानं तु त्रिभिरेवात्र दृश्यति ॥

सारदातिलके—

"क्रियामयी बर्णमयी कलात्मा वेधमय्यपी"ति ।
गुरूपदेशमात्रेण सर्वज्ञत्वादिलक्षणैः ।
छिन्नपाशो भवेच्छिष्यो लोकातीतशरीरभाक् ।
ततो बेधप्रकारस्तु दृश्यतेऽत्र न च कचित् ॥
क्रियादिभेदस्तु मया लिख्यते ह्यागमानुगः ।

वास्तुपूजा सारदोक्ता ज्ञातव्या । चतुः षष्टिकोष्ठं कृत्वा तन्मध्ये रेखाद्वयं दत्त्वा मध्यकोष्ठचतुष्टये ब्रह्माणं पूर्व्वकोष्ठचतुष्टये अर्यमाणं दक्षिणकोष्ठचतुष्टये बिवस्वतं प्रतीच्यां कोष्ठचतुष्टये मित्रं तत्रोत्तरे महीधरं पूजयेन इत्यादि ॥२५॥

दीक्षाप्रकार--क्रियामयी, बर्णमयी, कलात्मा, वेधमयी भेद से दीक्षा चार प्रकार है । परन्तु उपदेश बिधान तीन प्रकार से दीखने में आता है । सारदातिलक में कहा है-क्रियामयी, वर्णमयी, कलात्मा एवं वेधमयी ये चार प्रकार की दीक्षा मानी गयी है। गुरु के उपदेश से सर्वज्ञत्वादि लक्षण से युक्त होकर शिष्य लोकातीत शरीर को धारण कर लेता है तथा उसका बन्धन नष्ट हो जाता है । वेधप्रकार कहीं दीखने में नहीं आता। आगमादि के अनुसार क्रियादि भेद मैंने लिखा है । सारदा के अनुसार वास्तुपूजा जान लेवें । चौसठ कोष्ठ बना कर उसके मध्य भाग में दो रेखा अंकित करें । मध्य चार कोष्ठ में ब्रह्माजी की, पूर्वभाग के चार कोष्ठ में अर्यमाण (पितृदेव) की, दक्षिण-भाग के चार कोष्ठ में विबस्वत की, पश्चिम भाग के

मण्डपहस्तबिकल्पस्तु सारदायाम्—

पञ्चभिः सप्तभिर्हस्तैर्नवभिर्वामितान्तरम् ।
षोडश स्तम्भसंयुक्तं चत्वारस्तेषु मध्यगा इति ।
अष्टहस्तसमुच्छ्राया संस्थाप्य द्वादशाभितः ।
पञ्चहस्तं प्रमाणास्ते निःछिद्रा ऋजवः शुभाः ।
तत्पञ्चमांशं निखनेत्त मेदिन्यां तन्त्रवित्तमः ।
नारिकेलदलैर्वंशैः छादयेत्तत्समन्ततः ।
द्वारेषु तोरणानि स्युः क्षमा-क्षीरमहीरुहाम् ।
स्तम्भोच्छ्रायः स्मृतस्तेषां सप्तहस्तैः पृथक् पृथक् ।
दशांगुलप्रमाणेन तत्परीणाह ईरितः ।
तिर्यक्फलकमानं स्यात्स्तम्भानामर्द्धमानतः ।
मूर्लानि कल्पयेन्मध्ये तोरणे हस्तमानतः ।
दिक्षु ध्वजा हि बध्नीयात् लोकपालसमप्रभान् ।
वितन-दर्भमाल्याद्यैरलंकुर्व्वीत मण्डपमिति ॥२६॥

चार कोष्ठ में मित्र की, उत्तर कोष्टचतुष्ठय में महीधर(पर्वत) की पूजा करें ॥२५॥

मण्डप के हस्त परिमाण सारदा में कहा है पांच हाथ, सात हाथ अथवा नौ हाथ का मण्डप बनावें। जिस में सोलह खम्भ हों। उन खम्भों के मध्य में चार खम्भ रहें। जिनकी ऊँचाई आठ-आठ हाथ की हों, चारो ओर में बारह खम्भ पांच पांच हाथ की ऊँचाई, छिन्द्र रहित, सरल, शुभरूप हों। तंत्रवेत्ता मण्डप के पंचमांश का पृथ्वी पर खनन करें तथा नारियल पत्रों से व वांस से ढक दें। द्वारों में-क्षमा (खदीर) क्षीर-वृक्षों के तोरण रखे जावें। तोरण की उँचाई सात हाथ हो, एवं पृथक् २ बनें। तोरणों की मोटाई दशांगुल हों। दिशाओं में देवताओं के

ध्वजाप्रकारस्तु—

उत्तरे पीतवर्णः स्यात्पूर्व्वस्यां रक्त एव च ।
असितो दक्षिणे प्राहुः प्रतीच्यां धूम्र एव च ।
शक्लो धूम्रः सितौ चाथ कोणेषूक्ता इति क्रमात् ।
अधस्तु गौरवर्णः स्यादरुणस्तूर्द्ध एव च ।
इति ध्वजाप्रकारस्तु प्रोक्तः ह्यागमवेदिना ।

यद्वा "कपिशकपिलनीलश्यामल—श्वेतधूम्रामलस्मितशुचि-रक्ता वर्णतो बासवाद्याः" इति क्रमदीपिकोक्ता दिक्पालवर्ण-क्रमेण बर्णा ज्ञेयाः। इति मण्डपबिधानम् ॥२७॥

अथ कुण्डनिर्म्माणम्—

मण्डपस्योत्तरे भागे कुर्य्यात्कुण्डं सुशोभनम् ।
चतुर्विंशत्यंगुलीभिः सर्वतो प्रमितं बुधः ।
तिस्रस्तु मेखलाः प्रोक्तास्त्रिद्व्येकाङ्गुलिसंमिताः ।
कुण्डमध्यस्य योनेस्तु स्वरूपं चतुरङ्गुलम ।
सर्व्वकुण्डेषु मध्ये तु प्रोक्ता योनेस्तु कल्पना ।

समान प्रभावाली ध्वजाओं का बन्धन एवं कुशा, माल्यादि से मण्डप को शोभित करें ॥२६॥

ध्वजा प्रकार-उत्तर में पीतवर्ण, पूर्व में रक्तवर्ण, दक्षिण में कृष्णवर्ण, पश्चिम में धूम्रवर्ण, ईशान कोण में शुक्ल, अग्निकोण में धूमाट, नैऋत में सितवर्ण, (सफेद)वायु कोण में सितवर्ण की ध्वजा का रोपण करें। नीचे गौरवर्ण की ध्वजा होनी चाहिये। आगमवेत्ताओं ने इस प्रकार ध्वजाभेद बतलाया है। अथवा-कपिश, (सुवर्णवर्ण) कपिल, (पीला) नीले, श्यामल, श्वेत, धूम्र, स्वच्छ, सित, (सफेद) शुक्ल, रक्त ये क्रमदीपिका उक्त दिक्पालों के वर्ण-भेद क्रम से ध्वजाओं का वर्णभेद क्रम से जानना ॥२६॥

तथा च शारदायाम्—

"मुष्टरत्नैकहस्तानां कुण्डानां योनिरीरिता ।
षट्चतुद्वय्यङ्गुलायामबिस्तारोन्नतिशालिनी"तिमेखला-
प्रमाणं

अरत्निमात्रे कुण्डे स्युस्तास्त्रिद्व्येकाङ्गुलात्मिका इति ।
प्रतीच्यां योनिकुण्डं स्याद्गजाधरसमं तथा ।
मेखलात्रयसंयुक्तं मध्ये योनिं च कल्पयेत् ।

शारदायाम्—

बिप्राणां चतुरस्रं स्यात् राज्ञां वर्त्तुलमिष्यते ।
वैश्यानामर्द्धचन्द्राभं शूद्राणां त्र्यस्रमीरितम् ।
चतुरस्रं तु सर्वेषां केचि छं प्रातिनां त्रिका इति ।
नित्यनैमित्तिकं होम स्थण्डिले वासमाचरेत् ।
हस्तमात्रेण तत्कुर्य्याद्व्यंगुलाभिः सुशोभनम् ।
अंगुलोत्सेधसंयुक्तं चतुरस्रं समन्ततः ॥

इति कुण्डलक्षणम् ॥२८॥

कुण्डनिर्म्माणविधि–मण्डप के उत्तर भाग में सुशोभन, परिधि परिमाण से चौबीश अंगुल कुण्ड का निर्माण करें, उसमें तीन, दो, एक अंगुल परिमाण से तीन मेखला हों, कुण्ड के बीचका योनि चार अंगुल परिमाण से हो, समस्त कुण्डों में योनि रहनी चाहिये । शारदातिलके में कहा है–हाथ में रत्न रख कर मुट्ठी करने पर जो परिमाण होता है उस परिमाण की योनि होती है । दीर्घ में छै अंगुल, चौड़ाई में चार अंगुल एवं उचाई में दो अंगुल मेखला का प्रमाण है । अरत्नि (विस्तृत कनिष्ठांगुल मुष्टिकहस्त) परिमाण के कुण्ड में तीन, दो, एक अंगुल मेखला का मान है । पश्चिम दिशा में योनिकुण्ड हो जो कि

अथ ऋत्विगाचार्य्यवरणं—

अथामुकमन्त्रेणामुकोऽप्यमुककामोऽहं आचार्य्यत्वेन श्री-भगवन्तं वृणे इति वस्त्रालङ्कारमुद्रिकादिना पूजयेत् । ततः वृतोऽस्मीति ब्रूयात् एवं ऋत्विजामपि चतुर्गुणम् ॥२९॥

अथ दीक्षामण्डपम्—

मण्डपं प्रोक्षयेत्पूर्वं गन्धाद्यैः सर्वतो दिशम् ।
बिलिखेन्मण्डलं सम्यक् तत्राब्जमष्टपत्रकम् ।
ततो वृत्तत्रयं कुर्य्यात् राशिस्थानं च कल्पयेत् ।
द्वारोपशोभा शोभा च भवेन्मण्डलमध्यगम् ।
रञ्जयेत्तानि कोष्ठानि श्वेतपीतारुणासितैः ॥

इतिमण्डलम् ॥३०॥

गज के अधर के समान एवं मेखलात्रय से युक्त हो । मध्यदेश में योनि की कल्पना करें । विप्रों के चार कोंण, क्षत्रियों के बर्तुल, (गोलाकार) वैश्य के अर्द्धचन्द्राकार, शूद्रों के त्रिकोंण कुण्ड की विधि है । अन्य सब के लिये चारकोंण की बिधि है ॥२८॥

अब ऋत्विक्-आचार्य्य-बरण-यथा "अमुक मन्त्र के द्वारा अमुक मैं अमुक कामना पूर्वक आचार्य्य रूप में भगवान का बरण करता हूँ ।" इस प्रकार कह कर शिष्य बस्त्र-अलङ्कार-मुद्रिकादि से आचार्य्य की पूजा करे । तदनन्तर "वृतोऽस्मि" एसा कहे । ऋत्विकों की चौगुणा अधिक से पूजा करे ॥२९॥

अब दीक्षामण्डप का वर्णन करते हैं– पहले गंधादिक द्रव्यों से मंडप के चारो ओर सिंचित करे, वहाँ अष्ट-दल कमल-पत्र का मंडप निर्माण करे, पुनः वहाँ तीन गोलाकृति बनावें, उनमें राशि–स्थान की कल्पना करे । स्वेत, पीत, अरुण एवं कृष्ण वर्ण के कोष्ठ बनाकर उनको रंजित करे ॥३०॥

अथ दीक्षाङ्गपूजा—

प्रातःस्नानादिपूजान्तं कृत्वा सर्वमतन्द्रितः ।

सर्वतो मण्डल गत्वा दीक्षाङ्ग सेवनं चरेत् ॥

तथाहि-सर्वतो-भद्रमण्डले गत्वा पद्माद्यासनेनोपविश्य स्व-
बामाग्रतः शंखमर्घ्यपाद्याचमनीयानि पात्राणि पूर्णानि बिधाय
दक्षिणे गन्धपुष्पाक्षतादीनि पृष्ठदेशे हस्तप्रक्षालनपात्रं प्रदीपावलिं
च स्थाप्य सर्वं च पञ्चसंस्कारेण पर्य्याप्तं पूजयेद्गन्धपुष्पादिभिः ।
"श्रीगुरुभ्यो नमः", "परमगुरुभ्यो नमः", "श्रीमहागुरुभ्यो
नमः", "श्रीमदस्मद्गुरुभ्यो नमः" "श्रीमत्सर्वगुरुभ्यो नमः",
"पूर्वसिद्धेभ्यः नारदादिभ्यः भागवतेभ्यः नमः" इति एतान्
प्रणाममुद्रां प्रदर्श्यानुज्ञां लब्ध्वा, ततो दक्षिणवीथ्यां गणपति-
मभ्यर्च्योपचारैर्निर्विघ्नतां प्रार्थ्य, कर्णिकायां "आधारशक्तये
नमः"गन्धादिभिः संपूजयेत् स्वेतबर्णां ध्यायन् तथान्यदपि "प्रकृत्यै
नमः", "रक्तवर्णाय कूर्माय नमः", "अग्निबर्णाय अनन्ताय

दीक्षाङ्गपूजा-प्रातः स्नानादि कर आलस्य-रहित हो, सर्वतो-भद्र मंडल में जाकर दीक्षा के अंग समूह की सेवा करें। जैसाकि कहा है-सर्वतोभद्र मण्डल में जाकर पद्मासन में बैठे, अपने बाँये भाग के आगे शंख, अर्घ्य, पाद्य, आचमनी पात्रों को सुगंधमय जल से भर कर रखें। दक्षिण भाग में गंध, पुष्प, अक्षत आदि। पृष्ठ देश में हस्त प्रक्षालन-पात्र और प्रदीपावलि रखकर सब का पंचसंस्कार से गंध पुष्पादिक द्वारा पर्याप्त पूजा करे। तदनन्तर गुरु, परमगुरु, महागुरु और अपने समस्त गुरु-वर्ग, पूर्व सिद्ध नारदादि भागवतों का उन उन मंत्र से पूजा कर प्रणाम की मुद्रा दिखाकर उनसे आदेश प्राप्त करे। तदनन्तर उपचारों से गणपति का पूजन कर उनसे निर्विघ्नता की प्रार्थना करे।

नमः", "स्वेतवर्णायै भूम्यै नमः", श्यामा सर्व्वे चतुर्भुजा द्वाभ्यां
प्रणाममुद्रां अन्याभ्यां शंखचक्रे, "कल्पवृक्षाय नमः" नवप्रवालं
ध्यायन् ततः पीठस्याग्निकोणे-"धर्म्माय नमः", नैर्ऋतिकोणे-
"ज्ञानाय नमः", वायुकोणे-"वैराग्याय नमः", ईशानकोणे-"ऐश्व-
र्य्याय नमः", एतान् पीठपादरूपान्; पीठस्य पूर्वभागे-"अध-
र्म्माय नमः", दक्षिणभागे"अज्ञानाय नमः", पश्चिमभागे-"अवै-
राग्याय नमः", उत्तरभागे-"अनैश्वर्य्याय नमः"; पीठगात्ररूपात्
कर्णिकायाः मध्ये-"शंखाय नमः", "पद्माय नमः", "आनन्द-
कन्दाय नमः", "अं अर्कमण्डलाय द्वादश-कलात्मने नमः", "उं
सोममण्डलाय षोडश-कलात्मने नमः", "मं बह्निमण्डलाय दश-

कर्णिका में "आधारशक्तये नमः" इस मंत्र से गंधादि द्रव्य के द्वारा आधार शक्ति का पूजन करे। सितवर्ण उसका ध्यान करे। और भी प्रकृति का रक्तबर्ण कूर्म का और अग्निवर्ण अनन्त का, स्वेतवर्ण भूमि का उन उन मंत्रों से पूजा करे। वे सब चतुर्भुज हैं, प्रथम दोनों को प्रणाम-मुद्रा से, अन्य सबको शंखचक्रादि-मुद्रा से अभ्यर्थना करे, अनन्तर कल्पवृक्ष का उसमंत्र से ध्यान करे। पीठ के अग्निकोंण में धर्म्म, नैर्ऋत्यकोंण में ज्ञान, वायुकोंण में वैराग्य और ईशानकोंण में ऐश्वर्य की उपरोक्त मंत्र से पूजा करे। यह सब पीठ के पाद रूप हैं। पीठ के पूर्वभाग में अधर्म्म, दक्षिणभाग में अनैश्वर्य की उपरोक्त मंत्र से पूजा करे। यह सब पीठ के शरीर रूप हैं। कर्णिका के मध्यस्थल में शंख, पद्म, आनन्दकन्द द्वादशकलारूप सूर्यमंडल, सोलह कला रूप चन्द्रमण्डल, दसकलारूप बन्हि-मण्डल, सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण इनसब का उपरोक्त इनके मंत्रों से पूजा करे। पीठ के सर्वत्र, आत्मा, परमात्मा, ज्ञानात्मा इनकी उपरोक्त इनके मंत्र से पूजा करे। पद्म

कलात्मने नमः", "सं सत्वाय नमः", "रं रजसे नमः", "तं तमसे नमः"; सर्वत्र आं आत्मने पं परमात्मने ह्रीं ज्ञानात्मने, पद्मकेशरे प्रादक्षिण्येन बिमला १ उत्कर्षिणी २ ज्ञाना ३ क्रिया ४ योगा ५ प्रह्वी ६ सत्या ७ ईशाना ८ ; कर्णिकामध्येऽनुग्रहा चतुर्थ्यन्त-नमोऽन्ताः। अष्टौ विमलाद्याश्चामरहस्ताः उक्ताः सर्वाभरणभूषिताः। नवमी श्रीकृष्णस्य पुरो भागे श्यामवर्णा चतुर्भुजा द्विहस्ताभ्यां प्रणाममुद्रासहितां द्वाभ्यां चषकं तालवृन्तं दधाना ॥३१॥

अथागस्त्यसंहितायाम्—

पीतं पूर्वे सितं देयं पश्चिमेऽप्युत्तरे तथा ।
रक्तं तु दक्षिणे कृष्णं पाटलं वन्हिसंस्थितम् ॥
नैऋते नीलवर्णं तु वायव्ये धूम्रवर्णकम् ।
ऐशे गौरं विनिर्दिष्टमष्टपत्रेष्वयं क्रमः ॥

के केशर में प्रदक्षिणा-क्रम से विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशाना और कर्णिका के मध्य में अनुग्रहा इन शक्तियों का पूजन करे। चतुर्थ्यन्त और नमोऽन्त प्रत्येक इनके मंत्र हैं। बिमलादि अष्ट शक्तियाँ हाथ में चँवर धारण करने वाली एवं समस्त आभरण से शोभित हैं और नवमी अर्थात् अनुग्रहा शक्ति श्रीकृष्ण के अग्रभाग में विराजती है, वह श्यामबर्णा एवं चतुर्भुजा है, वह दोनों हाथों में प्रणाम-मुद्रा एवम् अन्य दोनों हाथों में चषक एवं पंखा धारण किए हुए है ॥३१॥

अगस्त्यसंहिता में कहा है कि-पूर्व में पीत, पश्चिम में शुभ्र, उत्तर में रक्त, दक्षिण में कृष्ण, अग्निकोण में पाटल, नैऋत्य में नीलवर्ण, वायुकोण में धूम्रवर्ण और ईशानकोण में गौरवर्ण का निर्देश है। कमल के आठपत्रों में यह क्रम है। तदनन्तर कमल

ततः कर्णिकायां शालीन् तन्दुलान् आढ़कपरिमितान्, तदुपरि दर्भान् तदुपरि साक्षात्कूर्चं मूलमन्त्रमुच्चार्य्य स्थापयेत्, तदुपरि "वन्हिमण्डलाय नमः," ततः प्रादक्षिण्येन दशकलाः पूज्याः-"यं धूम्रार्चिषे, रं उष्मायै, लं ज्वलिन्यै, वं ज्वालिन्यै, शं स्फुलिङ्गिन्यै, षं सुश्रियै, सं सुरूपायै, हं पिङ्गलायै, लं हव्यवाहायै, क्षं कव्यवाहायै ; नमोऽन्ता सर्व्वाः। ततः कूर्च्चोपरि-प्रणवमुच्चरन् कलशं त्रिगुणिततं तु वेष्टितं धूपेन सुगन्धं स्थापयेत ; ततः कुम्भे सूर्य्यरूपं ध्यात्वा "अर्कमण्डलाय नमः' इति संपूज्य प्राग्दक्षिणेन द्वादश कलाः पूजयेत् सूर्य्यस्य तास्तु शारदातो ज्ञेयाः। अग्नेश्च। ततः साक्षिणं कूर्च्चं मरत्नं कलशे प्रक्षिपयेत्, ततःक्षकारादि-अकारपर्य्यन्तमुच्चरन् दुग्धैर्जलैर्वा पूरयेत्। उपदेश्यमानमन्त्रं त्रिजपन् गन्धाष्टकं च प्रक्षिपयेत्। उसीरं (१) केशरं (२) पुष्परसं (कुङ्कुममिति भाषायां) (३) कृष्णागुरुः (४) जटामांसी (५) मूर्वा (६)

की कर्णिका में आढक परिमित, शाली धान के तन्दुल रख दे, उसके ऊपर कुश एवं कुश के ऊपर कूर्च मूल मंत्र का उच्चारण कर रखें, उसके ऊपर वन्हिमण्डल का ध्यान करे, तदनन्तर उपरोक्त मंत्र से वन्हि-मण्डल की कलाओं को पूर्व दिशा से लेकर दक्षिण दिशा तक प्रदक्षिणा क्रम से पूजा करे। अनन्तर कूच के ऊपर प्रणव का उच्चारण कर त्रिगुण-तन्तु से वेष्टित और धूप से सुगन्धित कलश की स्थापना करे। उसके पश्चात् उस कुम्भ में सूर्य रूप का ध्यान कर "अर्कमण्डलाय नमः" इस मंत्र से पूजा कर पुनः प्राग्दक्षिण क्रम से सूर्य की द्वादश कलाओं का पूजन करे। शारदातिलक से सूर्य की उन शक्तियों को जानना, उसमें अग्नि की शक्तियों का भी वर्णन है। तदनन्तर उस कलश में रत्न के साथ कूच का प्रक्षेप करे, अनन्तर क्ष-कार से लेकर अ-कार तक

चन्दनं (७) कुष्ठमित्यादि (८) बिलोड्य तथा शंखे च, तत्शंखे सोम-सूर्य्य-बन्हिनां कलाः बिन्यसेत्। ततः पंचाशत् कलाः बिन्यस्य, कलास्तु शारदातो ज्ञात्वा प्रत्येकं पूजनीयाः। अथवा सोमस्य षोडशकलाभ्यः नमः, सूर्य्यस्य द्वादश कलाभ्यः नमः, वन्हेः दशकलाभ्यः नमः, पञ्चासत्कलाभ्यो नमः इति प्रयोगः। पञ्चमन्त्रानपि न्यसेत यथा-"हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्ष सद्धोता वेदिषु दतिथिर्दुरोण सत्। नृषद्वरसदृतसद्व्योम सदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतंबृहत"। "प्रतद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरोगिरिष्ठाः यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षयन्ति भुवनानि विश्वा"। "त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिबर्द्धनं उर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्" "तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः, दिवीव चक्षुराततं तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांस समिन्धते बिष्णोर्यत्परमं पदम्" "बिष्णोर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंसतु आसिंचति प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते"। इति पञ्चमन्त्रान् बिन्यसेत्ततः प्राणप्रतिष्ठां कुर्य्यात्कलानाम्, ततः कलश-आवाहनमुद्रया स्वहृदयात् श्रीहरिं कलशे आवाहय श्रीकृष्णे षडंगन्यासं कृत्वा ततो मातृकां ततस्तत्त्वन्यासं कुर्य्यात्, ततः कुण्डे होमं कुर्य्यात्॥३२॥

बिलोम-क्रम से वर्णों का उच्चारण कर, दूध किंवा जल से पूर्ण करे। अपने उपदेश्यमान मंत्र का तीन बार जप कर उस कलश में गंधाष्टक अर्पण करे। उशीर (खस) केशर, पुष्परस, कृष्णागुरु, जटामांसी, मूर्वा (गोकर्णी), चन्दन, कूट ये गंधाष्टक हैं। इनको मंथन करके प्रदान करना चाहिये। अनन्तर शंख में चन्द्र, सूर्य, अग्नि की कलाओं का बिन्यास करे, उनकी सब समेत पचास ...ा है ये सब शारदातिलक से जानी जाती हैं। वे प्रत्येक यहाँ ...नीय हैं, मूल में कथित पाँच मंत्रों का भी न्यास करे, तदनन्तर

तथाहि मूलमन्त्रमुच्चार्य्य कुण्डं बीक्षयेत्, तेनैव प्रोक्षणं तत्र सलिलेस्तत्र ऋतुस्नातां लक्ष्मीमावाहय संपूज्य ततोऽग्न्युत्पत्तिं संभावयेत्। ततः काष्ठमथनोद्भूतं मण्युद्भूतं वा श्रोत्रियवैष्णवगृहादानीताग्निपात्र-द्वयेनानीय क्रव्यादांशं परित्यज्य कुण्डे स्थापयेत्। ततः "चित्पिङ्गल हन हन दह दह पच पच सर्वज्ञाज्ञापयाग्नये स्वाहेति" मन्त्रेण प्रज्वाल्य सप्तजिह्वां भावयेत्। ततोऽग्निस्थं बिष्णुं संपूज्य चतुरः साम्प्रदायिकान् वैष्णवान् कृत्वा मूलमन्त्रेणाष्टाहुतीः दद्यात् गर्भाधान-पुंसवनाद्युद्दिश्य, तत उपदेश्यमन्त्रेणात्मानं समर्प्य श्रीकृष्णबिषयं सर्व्वं समाप्योपदेश्य-मन्त्रं जप्यात्। एतत्सर्वं मर्य्यादामार्गेण शास्त्रप्रक्रियेयं सा तु शुद्धभक्तौ

कलाओंकी प्राण-प्रतिष्ठा करे। अनन्तर उस कलश में आवाहन मुद्रा से अपने हृदय से श्री हरि को आवाहन कर उनमें षडङ्ग-न्यास करे। इसके बाद मातृका एवं तत्त्वन्यास करे, पश्चात् कुण्ड में होम करे॥३२॥

होम की विधि—मूल मंत्र का उच्चारण कर कुण्ड का ईक्षण करे, उसी मंत्र से प्रोक्षण भी करे, उस कुण्ड में ऋतुस्नाता लक्ष्मी का आवाहन कर एवं पूजा कर अग्नि उत्पत्ति की भावना करे। तदनन्तर श्रोत्रिय वैष्णव-गृह से अग्नि-पात्र लाकर उसमें लकड़ी के मंथन से उद्भूत, किंवा मणिघर्षण से उद्भूत अग्नि रखकर कुण्डमें स्थापित करे। अनन्तर "चित्पिङ्गल" इस मंत्र से अग्नि को जला कर उसकी सप्त-जिह्वा की भावना करे एवम् अग्निस्थित बिष्णु की पूजा करे। चतुर्सम्प्रदायी वैष्णवों को संग में लेकर मूलमंत्र से आठ बार आहुति प्रदान करे, गर्भाधान, पुंशवन आदि अष्ट--संस्कार को लेकर यहाँ आठ बार हवन की बिधि बतलायी गयी है। उप-

निषिध्यते तत्सर्वं गुरूपदेशतो ज्ञेयम् "यथात्मनि तथा देवे" इति न्यायेन स्नेहाधिक्यात् लोकव्यवहारे न त्यज्यमधुना स्वात्मनः स्नानेऽतीवतृप्तिर्भवति अग्निना परिताप आत्मनश्च तद्वच्छ्रीकृष्णेऽपि ज्ञेयम् यदि तु अधर्म्मादिधर्माणां श्रीकृष्णे स्फुरणं तदा कुण्डे हवनादिकं विधेयम्। स्नेहश्चेत्तर्हि साक्षाच्छ्रीकृष्ण एव समर्पणं श्रीविग्रहे। तदुक्तं स्वायम्भुवागमे–"अधर्म्माद्यं चतुष्कं तु आश्रेयसि नियोजनं" इति ॥३३॥

अथ सूर्य्याग्निमण्डलानां श्रुतौ निषेधः। नृसिंहोपनिषदि–"यत्र न दुःखादि न सूर्य्यो भाति" इत्यादिना निषेधः। ततश्च मर्य्यादायां सर्व्वं ग्राह्यं शुद्धभक्तौ तु स्नेहपरिपाटीति सर्व्वमनवद्यम् ॥३४॥

देश्यमानमंत्र से आत्मा को समर्पित कर श्री कृष्णविषयक समस्त कार्य समापनकर उपदेश्यमान मंत्र का जप करे यह सब मर्यादा मार्ग से शास्त्र–प्रक्रिया हैं। शुद्धभक्ति में अर्थात् रागानुगाभक्ति में इसका निषेध है उन समस्त रहस्यों को गुरु उपदेश से जान लेना। आत्म रूप से अर्थात् अत्यधिक शीत से जिस प्रकार अपने का शीत लगता है उष्णाधिक से उष्णानुभव जिस प्रकार अपने में होता है ठीक उसी प्रकार गुरुदेव में व इष्टदेव में मान लेना चाहिये। यदि अधर्म्मादिक धर्मों का श्रीकृष्ण में स्फुरण होता है तब कुण्ड में हवनादि कर सकते हैं। हृदय में यदि स्नेह मौजूद हो तो साक्षात् श्रीकृष्ण बिग्रह में समर्पण करें। स्वायम्भुवागममें कहा है कि-अधर्म्मादि चार तत्व को कल्याण में नियोजित करे ॥३३

श्रुति में सूर्य्य–अग्निमण्डल आदि का भगवद्धाम व भगवद्विग्रह में न ठहरना बतलाया गया हैं। नृसिंहोपनिषद् में कहा है-जहाँ पर दुःखादि नहीं है, जहाँ सूर्य्य भासमान नहीं है।

ततः पूर्वमुपोषितः शिष्यो यथा बिधि स्नात्वा शुक्ले वाससी परिधाय आचम्य हस्ते किञ्चिद्गृहीत्वा श्री-गुरु-समीपं गच्छेत्। ततो श्रीगुरुरुपवेश्य पुनः दीक्षाङ्गतया संक्षेपेण श्रीकृष्णं संपूज्य ततः कलशतोयेन मूलमन्त्रमुच्चरन् अष्टोत्तरशतेनाभिषिञ्चेत्। यथा "मन्त्राणां दश कथ्यन्ते संस्काराः सिद्धिदायिनः। जननं जीवनं पश्चात्ताडनं बन्धनं तथा। अथाभिषेको बिमलीकरणाप्यायने पुनः। तर्पणं दीपनं गुप्तिर्दशैता मन्त्रसंस्क्रिया"॥ पंचाशद्वर्णं लिखित्वा मन्त्रोद्धारः जननम्, प्रणवपुटितमन्त्रवर्णजपः जीवनम्, मन्त्रं लिखित्वा मन्त्राक्षरसंख्यया करवीरपुष्पैः लमिति पठन् हननं बोधनम्, पल्लवेन मन्त्राक्षरसंख्यया प्रोक्षणं अभिषेकः, ह्रौमिति मन्त्रेण अणुत्वस्थूलत्व·कृशत्वमिति

निष्कर्ष यह है कि–मर्य्यादामार्ग में समस्त ग्रहणीय हैं परन्तु शुद्धभक्ति में केवल स्नेह की परिपाटी रहती है ॥३४॥

अनन्तर पूर्व दिन उपवास करने वाला शिष्य यथा विधि स्नान कर दो शुक्ल बस्त्र पहन कर (उत्तरीय तथा परिधान) आचमन कर हाथ में कुछ (उपहार) रख कर गुरु के निकट जावें। गुरु पास में बिठा कर दीक्षांग रूप श्रीकृष्ण का संक्षेप से पूजन कर कलस जल से मूल मन्त्र का उच्चारण कर १०८ बार अभिषेचन करे। अब मन्त्रों के सिद्धि देने वाले दश संस्कार कहते हैं। वे यथा जनन, जीवन, ताडन, बन्धन, अभिषेक, बिमलीकरण, आप्यायन, तर्पण, दीपन एवं गुप्ति। पचास मातृकावर्ण (अ से क्ष तक) लिखकर उनसे अपने इष्ट मंत्र का उद्धार "जनन" है। प्रणव का सम्पुट देकर मंत्रवर्णों का जप करना "जीवन" है। मन्त्र लिखकर मन्त्राक्षर की संख्या से करवीर पुष्पों से "लं" पाठ कर उनका हनन करना "बोधन" है। अश्वत्थ पल्लव द्वारा मन्त्रा-

मलत्रयदहनं बिमलीकरणम्, कुशोदकेनाक्षरसमप्रोक्षणं आप्यायनम, तत्समतर्पणम, तर्प्यता तारमायालक्ष्मीबीजत्रययोगो दीपनम्, अप्रकाशनं गुप्तिः। "यो दद्यादविदित्वैवं मन्त्रं स पशुतां ब्रजेत्" ॥३५॥

ततः शिष्ये न्यासजालं बिधाय शिरसि हस्तं दत्वा मन्त्रं दक्षकर्णे त्रिवार पठेत।

तथोक्तं नारदपञ्चरात्रे षट् बिंशे पटले—

त्रिरुच्चारेण कुर्वीत दीक्षां चैतेन नारद !।

ततो गुरुः सपुष्पोदकं गृहीत्वा शमस्त्वावयोरिति शिष्यहस्ते उदकं दद्यात ततः श्रीकृष्णं दर्शयेत। पश्चान्महाप्रसादं पायसं फलादिकं शिष्याय दद्यात्। शिष्यस्तु श्रीगुरोः सकाशादागतं कृष्णं बिभा-

---

क्षर-संख्या से प्रोक्षण अभिषेक है। "ह्रौं" इस मन्त्र से मलत्रय -(अणुत्व-स्थूलत्व-कृशत्व) का दहन "बिमली-करण" है। कुशोदक से मन्त्र के प्रत्येक् अक्षर का प्रोक्षण आप्यायन है। मन्त्र संख्या से जल के द्वारा तर्पण "तर्पण" है। तार (ओं) माया (ह्रीं) एवं लक्ष्मी (श्रीं) इनका संयोग "दीपन" है। जप्य मन्त्र का गोपन गुप्ति है। जो विना जाने मन्त्र प्रदान करता है वह पशु-योनि को प्राप्त करता है ॥३५॥

अनन्तर गुरु शिष्य के शरीर में न्यासादिक (अंगन्यास-करन्यासादि) कर उस के मस्तक पर हाथ रखकर दाहिने कर्ण में तीन बार मन्त्र का पाठ करे। नारदपञ्चरात्र के छब्बीसवे पटल में कहा-हे नारद ! तीन वार मन्त्र का उच्चारण कर दीक्षा देवें। अनन्तर गुरु पुष्पयुक्त जल हाथ में रखकर "हम दोनों के कल्याण हों" ऐसा कह कर शिष्य के हाथ में जल छोड़ दें एवं श्रीकृष्ण का दर्शन करादें। पश्चात् महाप्रसाद पायस फलादि शिष्य को अर्पण करें

व्य कृतकृत्योऽस्मि अनुगृहीतोऽस्मीति वदेत। ततोऽष्टोत्तरशतं सहस्रं वा जपेत। ततो यथा शक्ति दानादिकं दद्यात।

"आचार्य्यः दानाभिप्रायः प्राप्तो वा दत्तादक्षिणः।
अङ्गोपाङ्गैश्च सहितः कृतोऽपि न कृतो भवेदि" ति स्मृतेः।

इति दीक्षाबिधिः ॥३६॥

अथ संक्षेपबिधिः—समुहूर्त्ते सर्वतो भद्रे नवकुम्भं निधाय सर्व्वौषधीपञ्चरत्नं सबस्त्रं कुम्भे स्थापयेन। ततः श्रीकृष्णपूजां कृत्वा शिष्ये न्यासं कृत्वाभिषिञ्च्य मन्त्रं ददद्यात। इति संक्षेपः। तत्राशक्तौ मण्डले कृष्णमभ्यर्च्चर्य अष्टवारं शिष्यमभिषिच्योपदिशेत्। इत्यतिसंक्षिप्तः ॥ ३७ ॥

अथ बर्णमयीदीक्षा—शक्त्यात्मकान्वर्णान् क्षकाराद्यकारान्तान् संहारासंहारात्माकं न्यासं कुर्य्यात सृष्टिक्रमेण। ततः

शिष्य भी गुरु प्रसाद से "श्रीकृष्ण आये है" एसी भावना कर "मैं कृतकृत्य हुआ हूँ" "अनुगृहीत हुआ हूँ" यह कहें। तदनतर १०८ अथवा १००८ वार मन्त्र जप करे। अनन्तर शिष्य यथा शक्ति दान करे। यदि गुरु सांगोपांग समस्त कार्य्य का समाधान करके भी हृदय में शिष्य से दान की इच्छा रखें किम्वा शिष्य भी मैं मन्त्र प्राप्त के स्थान पर उसके बदले में दान दे रहा हूँ इस प्रकार बिचार करे तो दोनों का किया हुआ व्यर्थ माना जाता है। यह दीक्षा विधि बतलाई गई है ॥३६॥

अब दीक्षा की संक्षेप-बिधि कही जाती है कि-उत्तम मुहूर्त्त जान कर सर्वतो-भद्र मण्डल में नवीन कुम्भ का स्थापन कर उस-में सर्व्वौषधि-पंचरत्न बस्त्र के साथ रख कर श्रीकृष्ण को पूजा कर शिष्य के शरीर में न्यासादि कर अभिषेचन करें एवं मन्त्र प्रदान करें ॥३७॥

संप्रोद्य शिरसि हस्तं दत्त्वोपदिशेत । इति बर्णमयी ।।

अथ कलावती—पञ्चात्मकदेहे पञ्चभूतकला ध्यात्वा बोधयेत, पादतलादारभ्य जानुपर्य्यन्तं "निवृत्त्यै नमः" पृथिव्याः, जानुतः नाभिपर्य्यन्तं "प्रतिष्ठायै नमः" जलस्य, नाभितः कण्ठावधौ "बिद्यायै नमः" तेजसः, कण्ठाल्ललाटपर्य्यन्तं "शान्त्यै नमः" वायोः, ललाटतः शिखावधि "शान्त्यतीतायै नमः" आकाशस्य संहारेण क्रमेण च न्यस्येत्तत उपदिशेत । इति कलावती ।।

अथ बेधमयी—स्वसामर्थ्येन गुरुः ज्ञानबैराग्यादिकं शिष्ये संप्रवेश्य तत्क्षणमेव संसारं निवर्त्तयेदिति । इति बेधमयी ।।

बर्णमयीदीक्षा का प्रकार-क्षकार आदि-अकारान्त अर्थात अः अं औ ओ ऐ ए लॄ लृ ॠ ऋ ऊ उ ई इ आ अ इन षोडशवर्णों का संहार क्रम एवं सृष्टि क्रमात्मक न्यास कर सृष्टिक्रम से प्रोक्षण कर शिष्य के मस्तक पर हाथ रख कर उपदेश करें। यह बर्णमयी-दीक्षा है। कलावतीदीक्षा का प्रकार-पञ्चभूतात्मक शरीर में पंचभूतों की कला का ध्यान कर उद्बोधन करे। पादतल से लेकर जानु तक "निवृत्त्यै नमः" एसा कह कर पृथ्वी कला की, जानु से नाभिपर्य्यन्त "प्रतिष्ठायै नमः" कह कर जल की, नाभि से कण्ठ पर्य्यन्त "बिद्यायै नमः"कहकर तेज की,कण्ठ से ललाट पर्य्यन्त "शान्त्यतीतायै नमः" कह कर आकाश की कलाओं का संहार क्रम से न्यास कर मन्त्रोपदेश करे। यह कलाबती-दीक्षा है। अब बेधमयी दीक्षा का प्रकार-गुरुदेव अपने सामर्थ्यानुसार शिष्य में ज्ञान-वैराग्यादि का प्रवेश करा कर उसी क्षण संसार से निवृत्त कर देता है। वह बेधमयी- दीक्षा है। कोई साम्प्रदायिक पद्मपुराणोक्त विधि से पंच संस्कार करते हैं। बह अत्यन्त सुन्दर मत है। जैसा कि कहा है-ताप, पुण्ड्र, नाम,मन्त्र

केचित्तु साम्प्रदायिकाः पद्मपुराणोक्तबिधिना पञ्च संस्कारान् कुर्व्वन्ति, तदतीवचारुतमम् । तथा हि— "तापः पुण्ड्रं तथा नाम मन्त्रो यागश्च पञ्चमः। अमी पञ्च संस्काराः वै परमैकान्तिहेतवः ।।" शङ्ख-चक्रोद्ध्वं पुण्ड्रादिधारणं दासस्य लक्षणमिति च। दीक्षा-प्रकारस्तु यथा ब्रह्माणं प्रति श्रीभगवद्वाक्यम्—

आचार्य्यो बेदसम्पन्नो बिष्णुभक्तो बिमत्सरः।
मन्त्रज्ञो मन्त्रभक्तश्च सदा मन्त्राश्रयः शुचिः ।।
इत्थंबिधो गुरुः बक्ष्यमाणलक्षणं शिष्यं दीक्षयेत ।। ३८ ।।

मच्चक्राङ्कितदेहत्वं मदीयाराधनं तथा ।
मयि संन्यस्तकर्म्मत्वं मदनन्यशरणता ।
मयि सर्बभरन्यासं महाबिश्वासपूर्व्वकम् ।
अनन्यसाधना यत्राकिञ्चनत्वमात्मनः ।
अवैष्णवानां संलापं बन्दनादिबिवर्जितम् ।
अनन्यदेवतानां च पूजनं बन्दनं तथा ।
एवं लक्षणसंयुक्तं शिष्यं सत्वगुणान्वितम् ।
अध्यापयेद्बिधानेन मन्त्ररत्नमनुत्तमम् ।।

याग ये पंच संस्कार परम ऐकान्तिक लक्षण विशिष्ट हैं। अन्यत्र कहा है-शंख-चक्र-उद्ध्र्वपुण्ड्रादि का धारण दासत्व का लक्षण है। दीक्षाप्रकार-ब्रह्मा के प्रति भगवद्वाक्य यथा-बेदसम्पन्न, बिष्णुभक्त, विमत्सर, मन्त्रज्ञाता, मन्त्र-भक्त, निरन्तर मन्त्र का आश्रय करने बाला, पवित्र आचार्य्य पद बाच्य है। इस प्रकार के गुरु वक्ष-माण लक्षण से युक्त शिष्य को दीक्षित करें ।।३८।।

"मेरे चक्र से अङ्कित देहत्व, मेरी आराधना, मुझ में सम्यक् प्रकार से न्यस्त कर्म, मुझ में अनन्यशरणता, महान् विश्वास के साथ समस्त भार का मुझ में अर्पण, अनन्यसाधना, आत्मा में

सुदर्शनं पाञ्चजन्यं सौवर्णेन प्रकारयेत् ।
रौप्येण वापि ताम्रेण कांस्येनापि प्रकारयेत् ॥
स्नाप्य पञ्चामृतैः शुद्धैरर्च्चयेत्पुरतो मम ।
अर्चयेद्गन्धपुष्पाद्यैस्तन्मन्त्रेण विधानतः ।
तत्र संस्थापयेदग्निं स्वगृह्योक्तविधानतः ।
आचार्य्यो जुहुयादाज्यं मन्त्रेणाथ द्विजोत्तम ?॥
अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा ।
जुहूयान्मन्त्ररत्नेन तथान्यैः वैष्णवैः शुभैः ॥
मन्त्रैः पुरुषसूक्ताद्यैर्जुहूयात् घृतपायसम् ।
तस्मिन्नग्नौ क्षिपेच्चक्रं शङ्खं च द्विजसत्तम ?।
षडक्षरेण जुहूयादाज्यं विंशति संख्यया ।
प्रतप्तं चक्रमादाय मन्त्रेणैवाहूयेद्गुरुः ।
शंखेन चाङ्कनं कुर्य्याद्बाह्वोर्दक्षिणसव्ययोः ।
होमशेषं समाप्याथ पुनः पूजां समाचरेत् ।
ततः कलसमादाय पवित्रोदकपूरितम् ।
मन्त्रेणैवाभिमंत्र्याथ तस्य मूर्द्धन्यभिषेचयेत् ।
उद्र्ध्वपुण्ड्रधरं शिष्यं मन्त्रमध्यापयेद्गुरुः ।
मन्त्रार्थं च प्रवक्तव्यं वृत्तिं चैव विशेषतः ॥

अकिञ्चनत्व भाव रखना, अवैष्णवों के साथ संलाप-वन्दनादि शून्यता, अन्य देवताओं का पूजन-वन्दनादि न करना" इन लक्षणों से युक्त, सत्वगुण वाला शिष्य को यथा विधि मन्त्र का उपदेश करना चाहिये। सुवर्ण, रौप्य, ताम्र अथवा कांस्य धातु से सुदर्शन चक्र एवं पांचजन्य शंख का निर्माण कर शुद्ध पञ्चामृत द्वारा मेरे समक्ष स्नपन कराकर उन मंत्रो से गन्ध-पुष्पादि के द्वारा विधि पूर्वक अर्चना करें। वहाँ शास्त्रोक्त विधान से आचा-

क्रमस्तु पूर्वं तप्तमुद्राधारणं, तत उद्र्ध्वपुण्ड्रं; ततो नामकरणं कृष्णदास-गोविन्ददास इत्यादि, ततो मन्त्रदानं, ततो यागः, यागस्तु होम-ध्यानकीर्त्तनादिः। इति पञ्चसंस्कारैः संस्कृतो दासो भवतीत्यर्थः इति साम्प्रदायिकदीक्षाप्रकारः ॥ ३६ ॥

स्कान्दे--

"तपस्विनः कर्म्मनिष्ठाः श्रेष्ठास्ते वै नरा भुवि ।
प्राप्ताः यैस्तु हरेर्दीक्षा सर्वदुःखविमोचनी" ॥

र्यदेव अग्नि-स्थापना कर घृत से मन्त्र के साथ १००८ अथवा १०८ हवन करें। अन्यान्य वैष्णवों के साथ मूल-मन्त्र से तथा घृत-पायसादि द्वारा पुरुषसूक्तादि से हवन करने की विधि है। उस अग्नि में चक्र तथा शंख का प्रक्षेप कर घृत द्वारा २० बार षडाक्षर मन्त्र से हवन करे। उस प्रतप्त चक्र व शंख का मन्त्र पाठ के साथ धारण कर गुरुदेव शिष्य को बुलाकर उसके दक्षिण-वाम दोनों भुजा को अङ्कित करे। होम को समाप्त कर पुनः पूजन करें। तद-नन्तर पवित्र जल से परिपूर्ण कलस लेकर मन्त्र से अभिस्तुत कर शिष्य के मस्तक में अभिषेचन करे। उद्र्ध्वपुण्ड्रधारी शिष्य के लिये गुरु मन्त्र का उपदेश करे तथा मन्त्र के अर्थ को समझावें। एवं विशेष करके रहने की वृत्ति को बतलावे। पञ्चसंकार का क्रम यथा-पहले तप्त-मुद्रा का धारण, तदनन्तर उद्र्ध्वपुण्ड्र धारण, अनन्तर कृष्णदास-गोविन्ददासादि नामकरण, तत्पश्चात् मन्त्र-प्रदान, तदनन्तर होम-ध्यान-कीर्त्तनादि। इस प्रकार पंच संस्कार से संस्कृत शिष्य दास हो जाता है। यह साम्प्रदायिक दीक्षा-प्रकार है ॥३६॥

स्कन्दपुराण में कहा है-तपस्वी, कर्म्मनिष्ठादिक गुण युक्त मनुष्य पृथ्वी में श्रेष्ठ हैं, जिन्होने समस्त दुखमोचिनी हरिकी दीक्षाप्राप्त

तत्वसागरे—

यथा काञ्चनतां याति कांस्यं रसविधानतः।
तथा दीक्षाविधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम् ॥

लब्धदीक्षस्य शिष्यस्य कृत्यमाह-सारदायाम्—

गुरोर्लब्ध्वा पुनर्विद्यामष्टकृत्वा जपेत्सुधीः।
गुरुविद्यादेवतानामैक्यं संभावयन् धिया ॥
शरीरमर्थप्राणांश्च सर्वं तस्मै निवेदयेत्।
ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्यात्समग्रां प्रीतिमानसः॥ ४० ॥

तथा रामार्च्चनचन्द्रिकायाम्—

स्वस्माज्ज्योतिर्म्मयीं विद्यां गच्छन्तीं भावयेद्गुरुः।
आगतां भावयेच्छिष्यो धन्योऽस्मीति विशेषतः ॥
कृतकृत्यस्तथा शिष्यः सर्वं तस्मै निवेदयेत्।
यच्च यावच्च तद्भक्त्या गुरवे हृष्टचेतसः ॥

का है। तत्वसागर में कहा है जिस प्रकार कांस्य रसविधान से सुवर्णत्व को प्राप्त होता है ठीक उसी प्रकार मनुष्यों की दीक्षा विधान से द्विजत्व प्राप्त होता है। अब दीक्षित शिष्य का कृत्य कहते हैं—सारदातिलक में—मेधावी शिष्य गुरु से दीक्षित होकर उस मन्त्र का आठ वार जप करें एवं गुरु, मन्त्र तथा देवता इनकी हृदय में ऐक्यभावना करें। शिष्य गुरु के लिये शरीर, अर्थ, प्राण सब का अर्पण करदे। तथा याजक-विप्र-वैष्णवों को प्रीति मना होकर समस्त दक्षिणा देवें ॥४०॥

रामार्च्चन चन्द्रिका में कहा है—गुरु—अपने में से ज्योतिर्म्मयी विद्या निर्गत हुई एसी भावना करले एवं शिष्य भी गुरुहृदय से यह प्राप्त हुई एसा समझे, विशेष करके मैं धन्य हो गया हूँ, कृत-कृत्य हो गया हूँ एसा मान लें। शिष्य प्रसन्न चित्त होकर

गो-भू-हिरण्य-विपिन-गृह-क्षेत्रादिकं बहु।
न चेदर्धं तदर्द्धं वा दशांशमर्थं वापि वा ॥
अक्लेशादन्नवस्त्रादि दद्याद्वित्तानुसारतः।
इयदेव हि सच्छिष्यैर्कर्त्तव्या गुरुनिष्कृतिः ॥
यद्वा विशुद्धभावेन सर्वार्थात्मार्पणं गुराविति।
इति गुरुसेवा ॥ ४१ ॥

अथ गुरोर्नाम न गृह्णीयात् ॥

मनुस्मृतौ—

नोदाहरेत्गुरोर्नाम परोक्षमपि कथञ्चित्।
न चैवास्यानुकुर्व्वीत गतिभाषणचेष्टितम् ॥

यदि गृह्णीयात्तदाप्येवं प्रणवः ततः श्रीपदं ततः नाम ततः विष्णुपादेति।

अथाक्तं नारदपञ्चरात्रे—

प्रणवः श्रीस्ततो नाम विष्णुशब्दोऽप्यनन्तरम्।
पादशब्दं शमेत स्यात् नतमूर्द्धाञ्जलियुतः ॥

भक्ति पूर्वक-जो कुछ है जिस परिमाण में है उन गौ-भूमि-सुवर्ण-वाग-गृह-खेतादि का वहु परिमाण से दान करे। यदि समस्त देने में असमर्थ हो तो अर्द्धेक किम्वा चतुर्थांश अथवा दशमांश बिना क्लेश से वित्तानुसार प्रदान करे। उत्तम शिष्यों का यह गुरु-सम्बन्धी कर्त्तव्य है। विशुद्धभाव से सर्व प्रकार सर्वार्थ व आत्मा को गुरु में अर्पण करे। यह गुरुसेवा है ॥४१॥

गुरुदेव का नाम न लेवे। मनुस्मृति में कहा है—परोक्ष में भी किसी प्रकार गुरु का नाम न ग्रहण करे। उनके गति-भाषण-चेष्टादि का अनुकरण नहीं करे। यदि गुरु के नाम लेने का आवश्यक पडे तो पहले प्रणव, तत्पश्चात् श्री, उसके बाद नाम, तद-

अथानाक्रमणीयम्—कौर्म्ये—

गुरोर्निर्म्माल्यशयनं पादुकोपनहावपि ।
नाक्रमेदासनं छायां शासनं वा कदाचन ॥
गुरुपुत्रेषु दारासु गुरोश्चैव स्वबन्धुषु ।
उत्सादनं वै गात्राणां स्नापनोच्छिष्टभोजने ॥
न कुर्य्यात गुरुपुत्रस्य पादयोः शौचमेव च ।
गुरुवत्परिपूज्याश्च सवर्णा गुरुयोषितः ॥

एतत्तु ब्रह्मचारिप्रकरणत्वाद्ब्रह्मणबिषयमितरस्य तु गुरुपुत्रादौ सर्वं कार्य्यम् ।

मनुस्मृतौ—

गुरोर्गुरौ संनिहिते गुरुवद्वृत्तिमाचरेत ।

बिष्णुधर्म्मे—

आचार्य्याय प्रियं कुर्य्यात्प्राणैरपि धनैरपि ।
न गुरोरप्रियं कार्य्यं ताडितः पीडितोऽपि वा ।
नावमन्येत तद्वाक्यं नाप्रियं हि समाचरेत ।

यद्यपि गुरोर्बाक्यं प्रमाणमेवाप्रामाणिकस्य गुरुत्वमेव नास्ति तथापि दैवात्तादृशस्य गुरुत्वे तद्वाक्यं न विगीतमेव ग्राह्यम् ॥ ४२॥

नन्तर बिष्णुपाद अर्थात "ओं श्री अमुक विष्णुपाद" इस प्रकार लेवें। नारदपञ्चरात्र में कहा है—"पहले प्रणव, अनन्तर श्री, तत्पश्चात् नाम तदनन्तर विष्णु-पाद" इस प्रकार से मस्तक नीचे कर हाथ जोडकर कहें। कूर्म्मपुराण में कहा है-गुरु के निर्म्माल्य, शय्या, पादुका, आसन, छाया एवं शासन का कभी उल्लंघन नकरें। गुरुपुत्रों में, गुरुदाराओं में, गुरु के वन्धुओ में भक्ति करे। गुरुपुत्र के स्नपन, एवं उच्छिष्ट भोजनादि न करें। गुरुपुत्र के

तथा चोक्तं पञ्चरात्रे—

यो बक्ति न्यायरहितं बिनान्यं न शृणोति यः ।
तावुभौ नरकं घोरं ब्रजतः कालमक्षयमिति ॥
यत्किंचिदन्नपानादि प्रियं द्रव्यं मनोरमम् ।
समर्प्य गुरवे पश्चात्स्वयं भुञ्जीत प्रत्यहम् ॥

श्रीनारदपञ्चरात्रे—

स्वमन्त्रो नोपदेष्टव्यो बक्तव्यश्च न संसदि ।
गोपनीयं तथा शास्त्रं रक्षणीयं शरीरवत् ॥
यत्र यत्र परीबादः मात्सर्य्याच्छ्रूयते गुरौ ।
तत्र तत्र न बस्तव्यं निर्यायात्संस्मरन्हरिम् ॥

चरणों का शौच न करे। समानवर्णवाली गुरुपत्नी गुरु की भाँति पूजिता होती है। यह प्रकरण ब्रह्मचारी प्रसंग को लेकर है अतः ब्राह्मण परक है। इसके अतिरिक्त अन्यत्र गुरु-पुत्र में समस्त किया जाता है। मनुस्मृति में कहा है-गुरु के गुरु निकट में रहने पर गुरु की भाँति आचरण करे। बिष्णुधर्म्मोत्तर में कहा है - प्राणों से धनों से भी आचार्य्य का प्रियाचरण करे, गुरु से ताड़ित एवं पीडित होकर भी कभी उनका अप्रियाचरण नहीं करना चाहिये। उन के बचन को कभी अमान्य न करे न अप्रियाचरण करे। यद्यपि गुरुवाक्य स्वयं प्रमाणित है अप्रामाणिक व्यक्ति का गुरुत्व नहीं है तो भी दैवयोग से प्राप्त प्रामाणिक गुरु के वचन ग्रहणीय है, अप्रामाणिक के नहीं ॥४२॥

नारदपंचरात्र में कहा—जो न्यायरहित कहता है तथा जो अन्याय सुनता है वे दोनों अक्षय काल पर्य्यन्त घोर नरक में गिरते हैं। जो कुछ अन्न-पानादि मनोहर प्रिय द्रव्य हैं उनको पहले गुरु को समर्पण कर पश्चात् स्वयं प्रतिदिन भोजन करें। नारदपञ्चरात्र

यैः कृता च गुरोर्निन्दा बिभोः शास्त्रस्य नारद !।
नापि तैः सह बस्तव्यं बक्तव्यं वा कथञ्चन ॥४३॥

अथ मन्त्रदानमहिमा—

स्कान्दे—यथा सुराणां सर्व्वेषां परमः परमेश्वरः ।
तथैव सर्व्वदानानां बिद्यादानं परं स्मृतम् ॥
यावच्च पातकं तेन कृतं जन्मशतैरपि ।
तत्सर्व्वं नाशमाप्नोति बिद्यादानेन देहिनाम् ॥

स्कान्दे—
दीक्षामात्रेण कृष्णस्य नरो मोक्षं लभते वै ।
किं पुनर्ये सदा भक्त्या पूजयन्त्यच्युतं नराः ॥

तथा श्रीभागवते--
दक्षिणाज्ञान संदेश कृष्णः ॥४४॥

इति श्रीनारायणभट्टबिरचितायां साधनदीपिकायां
गुरूपसत्तिलक्षणः प्रथमः प्रकाशः



में कहा है-जहाँ तहाँ अपने मन्त्र का उपदेश न करे, सभादि में भी न बोले, अपने शरीर की भाँति मन्त्र का तथा शास्त्र का गोपन व रक्षण करे। जहाँ मत्सरता के कारण गुरु में अपवाद सुनने में आवे तो वहाँ न वास करें, दैवात् सुनने में आवे तो हरि का स्मरणकर वहाँ से चले जावें। जिन्होंने गुरुनिन्दा व प्रभु के शास्त्र की निन्दा की है उनके साथ बास न करे व उन से वार्त्तालाप न करे ॥४३॥

अब मंन्त्रदान की महिमा कहते हैं-स्कन्दपुराण में कहा है-जिस प्रकार देवताओं में परमेश्वर श्रेष्ठ हैं ठीक उसी प्रकार समस्त दानों में बिद्यादान परम श्रेष्ठ है। प्राणियों के सो जन्म पर्य्यन्त

द्वितीयः प्रकाशः

श्रीकृष्णं परमानन्दं सर्व्वशास्त्रार्थवेदिनम् ।
कृपालयं सदा बन्दे गुरुं कृष्णस्वरूपिणम् ॥ १ ॥
गृहीतदीक्षः पुरुषः कुर्य्यादाचरणं सदा ।
सदाचारं बिना धर्मो न स्यात्कस्यापि कर्हिचित् ॥ २ ॥

तथा चोक्तं भविष्योत्तरे—
आचारहीनं न पुनन्ति वेदा यद्यप्यधीता सह षड्भिरङ्गैः ।
छदांस्येनं मृत्युकाले त्यजन्ति नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाः ॥३॥

जितने पाप किये गये हैं वे सब विद्यादान से नाश होते हैं। स्कन्द-पुराण में कहा है-मनुष्य श्रीकृष्ण की दीक्षामात्र से मोक्ष प्राप्त कर लेता है, जो दीक्षित होकर निरन्तर भक्ति के साथ अच्युत की पूजा करते हैं उनके बारे में क्या कहना है। भागवत में कहा है—······॥४४॥



परमानन्दमय, सर्वशास्त्र के अर्थज्ञाता, कृपासागर, श्रीकृष्ण-स्वरूप, गुरु, कृष्णदास (कृष्णदास ब्रह्मचारी) का हम सर्वदा वन्दना करते हैं ॥१॥

मनुष्य दीक्षित होकर सदाचार का पालन करें, सदाचार के बिना किसी का किसी प्रकार कोई धर्म्म नहीं ठहरता है ॥२॥

भविष्योत्तर पुराण में कहा है-यदि छै अंग के साथ वेदों का अध्ययन करता है परन्तु वह आचार से हीन है तो वे सब वेद उसको पवित्र नहीं करते हैं। जिस प्रकार पक्षिशावक पक्ष निकल आने पर अपने घोंसलों को त्याग देते हैं ठीक उसी प्रकार समस्त वेद मरण काल में उसको त्याग देते हैं ॥३॥

नारदपञ्चरात्रे—

नाचरेद् यदि सिद्धोऽपि लौकिकं धर्ममग्रतः ।
उपप्लवाच्च धर्मस्य ग्लानिर्भवति नारद ! ॥ ४॥

श्रीकृष्णस्मरणपूर्वकं ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्थाय रात्रिवासः परित्यज्य बासोऽपरं—धृत्वा

"वर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम् ।
रन्ध्रान्वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै-
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद्गीतकीर्त्तिः" ॥

इति स्मृत्वा चत्वारः दण्डवत्प्रणामान् कृत्वा प्रार्थयेत ॥ ५ ॥

अथ प्रार्थना-धर्म्मोत्तरे—

यदुत्सवादिकं कर्म्म तत्त्वया प्रेरितो हरे ! ।
करिष्यामि त्वदाज्ञेयमिति बिज्ञापनं मम ॥
इति प्रार्थ्य शौचार्थं वहिर्गच्छेत ॥ ६ ॥

नारदपञ्चरात्र में कहा कि-सिद्ध पुरुष भी यदि व्यवहार धर्म्म का आचरण नहीं करता है तो आगे धर्म की उच्छृंखलता के कारण ग्लानि उपस्थित हो जाती है।।४।।

साधक श्रीकृष्ण स्मरण करता हुआ ब्राह्म-मुहूर्त्त में उठ कर रात्रिवास का परित्याग कर दूसरा वस्त्र पहिन कर—

"वर्हावतंस, नटवर-बिग्रह, कर्णों में कर्णिकार-धारी, सुवर्ण सदृश पीलावस्त्र तथा वैजयन्ती माला का धारण कर अधर सुधा के द्वारा वेणु-रन्ध्रों को परिपूरित कर गोपालबालकों के साथ निज चरण-चिन्हों से रमणीय वृन्दावन के लिये प्रवेश कर रहे हैं, जिन की कीर्त्ति सब कोई गा रहे हैं।" इस प्रकार ध्यान कर चार दण्डवत्प्रणाम कर प्रार्थना करें ।।५।।

यथाहाङ्गिराः—

उत्थाय पश्चिमे यामे रात्रेराचाम्य चोदकम् ।
अन्तर्द्धाय तृणैर्भूमिं शिरः प्रावृत्य बाससा ॥
बाचं नियम्य यत्नेन निष्ठीवोच्छ्वासवर्ज्जितः ।
कुर्य्यान्मूत्रपुरीषे तु शुचौ देशे समाहितः॥इति ॥

पाराशरः—

नैरृत्यादिषु बिक्षेपमतीत्याभ्यधिकं भुवः ।
ग्रामात् क्रमशतं गच्छेन्नगराच्च चतुर्गुणमिति ॥

गन्धलेपक्षयपर्य्यन्तं मृदा शौचं कुर्य्यात् ।

याज्ञवल्क्यः—

गृहीतशिरनश्चोत्थाय मृद्भिरभ्युधृतैर्जलैः ।
गन्धलेपक्षयकरं शौचं कुर्य्यादतन्द्रितः ॥

प्रार्थना-विष्णुधर्म्मोत्तर-पुराण में कहा है यथा-हे भगवन् उत्सव, शौच, स्नानादिक जो जो कर्म्म करता रहूँगा वह समस्त आप की आज्ञा से आप के द्वारा प्रेरित होकर करूँगा यह मेरा बिज्ञापन है। इस प्रकार प्रार्थना कर वाहर आवें ॥६॥

अङ्गिरा ऋषि ने कहा—रात्रि के शेष—प्रहर में उठकर मुख धौत कर पहले तृणों से भूमि को ढ़क ले। वस्त्र से मस्तक आच्छादित करके मुख बन्द करले अर्थात् मलत्याग के समय कुछ बोले नहीं। थू थू भी न फेले एव स्वास न ले। पवित्रस्थान में बैठ कर मल मूत्र त्याग करें। पाराशर का कथन है-घर से जितनी दूर तीर जा सके उतनी दूर का उल्लंघन कर मल मूत्र त्याग करें। नैऋत दिशा में हो तो अच्छा है। ग्राम से शत पद, नगर से उसके चतुर्गुण जाकर मल-मूत्र त्याग करें। गन्धलेपक्षय तक अर्थात् जब तक हाथ में से दुर्गन्ध न मिट जाय तब तक मृत्तिका

मनुस्तु नियममाह—

"एका लिङ्गे गुदे तिस्रः तथा बामकरे दश ।
उभयोः सप्त दातव्या" इत्यादि पादे तिस्रः ॥ ७ ॥

तत आचमनं कृत्वा दन्तधावनं कुर्य्यात् कण्टकिवृक्षोद्भवेन द्वादशाङ्गुलेन ।

तथा च स्मृतिः—

सर्वे कण्टकिनः पुण्या आयुदाः क्षीरिणः स्मृताः ।
कटु—तिक्त—कषायाश्च बलारोग्यसुखप्रदाः ॥

बर्ज्यानि मदनपारिजाते—

वर्ज्यानि—शाल्मली—पीलुभव्यकिंशुकतिन्दुकाः ।
अरिष्टोक्षः पारिभद्रो गुग्गुलुस्तिन्तिडी तथा ॥
आसने शयने याने पादुके दन्दधावने ।
पलाशाश्वत्थकौ वृत्तौ सर्व्वकर्म्मसु कुत्सितौ ॥

मध्यान्हेऽपि दन्तकाष्ठं न कर्त्तव्यं केचित्तु एकादश्यादौ ।

के द्वारा शौच करें । याज्ञवल्क्य ने भी कहा—वाम हाथ से शिश्न पकड़ कर उठे तथा मट्टी के साथ जल से गन्धलेपक्षय पर्य्यन्त शौच करें, इसमें आलस्य न करना चाहिये। मनु ने इस का नियम बतलाया है कि—एक वार लिङ्ग में, तीन वार गुदा में, दश वार बायें हाथ में, पुन दोनों हाथ में सात वार, पाव मै तीन वार इस प्रकार मृत्तिका लगाने की विधि है ॥७॥

तदनन्तर आचमन कर दन्त धावन करें। दाँतन का परिमाण बारह अंगुल होना चाहिये। कांटेबृक्ष के दान्तन प्रशस्त है। स्मृति में कहा है—समस्त कंटकवृक्ष दान्तन विषय में पबित्र, क्षीर युक्त बृक्ष पर-मायु के बढ़ाने वाले, तथा कटु-तिक्त एव कषाय बृक्ष बल-आरोग्य-सुख को देने वाले हैं। निषेधकाष्ठ का यथा—मदन-

बाराहवाक्यम्—

दन्तकाष्ठमखादित्वा यस्तु मामुपसर्पति ।
सर्बकालकृतं कर्म तेन चैकेन नश्यति ॥

इति वचनमवलम्ब्य बैष्णवबिषयत्वेन सदा कुर्व्वन्ति।

किंचापराधमध्ये दन्तकाष्ठं बिना स्पर्शो मुख्योऽपराधो लिखितः। "अकृत्वा दन्तकाष्ठं च कृत्वा निधुवनं तथेति" दन्तकाष्ठनिषेधस्तु अङ्गसेबामकर्त्तुः पर्य्यवस्यति तथा प्रायश्चित्तमपि ॥ ८ ॥

पारिजातमें—शेमर, पीलु, कमरक, ढाक, तेंद, रीठाकरञ्ज, उक्ष, फरहद, गुग्गुल, इमली. ये आसन, शय्या, पादुका, दाँतन में तथा समस्त कर्म्म में पलाश, अश्वत्थ कुत्सित हैं। मध्यान्ह वेला में दांतन न करें। कोई कोई एकादशी में दन्तधावन नहीं करते हैं । कोई कोई "दान्तन न कर जो मेरे पास आता है उसका समस्त कर्म्म उससे नाश होजाता है" इस बाराह- बाक्य का अवलम्बन कर यह वैष्णव-बिषय है इस लिये सब समय दान्तन करते हैं। और भी—सुनिये, समस्त अपराध में बिना दाँतन से श्री भगवान् का स्पर्श मुख्य अपराध लिखा गया है। "दान्तन न कर तथा मैथुन कर जो भगवान् का स्पर्श करता है वह महान पातकी है" यह शास्त्र वचन है। जहाँ दान्तन का निषेध है वह प्रभु के अंग सेवा न करने वाले के लिये जानना चाहिये। वहाँ प्रायश्चित्तादि है। अर्थात् भगवत् सेवा में सर्वदा दान्तन की आवश्यकता है। अन्यत्र शास्त्र के निषेध को मानना चाहिये नहीं तो प्रत्यवाय होता है ॥८॥

तथाहि बिष्णुधर्म्मे—

आद्धोपवासदिवसे खादित्वा दन्तधावनम् ।
गायत्र्या शतशः पूतं मधु प्राश्य बिशुद्ध्यतीत्यदि ॥

सर्वं पर्यवसायित्वेन निषिध्यते न तु स्वरूपत्वेन, मद्यादिवदिति, बैष्णवबिषयं द्वादश्यादौ दन्तधावननिषेधादिकं न तु मुख्यं, बैष्णवे दन्तकाष्ठं बिना शुद्ध्यभावादन्यथा नारदपञ्चरात्रे "ताम्बूलशुद्धबदनः" "ताम्बूलपूरिताननः" इति ताम्बूलभक्षणबिधानं सेवातः पूर्वं न स्यात् ॥ ६ ॥

अथ स्नानम्—तत्र प्रातस्नानमावश्यकं—

पाद्मे-प्रातःस्नानं हरेद्वैश्य ! सवाह्याभ्यन्तरं मलम् ।
प्रातः स्नानेन निष्पापो नरो न निरयं व्रजेत् ॥

बृहद्गौतमीये—

अशुचिः भिन्नमर्य्यादो यः कुर्य्यात्कृष्णपूजनम् ।
न तत्फलमवाप्नोति नरकं प्रविशेत्पुनः ॥

बिष्णुधर्म्मोत्तर में कहा है-"श्राद्ध व उपवासादि दिवस में दन्तकाष्ठ का चर्व्वण करने पर पातक होता है वह पातक शत-वार गायत्री-जप से एवं मधु भोजन से दूर होता है।" यह समस्त बचन अवैष्णव परक हैं। वैष्णव के दन्त-काष्ठ के विना शुद्धता नहीं हो सकती है । नारद-पंचरात्र में-"ताम्बूल से पबित्र-मुख हो कर" एसा कहा गया है । "मुख में ताम्बूल रख कर" यह भी वचन है । तात्पर्य्य-भगवान की सेवा के समय यदि सेवक की किसी प्रकार मुख से दुर्गन्धि निकल आती है तो वह प्रभु के अप्रियकर होता है। अतः सेवा के समय ताम्बूलादि द्वारा मुख-शोधन करना चाहिये ॥६॥

स्कन्दपुराणे—

उदयात्प्राक् चतस्रस्तु नाडिका अरुणोदयः ।
तत्र स्नानं प्रसक्तं स्यान्महापुण्यतमं स्मृतम ॥ १० ॥

आचमनं कृत्वा नद्यादौ स्वाश्रमाद्गत्वा अस्त्रेण मृदं खनित्वा हृदयमन्त्रेणादाय अस्त्रमन्त्रेण शोधिते तीरे धृत्वा कवचमन्त्रेण त्रिधा बिभज्य मूलेनाभिमन्त्र्य एकेन भागेन अङ्गानि प्रक्षाल्य पुनः द्वितीयभागमादाय सर्व्वांगं प्रलिप्य पञ्च बारं द्वादश बारं वा स्नायात तीर्थाबाहनपूर्वकम् । मथुरायां तु तीर्थावाहनं न कुर्व्वन्ति, यथा काश्यां केचित्तौरभुक्तास्तु शालग्रामे गङ्गायां चावाहनं कल्पयन्ति अदृष्टबिशेषार्थं न तु बार्चानिकं दैशिक-सांनिध्येऽपि बौद्धसान्निध्यार्थे तर्केणानयन्ति तत्तुच्छं बचन-बिरोधेन ॥ ११ ॥

अब स्नान का प्रकार—प्रातः स्नान की परम आवश्यकता है। पद्मपुराण में कहा है-प्रातः स्नान भीतर-वाहर दोनों का ही मल हरण करता है, प्रातः स्नान से मनुष्य निष्पाप हो जाता है वह नरक प्राप्त नहीं करता है। बृहद्गौतमीय में कहा-जो अपवित्र होकर एवं मर्य्यादा को तोड़ कर कृष्ण-पूजन करता है वह उस का फल-प्राप्त नहीं करता है, वह नरक में गिरता है।सूर्य्योदय के पहले चार घडी अरुणोदय काल है, उस समय स्नान प्रसस्त एवं महान् पुण्य को देने बाला है ॥१०॥

आचमन के वाद अपने आश्रम से नदी आदिक में जाकर "अस्त्राय फट" इस मन्त्र से मृत्तिका खोद कर हृदय-मन्त्र से उसका शोधन करें। नदी तट में मृत्तिका रख कर "कवचाय हूं" इस मन्त्र से त्रिभाग कर मूल मन्त्र से अभिमन्त्रित करे। एक

नारदपञ्चरात्रे नवमे पटले—

मृद्भागो मूलमन्त्रेण मन्त्रितो यः पुरा स्थितः ।
उच्चारयेत्तमादाय तोयमध्ये बिसर्जयेत् ।
तेन तद्द्विजशार्द्दूल तत्क्षणादेव जायते ॥
गङ्गातोयेन सम्पूर्णं यामुनेन शुभेन च ॥
प्रयागं चक्रतीर्थं च प्रवासं पुष्करं तथा ।
यान्ति संमिलितं तत्र मन्त्रस्यास्य प्रभावतः ॥
ततो वै बिष्णुतीर्थेषु मन्त्रं त्रिपदमुच्चरेत् ।
प्रसिद्धेषु च तीर्थेषु यद्यन्यस्याभिधां स्मरेत् ॥
स्नातकं तत्तु तत्तीर्थमभिशप्य क्षणं व्रजेत् ।
निर्झरादितडागादौ सामान्यस्नानकर्म्मणि ॥
गङ्गादीनां नदीनां च तीर्थानां च प्रकीर्त्तितम् ।
आबाहनमिति शेषदेबलः ॥ १२ ॥

भाग मृत्तिका लेकर अंगों का प्रक्षालन कर दूसरे भाग से सर्व्वांग लेपन कर पांच वार अथवा वारह वार तीर्थाह्वान पूर्वक-स्नान करें। मथुरा में तीर्थों का आह्वान न करें। जिस प्रकार कोई कोई काशी में बिना भोजन कर शालिग्राम में गंगा का आवाहन करते हैं। यह अदृष्टवृषय के लिये है परन्तु वाचनिक नहीं है ॥११॥
नारदपञ्चरात्र के नवम पटल में कहा है-पहले मूलमन्त्र से अभिमन्त्रित मृत्तिका के उस भाग को उठा कर तीर्थाह्वान मन्त्र का उच्चारण कर जल में विसर्जन करें। हे द्विजश्रेष्ठः उससे उस समय तीर्थों का आवागमन होता है। गंगाजल के साथ, शुभ यमुनाजल के साथ प्रयाग, चक्रतीर्थ, प्रवास, पुष्करादि मन्त्र-प्रभाव से उपस्थित होते हैं। विष्णुतीर्थों में मन्त्र का त्रिपद उच्चारण करें। प्रसिद्ध तीर्थों में यदि अन्य तीर्थ का नाम लेकर स्मरण

न नदीषु नदीं ब्रूयात्पर्वतेषु च पर्व्वतम् ।
नान्यत्प्रशंसेत्तत्रस्थः तीर्थेष्वायतनेषु च ॥ १३ ॥

स्नात्वाचम्य कलशमुद्रया शंखमुद्रया वा त्रिः संप्रोक्ष्य तीरमागत्यास्त्रेण बाससी परिधाय हस्तौ ऊरू च तृतीयभागया मृदा प्रक्षाल्याचम्य तिलकं दत्वा, केचित्तु गोपीचन्दनाद्यभावे जलेनैव कुर्व्वन्ति ।

गौड़निबन्धे च—

अभावे तूदकेनापि पुण्ड्रं दैवतमाचरेदिति ॥ १४ ॥

सन्ध्याबन्दनादि कृत्वा जलमध्ये श्रीकृष्णं पूजयेत् । यथा जले षट् कोणं लिखित्वा तदुपरि अष्टदलं पद्म बिलिख्य तत्र श्रीकृष्णमावाह्य जलैरेब संपूज्य तर्पयेत् मूलमन्त्रमुच्चार्य्य, श्री-

---

किया जावे तो वह तीर्थ उस स्नानकारी को अभिशाप देकर उसी क्षण चला जाता है। निर्झर-तडागादि में एवं सामान्य स्नानादि में गंगादि नदी व तीर्थों का आवाहन किया जा सकता है ऐसा शेषदेबल कहते हैं ॥१२॥

नदियों में नदी शब्द का पर्वतों में पर्वत का प्रयोग न करें । एक तीर्थ में एक देवमन्दिर में स्थित व्यक्ति अन्य तीर्थ की अन्य देवता की प्रशंसा न करें ॥१३॥

इस प्रकार स्नान कर आचमन कर कलश-मुद्रा व शंख-मुद्रा से तीन वार प्रोक्षित हो अस्त्र मन्त्र से वस्त्र पहिन कर तीसरी भाग मृत्तिका से हस्त-जंघा प्रक्षालित कर आचमन के वाद तिलक करें। कोई कोई गोपीचन्दनादि के अभाव में जल से तिलक करते हैं। गौड़निबन्ध में कहा है-तिलकादि के अभाव में जल से उद्र्ध्वपुण्ड्र करें ॥१४॥

अनन्तर सन्ध्या-वन्दनादि कर जल में श्रीकृष्ण की पूजा करें

कृष्णं तर्पयामीति उच्चरन् अष्टाविंशति बारं तर्पयेत्। ततः कामगायत्र्यार्घं दद्यात्। ततोऽष्टबारं मूलेन स्वशिरसि संप्रोक्ष्याचम्य च पूजागृहमागच्छेत्।

"कामदेवश्चतुर्थ्यन्तः पुष्पवाणाय चेत्यपि।
धीमहीतिततो ब्रूयात्तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात् ::
इत्येषा कामगायत्री चोक्ता ह्यागमबेदिना" ॥ १५॥

अथ स्नाननिषेधः बिष्णुस्मृतौ—

देवयात्रा—बिवाहेषु यज्ञोपकरणेषु च।
उत्सवेषु च सर्वेषु स्पृष्टास्पृष्टिर्न बिद्यते ॥

इति गृहमागत्य तिलकं कुर्य्यात् ॥ १६ ॥

अथ ऊर्द्ध्वपुण्ड्लक्षणं—

पाद्मे— एकान्तिनो महाभागा सर्वभूतहिते रताः।
सान्तरालं प्रकुर्व्वन्ति पुण्ड्रं हरिपदाकृतिम् ॥

तथा-जल में षट् कोण लिख कर उसके ऊपर अष्टदल कमल का अंकन कर वहाँ श्रीकृष्ण का आवाहन कर मूलमन्त्र का उच्चारण कर जल से ही पूजा करें। पश्चाद् "श्रीकृष्णं तर्पयामि" एसा कह कर २० वार तर्पण करें। अनन्तर कामगायत्री से अर्घ देवे। पश्चात् मूलमन्त्र का आठवार पाठ कर अपने मस्तक का सिंचन कर अपने "पूजा गृह मेंआवें। कामदेव में चतुर्थ्यन्त लगा कर, पुष्पवाणाय एसा कह कर "धीमहि" का उच्चारण करें तत्पश्चात "तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात्" एसा कहने से कामगायित्री वन जाती है। तन्त्रज्ञों ने एसा कहा है ॥१५॥

स्नाननिषेध- बिष्णुस्मृति में—देवता की यात्रा में, बिवाह में, यज्ञ में, उपकरण म, उत्सवों में स्पर्श-अस्पर्श का विचार नहीं है। अब गृह में आकर तिलक करें ॥१६॥

हरेः पदाकृतिं कार्य्यमुर्द्ध्वपुण्ड्रं मनोहरम्।
दण्डाकारं सुशोभाढ्यं मध्ये छिन्द्रं प्रकल्पयेत्।
तस्माच्छिद्रान्वितं पुण्ड्रं दण्डाकारं सुशोभनम् ॥
बिप्राणां सततं धार्य्यं स्त्रीणां च शुभदर्शनम्।
इति लक्षणम् ॥ १७॥

अथ धारणप्रकारः। पाद्मे—

ललाटे केशवं ध्यायन्नारायणमथोदरे।
बक्षः स्थले माधवं तु गोविन्दं कण्ठकूपके ॥
बिष्णुं च दक्षिणे कुक्षौ बाहौ च मधुसूदनम्।
त्रिविक्रमं कन्धरे तु बामनं बामपार्श्वके ॥

उद्र्ध्वपुण्ड् का लक्षण-सर्वभूत-हित में निरत, महान् भाग्य-वाला एकान्तिजन सान्तराल अर्थात् छिद्र के साथ हरि-पदाकृति पुण्ड् का धारण करते हैं। दण्डाकार, हरिपदाकार, मनोहर, शोभा-युक्त उद्र्ध्वपुण्ड् का कर्त्तव्य है, मध्यभाग में छिद्र रहना चाहिये। अतः छिद्र-युक्त दण्डाकार सुशोभित पुण्ड् विप्रों को निरन्तर धारणीय है, स्त्रियों का भी धारण शुभदर्शन रूप है ॥१७॥

तिलकधारण का प्रकार-ललाट में "केशवाय नमः," उदर में "नारायणाय नमः," बक्षः स्थल में "माधवाय नमः" कण्ठ-कूप में "गोविन्दाय नमः," दक्षिण कुक्षि में "बिष्णवे नमः," दक्षिण बाहु में "मधुसूदनाय नमः," दक्षिणस्कन्ध में "त्रिबिक्रमाय नमः," वामपार्श्व में "बामनाय नमः," बामबाहु में "श्रीधराय नमः," बामस्कन्ध में "हृषीकेशाय नमः," पृष्ठ में "पद्मनाभाय नमः," कटि में "दामोदराय नमः" इस प्रकार मन्त्र पाठ कर उन उन स्थान में उन उन देवताओं का न्यास करें ॥कोई कोई-

श्रीधरं बामबाहौ तु हृषीकेशं तु कन्धरे ।
पृष्ठे तु पद्मनाभं च कट्यां दामोदरं न्यसेत् ॥

प्रयोगस्तु "केशबाय नमः" इत्यादि । केचित्तु "केशबाय कीर्त्त्यै नम" इति प्रयुञ्जन्ते ॥ १८ ॥

अथ बिधिः पाद्मे—

"आरभ्य नासिकामूलं ललाटान्तं लिखेन्मृदम् ।
नासिकायास्त्रयो भागा नासामूलं प्रचक्षते ॥"
नासादि केशपर्य्यन्तमुद्र्ध्वपुण्ड्रं सुशोभनम् ।
अत एव नासिकातस्तिलकं कर्त्तव्यं न ललाटतः ॥

अथ काम्यतिलकं मदनपारिजाते—ब्रह्माण्डे

श्यामं शान्तिकरं प्रोक्तं रक्तं बश्यकरं तथा ।
श्रीकरं पीतमित्याहुः श्वेतं मोक्षप्रदं शुभम् ॥

रामानुजीयास्तु अतिबिस्तीर्णं तिलकं कुर्वन्ति मध्ये केचित्

ललाट में "केशवाय कीर्त्त्यै नमः," उदर में "नारायणाय कान्त्यै नमः," बक्षस्थल में-"माधवाय तुष्टैय नमः," कंठ में गोबिन्दाय पुष्टैय नमः," दक्षिणपार्श्व में-"बिष्णवे धृत्यै नमः," दक्षिण-बाहु में "मधुसूदनाय शान्त्यै नमः," दक्षिणस्कन्ध में"त्रिविक्रमाय क्रियायै नमः," बामपार्श्व में "वामनाय दयायै नमः," बामबाहु में"श्रीधराय मेधायै नमः," बामस्कन्ध में "हृषीकेशाय हर्षायै नमः,"पृष्ठ में–"पद्मनाभाय श्रद्धायै नमः," कटि में "दामोदराय लज्जायै नमः" इस प्रकार प्रयोग कर न्यास करें ॥१८॥

तिलक धारण करने की बिधि-पद्मपुराण में—नासा के मूल देश से आरम्भ कर ललाटान्त (ललाट के शेष भाग) पर्य्यन्त मृत्तिका का लेपन करें । नासिका के तीन भाग नासामूल कहा जाता है । नासिकादि से लेकर केश पर्य्यन्त उद्र्ध्वपुण्ड मनोहर

हरिद्राशेषं धारयन्ति ते तु श्रीलक्ष्मीनारायणोपासकत्वेन द्वयाधिकारिणो एव लक्ष्मीनारायणस्यैव प्रसादं गृह्णन्ति न केवलं नारायणस्य । पद्मपुराणे तथोपासनादर्शनात् । उद्र्ध्वपुण्ड्रं बिना किमपि न कार्य्यम् ॥ १९ ॥

तथोक्तं ब्रह्मपुराणे—

यज्ञो दानं तथा होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ।
भस्मीभवति तत्सर्वमूद्र्ध्वपुण्ड्रं बिना कृतम् ॥ २० ॥

होता है । अतः नासिका से तिलक कर्त्तव्य है ललाट से नहीं । काम्यतिलक की व्यवस्था मदनपारिजात में व ब्रह्माण्ड में कही गई है । श्यामवर्णतिलक शान्तिकर, श्वेतबर्ण मोक्षप्रद एवं शुभ, पीतबर्ण लक्ष्मीप्रद एवं रक्तबर्ण वश्यकर है। रामानुजी बैष्णव अति बिस्तीर्ण तिलक करते हैं एवं उनमें से कोई कोई हरिद्रा शेष को लगाते हैं । वे समस्त श्रीलक्ष्मी–नारायण के उपासक हैं, दोनों का अधिकार लेकर चलते हैं । वे लक्ष्मी-नारायण दोनों के प्रसाद का ग्रहण करते हैं केवल नारायणदेव का नहीं । पद्मपुराण में उस प्रकार की उपासना दिखने में आती है ॥१९॥

उद्र्ध्वपुण्ड्र के बिना कुछ नहीं करना चाहिये । ब्रह्म-पुराण में कहा है–यज्ञ, दान, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पणादि समस्त क्रिया ऊद्र्ध्वपुण्ड् के बिना भस्मीभूत हो जाती है । तिलक धारण में निषेध-बचन यथा—वर्त्तुल (गोलाकार), तिरछा, छिन्द्ररहित, ह्रस्व, (छोटा) दीर्घ, (लम्बा) कृश, बक्र, बिरूप, अग्र-भाग में लग्न, मूल भाग में विच्छिन्न, स्थानभ्रष्ट, मलिन, रुक्ष, परस्पर-संलग्न, अंगुलि के अतिरिक्त अन्य किसी बस्तु से निर्म्मित, दुर्गन्धी, बामहस्त से कल्पित, उद्र्ध्वपुण्ड को पण्डित गण अनर्थ कहते हैं ॥२०॥

अथ निषिद्धं—

बर्त्तुलं तिर्य्यंगाच्छिद्रं ह्रस्वं दीर्घतरं तनुम्।
बक्रं बिरूपं बद्धाग्रं भिन्नमूलं पदच्युतम् ।
अशुभ्रं रूक्षमाशक्तं तथा नाङ्गुलिकल्पितम ।
बिगन्धमपशव्यं च पुण्ड्रमाहुरनर्थकम् ॥ २१ ॥

स्कान्दे—

तिर्य्यंगपुण्ड्रं न कुर्व्वीत संप्राप्ते मरणेऽपि च ।
नैवान्य नाम च ब्रूयात्पुमान्नारयणादृते ॥

अपराधे च—

"तिर्य्यंगपुण्ड्रधरो भूत्वा यः करोति ममार्च्चनमि"त्यपराधः।
तस्मात्सुन्दरं कुर्य्याद्भगवन्मन्दिरत्वात ॥

यथोक्तं ब्रह्माण्डे—

बीक्ष्यादर्शे जले वापि यो बिदध्यात्प्रयत्नतः ।
ऊद्र्ध्वपुण्ड्रं महाभाग स याति परमां गतिम् ॥ २१ ॥

स्कन्दपुराण में कहा है-मरण के उपस्थित होने पर भी तिर्य्यंगपुण्ड्र नहीं करना एवं नारायण के बिना अन्य नाम न लेना। अपराध के बारे में कहा-तिर्य्यंगपुण्ड्र का धारण कर जो मेरी अर्चना करता है वह अपराधी है अतः उद्र्ध्वपुण्ड्र भगवान का मन्दिररूप है उसकी रचना सुन्दर होनी चाहिये। ब्रह्माण्डपुराण में कहा है-दर्पण में अथवा जल में प्रतिविम्ब देख कर जो यत्न पूर्वक उद्र्ध्वपुण्ड्र करता है वह परम गति लाभ करता है ॥२१॥

सर्वदा तिलक का धारण कर्त्तव्य है-गरुडपुराण में नारदजी का बचन है-हे द्विजश्रेष्ठ सुनो, यदि कोई द्विज ललाट में गोपीचन्दन संभव मनोहर पुण्ड्र को दिवा-रात्रि निरन्तर धारण करता है, हे खगेन्द्र ! वह कुरुक्षेत्र में चन्द्रग्रहण के समय जो पुण्य है

अथ सदा धारणं गारुडे नारदबचनम्—

गोपीचन्दनसंभवं सुरुचिरं पुण्ड्रं ललाटे द्विजो
नित्यं धारयते यदि द्विजपते ! रात्रौ दिबा सर्वदा ।
यत्पुण्यं कुरुजाङ्गले रविग्रहे माघ्यां प्रयागे तथा
तत्प्राप्नोति खगेन्द्र ! बिष्णुसदने संतिष्ठते देबवत् ॥ २२ ॥

भगवद्बचनं पाद्मे —

मत्प्रियार्थं शुभार्थं च रक्षार्थं चतुरानन !।
मत्पूजाहोमकाले च सायं प्रातः समाहितः ॥
मद्भक्तो धारयेन्नित्यमूद्र्ध्वपुण्ड्रं भयापहम् ।

तथा च श्रुतिर्यजुर्वेदे हिरण्यकेशीयशाखायां—

हरेः पदाकृतिं आत्मनि धारयति यः मध्ये छिद्रमूद्र्ध्वपुण्ड्रं यो धारयति स परस्य प्रियो भबति स पुण्यबान् स मुक्तिभाग्भबति तस्मात्सर्वदोद्र्ध्वपुण्ड्रं धार्य्यम ॥ २३ ॥

अथ महाप्रसाद-बन्दनादिकं सदाङ्गे धार्य्यम्—

अधारणे निंदा तथा पाद्मे—गौतमाम्बरीषसंबादे—

तथा माघ में प्रयाग में जो पुण्य है उसको प्राप्त करता है एवं बिष्णुसदन में देवता की भाँति विराजमान होता है ॥२२॥

पद्मपुराण में भगवान का बाक्य है-हे ब्रह्मन् ! मेरी प्रसन्नता के लिये, शुभ के लिये, रक्षा के लिये मेरा भक्त मेरी पूजा-समय में, होम करने के समय में सन्ध्या-प्रातः नित्य प्रति भय के दूर करने वाला उद्र्ध्वपुण्ड्र का धारण करें। श्रुति का बचन यजुर्वेद की-हिरण्यकेशी शाखा में-हरि के पदाकृति उद्र्ध्वपुण्ड्र का दोनों भ्रू के मध्य भाग में छिद्र पूर्वक जो धारण करता है वह परमेश्वर का प्रिय होता है, वह पुण्यवान् होता है, वह मुक्तिभागी होता है। अतः सर्वदा उद्र्ध्वपुण्ड्र का धारण कर्त्तव्य है ॥२३॥

अम्बरीष हरेर्लग्नं नीरं पुष्पं बिलेपनम् ।
भक्त्या न धत्ते शिरसा श्वपचादधिको हि सः ॥ २४ ॥

अथाङ्गुलिनियमः, तथा स्मृतेः--

अनामिका कामदोक्ता मध्यमायुः करी भवेत् ।
अङ्गुष्ठः पुष्टिदः प्रोक्तस्तर्जनी मोक्षदायिनी ॥
अङ्गुष्ठः पुष्टिदो नृणां यशोदा मध्यमा स्मृता ।
श्रीप्रदानामिका प्रोक्ता तर्जनी मोक्षदायिका ॥ २५ ॥

अथ बैष्णवस्य तिर्य्यग्पुण्ड्र निषेधः—

तिर्य्यग्पुण्ड्रं न कुर्व्वीत संप्राप्ते मरणेऽपि वा ।
नान्यस्य नाम च ब्रूयात्परं नारायणादृते ॥

महाप्रसाद-बन्दनादिक का निरन्तर अंग में धारण करना चाहिये। अधारण में निन्दा सुनी जाती है । पद्मपुराण में गौतम-अम्बरीष संबाद में कहा है-हे अम्बरीष ! हरि के लग्न जल, पुष्प, बिलेपन का जो भक्ति पूर्वक मस्तक में धारण नहीं करता है वह श्वपच से अधिक माना जाता है ॥२४॥

तिलकधारण में अंगुलिनियम—अनामिका से तिलक करने में कामना प्राप्त होती है, इसी प्रकार मध्यमा आयुः को बढ़ाने वाली है, अंगुष्ठ पुष्टि को देने वाला है, तर्जनी मोक्षदायिनी है, अंगुष्ठ मनुष्यों के पुष्टि को देता है, मध्यमा यश को बढ़ाती है, अनामिकाश्री को देनेवाली है, तथातर्ज्जनी मोक्षदायिनी है ॥२५॥

वैष्णव का तिर्य्यग्पुण्ड्र निषेध है। मरण के उपस्थित होने पर भी तिर्य्यग्पुण्ड्र नहीं करें। नारायण के बिना अन्य का नाम न लेवें। अन्यत्र कहा है-जो नराधम उद्र्ध्वपुण्ड्र में त्रिपुण्ड्र करता है वह विष्णु के गृह को तोड़ कर निश्चय नरक में जाता है। पद्मपुराण में कहा है- जिस मनुष्य के ललाट में उद्र्ध्वपुण्ड्र

तथोक्तमन्यत्र—

उद्र्ध्वपुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रं यः कुरुते स नराधमः ।
भंक्त्वा बिष्णुगृहं पुण्ड्रं स याति नरकं ध्रुवम् ॥

पाद्मे—

यच्छरीरं मनुष्याणामूद्र्ध्वपुण्ड्रं बिना भवेत् ।
द्रष्टव्यं नैव तत्तावत् श्मशानसदृशं भवेत् ॥
न तिर्य्यग्धारयेद्विद्वानापद्यपि कदाचन ॥

पद्मपुराणीयकार्त्तिके--

यस्योद्र्ध्वपुण्ड्रं दृश्येत ललाटे नो नरस्य हि ।
तद्दर्शन न कर्त्तव्यं दृष्ट्वा सूर्य्यं निरीक्षयेत् ॥
त्रिपुण्ड्रं यस्य बिप्रस्य दृश्यते नोद्र्ध्वपुण्ड्रकम् ।
तं स्पृष्ट्वाप्यथवा दृष्ट्वा सचैलं स्नानमाचरेत् ॥ २६ ॥

सामान्यतः बृहत्पाराशरे पञ्चमेऽध्याये—

ऊद्र्ध्वं तु तिलकं कुर्य्यात दैवे पित्रे च कर्म्मणि ।
निराशाः पितरो यान्ति दृष्ट्वा बिप्रं त्रिपुण्ड्रकम् ॥ २७ ॥

ननु शास्त्राप्राप्तत्वात्त्रिपुण्ड्रकस्य कथं बाधः? बाधे वा बहुशास्त्रं व्याकुलीभवेत्तथाहि-"अग्निष्टोमीयं पशुमालभेत वायव्यं

नहीं दिखता है उसका दर्शन न करना, देखकर सूर्य्य का निरीक्षण करें। जिस ब्राह्मण के मस्तक में त्रिपुण्ड्र देखा जाता है, उद्र्ध्वपुण्ड्र नहीं, उसका दर्शन व स्पर्श कर उसी वस्त्र से स्नान करें ॥२६॥

बृहत्पाराशर के पंचम अध्याय में कहा है-देव कार्य्य व पितृकार्य्य में उद्र्ध्व तिलक करना चाहिये। त्रिपुण्ड्र धारी-बिप्र को देख कर पितरगण निराश हो कर चले जाते हैं ॥२७॥

श्चेतमालभेते"त्यादीनां "न हिंस्यात्सर्वा भूतानी"त्यनेन बाधः स्यात्तत्तु न भवति तत्कथं त्रिपुण्ड्रं निषेधः? । सत्यं यथा न हिंस्यात्सर्व्वा भूतानीत्यत्र सर्व्वशब्देनाग्निष्टोमीयाद्यतिरिक्तसर्वभूतहिंसानिषेधस्तथा प्रकृते बैष्णवातिरिक्तत्रिपुण्ड्रबिधिः । ननु तथापि त्रिपुण्ड्रधारिणो ब्राह्मणस्य दर्शने कथं प्रायश्चितम् । ब्राह्मणस्यश्रेष्ठत्वादिति चेत्यबैष्णवस्य बैष्णवसम्बन्धनिषेधात् ।

तथोक्तं पाद्मे—

अबैष्णवानां संलापं बन्दनादि विवर्जनमित्यादीनि बहूशः तस्मात् चोर्द्धं धारयेत् ॥ न भूति न च तिर्य्यग् । गोपीचन्दनेन-उद्ध्वं च वृत्तं च धारयेत् चन्दनादिकम् ॥ २८ ॥

अच्छा ? त्रिपुण्ड् धारण शास्त्र में प्राप्त है, वाधित किस प्रकार माना जा सकता है । वाधित होने पर नाना-शास्त्र व्याकुल ता को प्राप्त हो सकते हैं । जैसा कि "अग्निष्टोमीय पशु का प्राप्त करें" इत्यादि बचनों का "सर्व भूतों की हिंसा न करें" इस बाक्य से वाधित होता है , यहाँ ऐसा नहीं है । किस प्रकार त्रिपुण्ड् का निषेध है । इस का समाधान-सत्य कहते हो, जिस प्रकार "समस्त भूतों की हिंसा न करें" यहाँ सर्व शब्द से अग्निष्टोमीयादि के अतिरिक्त सर्व भूतहिंसा का निषेध है उसी प्रकार वैष्णव के अतिरिक्त अन्यव्यक्ति में त्रिपुण्ड् की विधि है । अच्छा जब ऐसा है तो त्रिपुण्ड्धारी ब्राह्मण के दर्शन में किस प्रकार प्रायश्चित्त हो सकता है ? सबसे ब्राह्मण श्रेष्ठ माना जाता है । तो कहते हैं-वैष्णवों का अवैष्णवों के साथ सम्बन्ध निषेध है । पद्मपुराण में कहा है-अवैष्णवों के साथ संलाप, बन्दनादि विवजित है । इस प्रकार के वहु बचन विद्यमान हैं । अतः उद्र्ध्वपुण्ड् को धारण करें, भस्म का धारण व तिरछा धारण न करें ॥२८॥

ब्रह्माण्डे--

उद्र्ध्वपुण्ड्ं मृदा कुर्य्यात् त्रिपुण्ड्ं भस्मना सदा । तिलकं वै द्विजः कुर्य्यात् चन्दनेन यदृच्छये" त्यादि वाक्यानि अबैष्णवबिषयानि ।

अथ तिलकस्य व्यवस्था ब्रह्मपुराणे—

उद्र्ध्वपुण्ड्ं द्विजः कुर्य्यात् क्षत्रियस्तु त्रिपुण्ड्रकम् ।
अर्द्धचन्द्रं तु बैश्यस्य बर्त्तुलं शूद्रजातिषु ॥ २६ ॥

तथा पाद्मे--

"बिप्राणामूद्र्ध्वपुण्ड्ं स्यात्तिलकं तु महीभृतः ।
यशस्करं तु बैश्यानां शूद्राणां तु त्रिपुण्ड्रक" मित्यादिवचनैः बैष्णबमात्रे उद्र्ध्व पुण्ड्र-बचनानां न बिरोधः ॥

पाद्म बचनम्—

"उद्र्ध्वपुण्ड्ं तु सर्व्वेषां न निषिद्धं कदाचन ।
धारयेयुः क्षत्रियाद्याः बिष्णुभक्ता भवन्ति ये ॥
बिप्राणां नैव धार्य्यं स्यात्तिर्य्यक्पुण्ड्रादिकं तथे"त्यादिना बिरोधपरिहारः ॥ ३० ॥

ब्रह्माण्डपुराण में कहा है-मृत्तिका से उद्र्ध्वपुण्ड् करें, भस्म से त्रिपुण्ड् करे, ब्राह्मण अपनी इच्छानुसार चन्दन से तिलक करें । ये समस्त वाक्य अवैष्णव विषयक है ॥२६॥

तिलक की व्यवस्था ब्रह्मपुराण में-द्विज उद्र्ध्वपुण्ड् , क्षत्रीय त्रिपुण्ड् करें । वैश्य का अर्द्धचन्द्राकार, शूद्रजाति का वर्त्तुलाकार तिलक की व्यवस्था है । पद्मपुराण में-विप्रों का तथा क्षत्रियों की तिलक की व्यवस्था है । "वैश्यों का एवं शूद्रों का त्रिपुण्ड् यशःकर है" । इत्यादि वचनों से वैष्णवमात्र में उद्र्ध्वपुण्ड् वचनों का बिरोध नहीं होता है । पद्मपुराण का बचन- सब के कभी

अथ शङ्खचक्रादिधारणं नित्यता, स्कन्धपुराणे—

नारायणायुधैर्नित्यं चिह्नितो यस्य बिग्रहः ।
पापकोटियुतस्यापि तस्य किं कुरुते यमः ॥

पञ्चरात्रे द्रव्यमुक्तम्—

सौवर्णं राजतं ताम्रं कांस्यमायसमेव च ।
चक्रं कृत्वा तु मेधावी धारयेत्तु बिचक्षणः ॥

इतिस्मृतिः ॥

अङ्कितः शंखचक्राभ्यामुभयोर्बाहुमूलयोः ।
समर्च्चयेद्धरिं नित्यं नान्यथा पूजनं भवेत ॥

सनत्कुमारबचनम्—

भवति यस्य देहे तु अहोरात्रं दिने दिने ।
शंख-चक्र-गदा-पद्मं लिखितं सोऽच्युतः स्वयम् ॥ ३१ ॥

उद्र्ध्वपुण्ड्र का निषेद्ध नहीं है । बिष्णुभक्त क्षत्रियादि उद्र्ध्वपुण्ड्र का धारण करें । विप्रों का तिर्य्यक पुण्ड्रों का धारण अनुचित है इत्यादि बचन से बिरोध का परिहार हो जाता है ॥३०॥
अब शंख-चक्रादि धारण में नित्यता का बिचार करते हैं-स्कन्ध-पुराण में—नारायण के आयुधों से जिसका शरीर चिन्हित है, कोटि पाप से युक्त उसका यम क्या करसकता है ? पंचरात्र में—सुवर्ण, रजत, ताम्र काँस्य, लौह इन द्रव्यों से विचक्षण मेधा-वाला चक्र बना कर धारण करें । यह स्मृति-वचन है । दोनों भुजा-मूलों में शङ्खचक्र से अङ्कित होकर नित्य हरि की अर्चना करें, अन्यथा उसकी पूजा नहीं मानी जाती है । सनत्कुमार जी का बचन ऐसा है कि—जिसके शरीर में दिवा रात्रि प्रत्यह शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म चिन्हित हैं वह स्वयं अच्युत स्वरूप है ॥३१॥

पाद्मे—

उपवीतादिवद्धार्य्याः शंखचक्रादयस्तथा ।
ब्राह्मणस्य बिशेषेण बैष्णवस्य बिशेषतः ॥

बाराहे—

शंखचक्राङ्कितं कुर्य्यादात्मनो बाहुमूलयोः ।
कलत्रापत्यभृत्येषु पश्वादिषु च संपदि ॥
दक्षिणे तु भुजे बिप्रो बिभृयाद्वै सुदर्शनम् ।
सव्ये तु शंखं बिभृयादिति ब्रह्मबिदो बिदुः ॥
इति चक्रादिधारणं परं सम्बन्धबेदनम् ।
प्रातिब्रत्यनिमित्तं हि बलयादिबिभूषणम् ॥

कलत्रादिलिङ्गात्सभर्त्तृकानपि शंखचक्रादिधारणमिति ज्ञेयम् ॥ ३२ ॥

पाद्मे—

शंख-चक्रादिभिश्चिन्हैः बिप्रः प्रियतमो हरेः ।
रहितः सर्व्वधर्म्मेभ्यः प्रत्युतो नरकं ब्रजेत् ॥

पद्मपुराण में कहा है विशेष रूप से ब्राह्मण का एवं विशेष रूपसे वैष्णव का जनेऊ की भाँति शङ्ख-चक्रादिक धारणीय हैं । वराह-पुराण में कहा है-अपने वाहु मूल में शंख-चक्र अङ्कित करे । कलत्र, अपत्य, भृत्यों को, यहाँ तक अपने अधीनस्थ पश्वादि को शंख-चक्र से चिन्हित करदें । बिप्र दक्षिण-भुजा में सुदर्शन एवं वाम-भुजा में शंख का धारण करे एसा ब्रह्मवित् जन बोलते हैं । चक्रादि धारण परमेश्वर के सन्बन्ध को ज्ञात कराता है । स्त्रियों के बलयादि-बिभूषण पातिब्रत्य की सूचना करते हैं । यहाँ कलत्र शब्द के प्रयोग से पति के साथ स्त्रियों का धारण-कर्त्तव्य व्यक्त है ॥३२॥

नारदीये—

श्रीकृष्णचक्राङ्कितहीनगात्रः श्मशानतुल्यः पुरुषोऽथ नारी।
स्पृष्ट्वा नरं तं नृपते सबासा स्नात्वा समर्च्चेद्धरिमंग सत्यम् ॥

पाद्मे—

चक्रादिचिन्हहीनस्तु यः पूजयति केशवम ।
तत्सर्वं विफलं याति पूजामन्त्रजपादिकम ॥
उपबीतादिवद्धार्य्या शंखचक्रादयस्तथा ।
ब्राह्मणस्य बिशेषेण बैष्णवस्य बिशेषतः ॥

इत्यादिबाक्यैर्धारणमाबश्यकम । तथाहि तप्तचक्रादिधारण-मप्यावश्यकम।

तथोक्तं नारदपञ्चरात्रे—

द्वादशारं च षट्कोणं बलयत्रयसंयुतम ।
हरेः सुदर्शनं तप्तं धारयेत्तु बिचक्षणः ॥

नारदीये—

अनाचारोऽशुचिर्बाऽपि सर्व्वधर्म्मबहिस्कृतः ।
प्रतप्तशंखचक्राभ्यामङ्कितः पङ्क्तिपाबनः ॥

पद्मपुराण में कहा है-शंख-चक्रादि चिन्हों से विप्र हरि के प्रियतम होता है, शंख-चक्रों से रहित व्यक्ति धर्म्म से पतित होकर नरक में गिरता है। नारदीय में—जो व्यक्ति चक्रादि-चिन्हों से रहित होकर केशव का पूजन करता है उसके पूजा-मन्त्र-जपादि समस्त विफल हो जाता है। विशेष रूप से ब्राह्मण व वैष्णव का जनेऊ की भाँति शंख-चक्रादि धारण कर्त्तव्य है" इत्यादि वाक्यों से धारण करना आवश्यक है! तप्त चक्रादि के धारण करना भी आवश्यक है। नारदपञ्चरात्र में यथा-द्वादशार, षट्कोण, वलय त्रय से संयुक्त श्रीहरि के तप्त सुदर्शन का विच-

तत्रैव अत्राधिकारिणं ब्रूहीति गरुडेन पृष्टो भगवानाह—

गरुत्मानबिशेषेण सर्व्ववर्णेष्वयं बिधिः ।
बिप्रो वा यदि बा क्षत्री बैश्यः शूद्रस्तथैव च ।
अन्ये संकरजाः ते च चक्राङ्काः मम बल्लभाः ॥ ३३ ॥

इति सौवर्णे ।

ननु भवतु तप्तचक्रादिधारणे को वा विप्रतिपद्यतेऽत्र तु सामान्यविधाविधानाद्विप्रस्य च निषिद्धत्वाद्ब्राह्मणातिरिक्ते

"बिधिबच्चक्रगदादीन निजाङ्गेषु द्विजोत्तमाः ।
नित्यं संधारयिष्यन्ति पाषण्डोपहृताः कलाबिति" ॥
"यथा श्मशानगं काष्ठमनर्हं सर्व्वकर्म्मसु ।
तथा चक्राङ्कितो बिप्रः सर्व्वकर्म्मसु गर्हितः" इति बाक्य-

बलात्संकोच इति चेन्न तद्वाक्यानां पाषण्डप्रवर्त्तकत्वेनाप्रामाण्यात

क्षण जन धारण करता है। नारदीय में-अनाचार, अपवित्र, समस्त धर्म्म से रहित व्यक्ति तप्त शंख-चक्र से अङ्कित हो कुल-पावन हो जाता है। वहाँ-गरुड़ पुराण में अधिकारी वतलाइये इस प्रकार गरुड जी के पूछे जाने पर भगवान ने कहा-हे गरुड ? समस्त वर्णों में अविशेष रूप से यह बिधि बतलाई गई है। विप्र हों अथवा क्षत्री-वैश्य--शूद्र हों किम्बा वर्णसंकर हों वे सब चक्र से अङ्कित हो कर मेरे प्रिय होते हैं ॥३३॥

अच्छा-ये समस्त साधारण विधान हैं। शास्त्र में ब्राह्मण के लिये चक्रादि धारण का निषेध किया गया है-"श्रेष्ठ ब्राह्मण-गण कलिकाल में पाषण्ड-मत में ग्रसित होकर नित्य-विधिबत् चक्र-गदादि का अपने अङ्गों में धारण करते हैं।" "जिस प्रकार श्मशान-स्थित काष्ठ सर्वकर्म्म में गर्हित है उसी प्रकार चक्राङ्कित ब्राह्मण सर्व कर्म में गर्हित है।" इस प्रकार के वाक्य-बल से

तामसाश्च, तामसास्तु ऋषि-पुराण-स्मृतयः नरकहेतुकाः ।
तथोक्तम्—

न विदुर्हरिं वाह्लीकाः न स्मरन्ति हरिं क्वचित् ।
नर्चयिष्यन्ति मैत्रेय ! पाषण्डोपहताः जनाः ॥ ३४ ॥

तथा पाद्मे—महादेवं प्रति भगवद्वाक्यम्—
श्रीभगवानुवाच—

त्वं च रुद्र महाबाहो मोहनार्थं सुरद्विषम् ।
पाषण्डाचरणं धर्म्मं कुरुष्व सुरसत्तम ! ॥
तामसानि पुराणानि कथयस्व च तान् प्रति ।
मोहनानि च शास्त्राणि कुरुष्व च महामते ॥
मत्यभक्ताश्च ये विप्रा भविष्यन्ति महर्षयः ।
त्वं शक्त्या तान्समाविश्य कथयस्व च तामसान् ।
कणादं गौतमं शक्तिमुपमन्युं च जैमिनिम् ॥
कपिलं चैव दुर्वासं मृकंडं च बृहस्पतिम् ॥

पूर्ववाक्य संकोचित होता है । ऐसा तुम नहीं कह सकते हो क्योंकि पाषण्ड-प्रवर्त्तकत्व के कारण उन वाक्यों का अप्रमाणित्व एवं तामसिकत्व है। बहुत से ऋषि-पुराण-एवं स्मृत्यादि भी तामसिक होते हैं वे सब नरक के कारण हैं। जैसा कि कहा है-बहुत से जन पाषण्ड मत से असमान होकर हरि को नहीं जानते हैं, हरि का स्मरण भी कहीं नहीं करते हैं, न कहीं अर्चनादि करते हैं ॥३४॥

पद्मपुराण में महादेव के प्रति भगवान् का वाक्य है--हे महाबाहो सुरश्रेष्ठ रुद्र ? तुम देवद्वेषि असुर स्वभाव-वालों के मोहनार्थ पाषण्ड आचार धर्म्म का आविष्कार करो, उनके लिये तामस पुराणों का कथन करो, हे महामतिवाले ? मोहक-शास्त्रों

भार्गवं जामदग्निं च दशैतान् तामसान् ऋषीन् ।
स्वच्छक्त्या संनिविष्टास्ते तमसोद्रिक्तया भृशा ॥
तामसास्ते भविष्यन्ति क्षणादेव न संशयः ।
कथयिष्यन्ति ते विप्राः तामसानि जगत्त्रये ॥
पुराणानि च शास्त्राणि ये चासत्वोपबृंहिता ।
त्वां परत्वेन वदयन्ति सर्वशास्त्रेषु तामसाः ॥ ३५ ॥

ततश्च श्रीमहादेवेनोपसंहारकृतः ।

ये मे मतमवष्टभ्य चरन्ति पृथिवीतले ।
सर्व्वधर्म्मैश्च रहिता यास्यन्ति निरयं सदा ॥
मात्स्यं कौर्म्म्यं तथा लैङ्गं शैवं स्कान्ध्यं तथैव च ।
आग्नेयं च षडेतानि तामसानि निबोध मे ।

की रचना करो, जो ब्राह्मण-महर्षि गण मुझ में भक्ति नहीं करते हैं तुम अपनी शक्ति से उनमें आविष्ट होकर तामस शास्त्रों का कथन करो। कणाद, गौतम, शक्ति, उपमन्यु, जैमिनि, कपिल, दुर्वासा, मृकंड, बृहस्पति, भार्गव, जामदग्नि, ये दश तामस ऋषि हैं, तुम्हारी शक्ति से निविष्ट चित्त होकर प्रचुर तमोद्रेक के कारण वे सब तामस माने जाते हैं इसमें क्षणमात्र संशय मत करो । वे सब विप्र जगत्त्रय में तामस पुराण-शास्त्रों का कथन करेंगे । वे तामस विप्र असत्व से युक्त होकर समस्त शास्त्रों में तुम को हीं परात्पर करके कहेंगे ॥ ३५॥

उसके बाद महादेवजी ने उन बचनों को स्वीकार कर उपसंहार रूप से कहा है-जो मेरे मत का अवलम्बन कर पृथ्वी में विचरण करते हैं वे समस्त धर्म्मों से रहित होकर सर्वदा के लिये नरक में जावेंगे। मात्स्य, कौर्म्म्य, लैङ्ग, शैब, स्कान्ध्य एवं आग्नेय ये छै तामस पुराण है। वैष्णव, नारदीय, भागवत, पाद्म, बाराह

बैष्णवं नारदीयं च तथा भागवतं शुभम् ।
गारुडं च तथा पाद्मं बाराहं शुभदर्शनम् ।
सात्त्विकानि पुराणानि विज्ञेयानि शुभानि बै ॥
ब्रह्माण्डं ब्रह्मवैवर्त्तं मार्कण्डेयं तथैव च ।
भविष्यं बामनं ब्राह्म्यं राजसानि निबोधत ॥
सात्त्विका: मोक्षदा: प्रोक्ता राजसा: स्वर्गदा: शुभा: ।
तथैव तामसा: देवि ! निरयप्राप्तिहेतव: ॥ ३६ ॥
तथैव स्मृतय: प्रोक्ता ऋषिभिस्त्रिगुणान्विता: ।
बाशिष्टं चैव हारीतं व्यासं पाराशरं तथा ॥
भारद्वाजं काश्यपं च सात्त्विका मुक्तिदा: शुभा: ।
यामानं याज्ञवल्क्यं च आत्रेयं दाद्यमेव च ॥
कात्यायनं बैष्णवं च राजसा स्वर्गदा: शुभा: ।
गौतमं बार्हस्पत्यं च साम्वर्त्तं च यमं स्मृतम् ॥
शांखं चौशनसं देवि ! तामसा निरयप्रदा: ।
पाद्मे -चत्वारिंशदेकचत्वारिंशतोरध्याययोबिस्तृतमिदम् ॥३७॥

ये छै शुभमय सात्त्विक पुराण हैं। ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त्त्य, मार्कण्डेय, भविष्य, बामन, ब्राह्म्य ये छै राजस हैं। सात्त्विक मोक्षद हैं राजस स्वर्ग को देने वाले हैं, हे देवि तामस नरक प्राप्ति के कारण रूप हैं ॥३६॥

उसी प्रकार ऋषियों के द्वारा कहे गये त्रिगुण से युक्त स्मृतियाँ हैं। वाशिष्ठ, हारीत, व्यास, पाराशर, भारद्वाज, काश्यप, ये समस्त मोक्ष देने वाली सात्त्विक हैं, यामन, याज्ञ्यबल्क्य, आत्रेय, दाद्य, कात्यायन, वैष्णव ये स्वर्ग को देने वाली राजस हैं। गौतम, बार्हस्पत्य, साम्बर्त्त, यम शांख, चौशनस ये तामस नरक को देने वाली स्मृतियाँ हैं। पद्मपुराण के चत्वारिंशद्-

अयमभिसन्धिः— "जनान् मद्विमुखान् कुरु" इत्यादौ भगवद्धर्म्मसंगोपनेनैव सृष्टिवृद्धिरज्ञानमूलत्वात्। न च तेषामृषीणां शिवस्य वाप्रामाण्यं किन्तु मोहकवाक्यानामेवाप्रामाण्यम्, तस्माच्छंखचक्रादि— भगवद्धर्मनिन्दापरवाक्यानां न प्रामाण्यम् ॥ ३८ ॥

बाराहपुराणे—
कृष्णायुधाङ्कितं चिन्हं गोपीचन्दनमृत्सया ।
प्रयागादिषु तीर्थेषु स गत्वा किं करिष्यति ॥
यथा निर्दहते काष्ठं बायुना प्रेरितो भृशम् ।
तथा दहयन्ति पापानि दृष्ट्वा कृष्णायुधानि वै ॥

स्मृतिः वृद्धसनः—
उद्र्ध्वपुण्ड्रं मृदा शुभ्रं नित्यं धारयते नरः ।
तेन तस्याशुभं नश्येच्छुभमस्य प्रवर्द्धते ॥

एकचत्वारिंशद् दोनों अध्याय में इसका बिस्तार बर्णन हैं ॥३७॥

इसकी यह अभिसन्धि है कि-"मनुष्यों को मेरा विमुख करो" इत्यादि बचन भगबद्धर्म्म का गोपन के लिये है जिस से सृष्टि की बृद्धि होती है, एवं जो अज्ञानमूलक है। वे समस्त ऋषि व शिवजी अप्रामाणिक हैं एसा नहीं कह सकते हो किन्तु उनके मोहकवाक्यों का ही अप्रामाणिकत्व है। अतः शंख-चक्रादि-भगवद्धर्म्म के निन्दापरक बचन अप्रामाणिकत्व हैं ॥३८॥

वाराहपुराण में— जिमके गोपीचन्दन-मृत्तिका से कृष्णायुधों से चिन्हित अंग है वह प्रयागादि तीर्थों में जाकर क्या कर सकता है, अर्थात् जाने की आवश्यकता नहीं है। जिस प्रकार अग्नि वार वार बायु से प्रेरित होकर काष्ठ को दहन करता है ठीक उसी प्रकार कृष्ण के आयुध समूह दर्शन से पापों का दहन

शाण्डिल्य: —

धारयेद्वैष्णव: शंखं चक्रं बाहौ तु दक्षिणे ।
यो नरो मम भक्तस्य दिव्यचिन्हं तु धारयेत् ।
श्वपाको बाथ गोघ्नो बा मम लोकमवाप्नुयात् ॥ ३६ ॥

अथ श्रुतय: आथर्व्वणे—

"चक्रमादायादौ ताप्यति ब्रह्मणस्य दक्षिणबाहौ धारयेत् । चक्रमुपविषति पाञ्चजन्यमादायाग्नौ ताप्यति ब्रह्मणस्योत्तरबाहौ धारयेत् । ब्रह्मबादिनो वदन्तीति बषट् ते बिष्णो अतर्कमदयार्च स्वदग्ध: चक्रेण निर्ऋतिपरान् भित्त्वा भयं चातिमृत्युमेतीति महोपनिषदि" ॥ ४० ॥

ब्रह्मसूक्ते—

दक्षिणे तु भुजे बिप्रो बिभृयाद्वै सुदर्शनम् ।
सव्ये तु शंखं बिभृयादिति ब्रह्मबिदो बिदुरिति ॥

करता है । बृद्धसन ने कहा है-मनुष्य नित्य प्रति मृत्तिका से शुभ्र उद्र्ध्वपुण्ड्र का धारण करें तो उससे उसका अशुभ नाश होता है तथा शुभ की वृद्धि होती है ॥३६॥

अब श्रुतियों के बचनों से इस बिषय को प्रमाणित करते हैं-आथर्व्वण में-"पहले चक्र लेकर तप्त करें, पश्चाद् ब्राह्मण के दक्षिण वाहु में धारण करावें, पुनः पाञ्चजन्य शंख को लेकर अग्नि में तप्त करें, एवं ब्राह्मण के उत्तर (वाम)वाहु में धारण करावें। इस प्रकार ब्रह्मवादीगण कहते हैं । हे विष्णो! इस प्रकार चक्र से दग्ध होकर समस्त दुःख पार कर मृत्यु-सागर का पार हो जाता है, यह महोपनिषद् में कथन है ।४०॥

ब्रह्मसूक्त में कहा है-ब्राह्मण दक्षिण भुजा में सुदर्शन का तथा वाम-भुजा में शंख का धारण करें इस प्रकार ब्रह्मज्ञ गण कहते

पाद्मे—

धारयेद्विष्णुभक्तस्तु चक्रं बाहौ च दक्षिणे ।
बामे तु शंखराजानं धारयेद्विष्णुमाप्नुयात् ॥
चक्रेणैवाङ्कितो बिद्वान्बासुदेवं समाश्रयेत् ।
भावभक्तिं समास्थाय ब्रह्मलोकं प्रयास्यति ॥

ब्रह्माण्डे—ब्रह्मनारदसंबादे—

सुदर्शनेन यस्याङ्गं लाञ्छितं तु भवेत्सदा ।
देहं तस्य भवेन्नित्यं श्रिया युक्तं स्वयं हरि: ॥ ४१ ॥

आथर्व्वणे प्रकरणान्तरे—

"एभिर्वयमुरुक्रमस्य चिन्हैरङ्किता लोके सुभगा भवाम तद्विष्णो:
परमं पदं येन गच्छन्ति लाञ्छिता:" ॥ ४२ ॥

कौर्म्ये-चक्रस्य धारणे पुंसां परसम्बन्धबेदनम् ।
पतिव्रतालक्षणं हि वलयादिबिभूषणम् ॥ ४३ ॥

हैं। पद्मपुराण में-विष्णुभक्त जन दक्षिण बाहु में चक्र एवं बाम-बाहु में शंखराज का धारण करें तब विष्णु की प्राप्ति होती है । यदि बिद्वान् चक्र से अङ्कित होकर बासुदेव का आश्रय करता है तो वह भाव-भक्ति का लाभ कर ब्रह्मलोक को जाता है । ब्रह्माण्ड-पुराण में ब्रह्मनारद-संवाद में-जिस के अंग सर्व्वदा सुदर्शन से लाञ्छित है उसके अंग में नित्य श्री हरि लक्ष्मी के साथ विराज-मान रहते हैं ॥४१॥

अथर्व्वण के अन्य प्रकरण में-हम सब ऊरुक्रम भगवान् के इन चिन्हों से चिन्हित होकर सुभग होंगे, वह बिष्णु के परम पद है, चिन्हों से लाञ्छित जन वहाँ गमन करते हैं ॥४२॥

कौर्म्य में-मनुष्यों के चक्रादि के धारण से परमेश्वर के सम्बन्ध का व्यक्त होता है, स्त्रियों के बलयादि विभूषण पाति-

सामवेदे आरुणिशाखायाम्—

"पवित्रमित्यग्निः अग्निर्वै सहस्रारो नेमिः नेमि नीतप्रतनुः ब्रह्मणसायुज्यं सलोकतामाप्नोतीत्युपनिषत् " ।

नेमि शब्देन नेमियुक्तं चक्रमुच्यते ॥ ४४ ॥

आथर्व्वणे—

"चक्रं बिभर्त्ति वपुषाभितप्तं बलं देवानाममितस्य विष्णोः। स एति नाकं दुरितान् विधूय बिशन्ति यद्यतयो वीतरागाः "॥ अमितस्यापरिमितस्य सर्व्वव्याप्तस्य विष्णोः सम्बन्धिनं देवानां बलं भूतं अग्नितप्तचक्रं यो वपुषि बिभर्त्ति स दुरितान् दुरितानि विधूय वीतरागा यत्पदं बिशन्ति प्राप्नुवन्ति तं नाकं परं पदं प्राप्नुवन्तीत्यर्थः ॥ ४५ ॥

बृहदारण्यकभेदे—

"निचिक्षेप सुपर्णं भिद्यमानं मध्ये बाहुमदधत् सुदर्शनं विष्णोरिदं भूरितेजः, प्रधर्षति दिवा नक्तं बिभृयुस्वज्जनासः " यो मध्ये बाहुं वाहोर्म्मध्ये सुदर्शनमदधत् दधार स भिद्यमानं अनेन

व्रता-धर्म्म को व्यक्त करते हैं ॥४३॥

सामवेद की आरुणिशाखा में—अग्नि पवित्र है, अग्नि ही सहस्र आर (हजार अरे) वाला नेमियुक्त चक्र है, उससे प्रतप्त अर्थात् वाहुमूल से अङ्कित व्यक्ति ब्रह्म सायुज्य एवं समान लोक को प्राप्त होता है। यहाँ नेम शब्द से नेमियुक्त चक्रहै। यह उपनिषद् बचन है ।४४॥

आथर्व्वण में यथा-अपरिमित अर्थात् सर्वव्यापक विष्णु-सम्बन्धि एवं देवताओं के बल रूप, अग्नि से तप्त चक्र का जो व्यक्ति शरीर में धारण करता है वीतराग जन के प्राप्त वह दुरितों का नाश करता हुआ उन विष्णु के परम पद को प्राप्त होता है॥४५

प्रकारेण विभज्यमानं नानाविधमिति यावत्, यद्वा भिद्यमानं शत्रुजनाभिदानं कर्म्मणि प्रयोगः छान्दसः सुखेनान्तःकरणपापं नितरां चिक्षेप क्षिप्तवान्। अतो भूरिदं बहुफलप्रदं विष्णोरिदं वैष्णवं भूरितेजो बहुशत्रुसामर्थ्यं प्रधर्षति परिभवति। अतः पापराशिं नाशयतीत्यर्थः। तस्मात्जनाः दिवा नक्तं बिभृयुरिति सुपर्णमिति वीतकर्मणीत्यस्य लुटि रूपं आकारलोपः छान्दसः ॥ अत-पवित्रं ते बिततं ब्रह्मणस्य ते प्रभुर्गात्राणि पर्य्येषि बिश्वतः। अत-प्रतनूर्न तादामोऽश्नुते सृता सः तद्वहन्तस्तत्समासते। हे ब्रह्मण-स्य ते चतुर्म्मुखस्यापि नायकः बिभुस्त्वं सर्व्वेषां गात्राणि पर्य्येषि व्याप्नोषि ते व्यापकस्य तव बिततं पवित्रं चक्रं पवित्रचक्रयोः पर्य्यायता। तदुक्तं—

"पवित्रं चरणं चक्रं लोकद्वारं सुदर्शनम् ।
पर्य्यायवाचका ह्येते चक्रस्य परमात्मनः " ॥

तथा नैर्घण्टुकाः "सुदर्शनं सहस्रारं पवित्रं चरणं चक्र"मिति। अत्र यदस्तीत्यध्याहार्य्यं तेन अतप्ततनुः अतएवामः अपकः,

---

बृहदारण्यक भेद में-जो व्यक्ति वाहु मध्य में भूरि तेज वाले बिष्णु के इस सुदर्शन चक्र का धारण करता है वह शत्रु-जनादि से लभ्य नानाविध अन्तः करण पाप का अनायास से नाश करता है। यहाँ भूरिद का अर्थ बहु फल को देने वालाहै, विष्णु की वह वैष्णवी तेज बहु शत्रु सामर्थ्य का पराभव करने वाली होती है। वह वैष्णवी-तेज को प्राप्त कर पापराशि का नाश कर लेता है । अतः मनुष्य दिवा–निशि इसका धारण करें । चतुर्म्मुख ब्रह्मा के भी तुम नायक हो, तुम सबके शरीर में व्यापक रूप से विराज-मान हो, तुम्हारे चक्र भी व्यापक हैं। वितत पवित्र, ये चक्र के पर्य्याय वाची है। जैसा कि कहा है–सुदर्शन चक्र पवित्र चरण

अदग्धपाप इति यावत् तत्प्रसिद्धं मोक्षलक्षणं सुखबिशेषं नाश्नुते । तत्पबित्रं सदा बहतः अतएव सृतासः यदि पक्वाः तत्सुखमासते अश्नुवते इत्यर्थः । अत्राप्ततनूरित्यस्य प्रति सम्बन्धि-बहंत इत्युक्ते तप्तचक्रधारणमेवावगम्यते ॥ ४६ ॥

पुष्करसंहितायाम्---

"पत्रे बिष्णोऽब्जचक्रे पबित्रे जन्माम्भोधितर्त्तुं चर्षणीद्राः मूले बाह्वोर्दधतेऽन्ये पुराणा लिङ्गान्यंगे ताबकान्यर्पयंतीति" "हे बिष्णो ते तब पत्रे शंखचक्रे पबित्रे जन्माम्भोधि-तरितुं केचिच्चर्षणींद्राः ज्ञानपूर्णाः बाह्वोर्मूले दधते, अन्ये पुराणा ऋषयः तावकानि लिङ्गानि पंचायुधानि अंगे शरीरे अर्पयन्तीति" ॥४७॥

कठबल्ल्याम् —

" धृतोद्र्ध्वपुण्डः श्रृतचक्रधारी बिष्णुं परं ध्यायति यो

स्वरूप, मनुष्यों के द्वार रूप है। परमात्मा के चक्र के पवित्र, चरण, चक्र, लोकद्वार, सुदर्शन ये सब पर्य्याय वाचक हैं। नैर्घण्टुक भी कहते हैं-सुद-र्शन, सहस्रार, पवित्र, चरण ये सब बिष्णु-चक्र के वाचक हैं। यहाँ जो है उसका अध्याहार करते हैं-अतप्त शरीर वाला अर्थात जिसने तप्त-चक्र का धारण नहीं किया है वह अदग्धपाप-वाला है अर्थात् उस प्रसिद्ध मोक्ष-लक्षण सुख-बिशेष का प्राप्त नहीं करता है, उसका जो निरन्तर धारण करता है वह उस सुख का प्राप्त होता है । यहाँ "अतप्ततनूः" इस बचन से तप्तचक्र धारण विधान व्यक्त है ॥४६॥

पुष्करसंहिता में कहा-हे विष्णु ! कोई कोई ज्ञान-पुर्ण श्रेष्ठ जन वाहुमूल में जन्म-सागर पार के लिये तुम्हारे पवित्र शंख-चक्र का धारण करते हैं, अन्य कोई कोई प्राचीन ऋषियाँ शरार में तुम्हारे पंचायुध चिन्ह का अर्पण करते हैं ॥४७॥

महात्मा । स्वरेण मन्त्रेण सदा हृदि स्थितं परात्परं ते महतो महान्तं"। यो महात्मा सदा हृदये निबसन्तं परतोऽपि परं महतोऽपि महत्तरं बिष्णुं सदा स्वरेण मन्त्रेण प्रणवेन ध्यायति तदा कृतोद्र्ध्वपुण्ड्रः श्रृतचक्रधारणश्च भवेत् । श्रृतशब्दः पाकार्थः ॥ ४८ ॥

ऋक्साम्नोः— "चमूषत शकुनो बिभृत्त्वा गोविन्द ईप्सः, आयुधानि बिभ्रत् अपामूर्म्मिं सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषं बिबक्तीति" द्रप्सः कणवस्तद्वमभूतैः चमूषत कर्मवशेन द्यावा-पृथिव्योः पर्य्यायवृत्या निषीदन् संचरन् श्येनदात्मानमुक्ते तु समर्थो जीवः गोविन्दः गोविन्दस्य आयुधानि बिभ्रत् विभृया-दित्यर्थः । बिभृत्वा एवमायुधधारणं कृत्वा अपामूर्म्मिं अधिक-रणभूतं समुद्रवदपारं संसारमण्डलमिति यावन् । सचमानः "सच समवाय" इत्यस्माद्धातोः शानच, बिभृत्वा बि पूर्व्व डु भृञ् क्विपि तुकि रूपं, शकुनः शकोत्यात्मानमुद्धर्तुमिति। चमूव-दिति औश्र्यो रोदसीति विवेदनिघण्टुः गोविन्दरिति नृत्वाद्धातः छांदसः अपि महाद्यश्रिषजिश्रिषछः त्रिवक्ति शिषक्ति जुषत सेबार्थो इतीति ॥ ४९ ॥

कठबल्ली में कहा है-"जो महात्मा सर्वदा हृदय में बिराज-मान, पर से पर, महत् से भी महत्तर विष्णु का उद्र्ध्वपुण्ड् के एवं प्रतप्त चक्र के धारण पूर्वक प्रणव-मन्त्र के द्वारा ध्यान करता है।" ॥४८॥

ऋक्वेद व सामवेद में—गोबिन्द के आयुध का धारण कर समुद्र की भाँति अपार संसार मण्डल अर्थात् शाश्वत्, अमृत-मय, तुरीय धाम उनके लोक में पहुँचता है। श्येन-पक्षी जिस प्रकार आकाश-पृथिवी का विचरण करता हुआ उच्च स्थान में पहुँच जाता है ठाक वह चोदह-भुवन-अष्टावरणादि भेद करता

काठके—

"चरणं पवित्रं बिततं पुराणं येन पूतस्तरति दुष्कृतानि तेन पवित्रेण शुद्धेन पूता अति पाप्मानमरातिं तरेम्"। येन चरणेन पूतः पदांकनेन शुद्धः दुष्कृतानि सर्व्वाणि पापानि तरति तद्विततं पुराणं सनातनं चरणं चक्ररथशब्दस्योक्त्या "पवित्रं चरणं चक्रमिति" निघंटूक्त्या च चरणशब्दः सुदर्शनपरः, पवित्रं पावनं, यतः स्वसम्बन्धेन सकलमपि पापसमुदायं निबारयति। अतोऽतिपावनमिति बाक्यार्थः। शुद्धेन स्वतः शुद्धेन पवित्रेण स्वसम्बन्धिनामपि शुद्धिहेतुभूतेन चरणेन पूतास्तदङ्केन शुद्धाः पाप्मानं पापरूपमरातिं शत्रुं तरेम अतिक्रम्य वर्त्तिषिमहीति स्वात्मन्या शासनम् ॥ ५० ॥

अन्यत्र "तथा—

"लोकस्य द्वारमर्चिज्योतिष्मन् महस्वत्। अमृतस्य धारा बहुधा दोहमानं चरणं नो लोके स्तम्भितां दधातु"। अर्चिर्ज्योतिष्मन्महस्वदिति ज्वालाकिरणप्रकाशभेदस्य बिवक्षितत्वान्न पुनरुक्तिः,

---

हुआ बिष्णु धाम में पहुँच जाना है यह भावार्थ है ॥४९॥

काठक में-मनुष्य जिन चरण-चिन्हों से पवित्र होकर समस्त पापों से पार हो जाते हैं, उस विस्तृत नित्य विराजमान चरणचिन्हों से पवित्र होकर हम पाप-रूप शत्रु का अतिक्रमण कर बिराजमान होंगे। यहाँ चरण शब्द सुदर्शन परक है, पवित्र का अर्थ पावनत्व है, अपने सम्बन्ध से समस्त पाप-समूह का निवारण करता है अतः वह अति पावन है। वह पवित्रत्व उसमें स्वतः सिद्धरूप में है। जो अपने सम्बन्धियों के भी पवित्र करने वाला है। उस चरण से चिन्हित हम पवित्र होकर पाप रूप शत्रु का अतिक्रमण कर रहेंगे यह अपने प्रति शासन है ॥५०॥

यद्वा तप्तत्वेन दीप्तेराधिक्यं, पवित्रं पापनिवर्त्तकं लोकस्य द्वारं स्वर्गादिलोकस्योपायभूतं अमृतस्य धारा बहुधा दोहमानं मोक्षहेतुं अमृतस्य धारा मोक्षानुभवात् बहुधा नानाविधोपायैर्दोहमानं दुर्ल्लभं एतादृशं चरणं चक्रं अस्मिन् लोके नः अस्मान्सुधिनां दधातु। स्वयमेव सकलपुरुषार्थसाधनतया तत्तत्पुरुषार्थोपायेषु अस्मान् चञ्चलान् करोत्वित्यर्थः ॥ ५१ ॥

आथर्व्वणे—

"अग्निना वै होता चक्रं पाञ्चजन्यं सुतप्तं द्विभुजा धार्य्यते। आत्महितमाचरेदाचार्य्याय स्वसुखं प्रपद्येत तस्माद्वै कुण्ठो

अन्यत्र भी कहा गया है-वह प्रसिद्ध अर्चि-ज्योतिष्मत् महस्वत् मनुष्यों के द्वारभूत है अर्थात् स्वर्गादि लोक का प्रापक है, नानाविध उपायों से दोहमान दुर्ल्लभ अमृत की धारा रूप है, अर्थात् मोक्ष के द्वार है। उस प्रकार के वह चरणांक अर्थात् विष्णुचक्र इस लोक में हम सब को चटुलित करे, अर्थात् स्वयं समस्त-पुरुषार्थसाधन रूप से उन उन पुरुषार्थ-उपायों में हम सब को उत्कण्ठित करें। यहाँ अर्चि ज्योतिष्मत्-महस्वत् की पुनरुक्ति है, परन्तु ज्वाला-किरण प्रकाश भेद की बिवक्षा के कारण पुनरुक्ति नहीं है, किम्वा तपायमान के कारण दीप्ति की आधिक्यता है, अतः पुनरुक्ति प्रयोग है। पवित्र का अर्थ पापनिवर्त्तकत्व है, लोक के द्वार का अर्थ स्वर्गादिलोकों के उपायभूत है, यहाँ स्वर्ग शब्द से प्रपञ्चब्रह्माण्ड में स्थित स्वर्गादिक नहीं है, बैकुण्ठादि दिव्य-धाम समूह हैं। अमृत की धारा वहुधा दोहमान का तात्पर्य-मोक्ष के हेतु रूप है जिस में मोक्ष का नाना प्रकार अनुभव हैं ॥५१॥

आथर्व्वण में कहा है-होता से अग्नि के द्वारा सुतप्त पाञ्च-

भवति न पुनरागमनं सायोज्यं सलोकतामाप्नोतीत्युपनिषत्" किमु वक्तव्यं दीक्षितब्राह्मणे यतो वैष्णवबालकेऽपि मुद्रा धार्य्या तत्रापि दशाहंमध्ये ॥ ५२ ॥

तदुक्तं वृहस्पतिना—

जातस्य तु कुमारस्य धारयेत्पञ्चमे दिने ।
चक्रं कृत्वा सुवर्णेन षडारमन्त्रसंयुतमिति ॥ ५३ ॥

शाण्डिल्योऽपि—

कारयित्वा सुवर्णस्य पञ्चायुधगणं हरेः ।
बध्नीयात्कंठदेशे तु बालानां सूतिकागृहे ॥
मुक्तामणिसुवर्णाद्यैः कृत्वा चक्रादि-भूषणम् ।
यथा विभूयुः सर्वे च पुमांसः स्त्रीजनोऽपि वा ॥ ५४ ॥

जन्य चक्र का दोनों भुजा में धारण करलें, आचार्य्य के प्रति हिताचरण करें अपने सुख प्राप्त करें, उससे वैकुण्ठ लोक प्राप्त होता है, उसका पुनरागमन नहीं है, वह सायोज्य एवं समान लोक को प्राप्त करता है यह उपनिषद् है । दीक्षित ब्राह्मण मुद्रा का धारण करेगा इस विषय में तो क्या ही कहना है, ब्राह्मण बालक को भी दश दिवस के भीतर मुद्रा को धारण कराय देना चाहिये ॥५२॥

बृहस्पति ने कहा है–बालक के जन्म से पाँचमा दिन में सुवर्ण से चक्र बनाकर षडार मन्त्र संयोग कर धारण करा देना चाहिये ॥५३॥

शाण्डिल्य ने भी कहा है–सुवर्ण से श्रीहरि के पंचायुध का निर्माण कर सूतिका घर में बालकों के कंठ देश में बाँध देवें। मुक्ता-मणि-सुवर्णादियों से चक्रादि भूषण बनाकर समस्त पुरुष व समस्त स्त्रीजन धारण करें ॥५४॥

शाण्डिल्यस्मृतौ—

पशुपुत्रादिकं सर्व्वं गृहोपकरणानि च ।
अङ्कयेच्छंखचक्राभ्यां नाम कुर्य्याच्च वैष्णवैः ॥
न मुद्रयेदासनानि शयनानि महीतलम् ।
स्थापयेच्छत्रमध्ये तु शिलाचक्रादिचिन्हिताम् ॥ ५५ ॥

अग्नये—

पञ्चायुधानि धार्य्याणि भक्तिश्रद्धोपबृंहितैः ।
ललाटे मूर्द्धिन हृद्बाह्वोरेकत्रैव पृथक् पृथक् ॥
ललाटे तु गदा धार्य्या मूर्द्धिन चापं ततः परम् ।
नन्दकं चैव तन्मध्ये शंख-चक्रे भुजद्वये ॥ ५६ ॥

तथा च —

विधिवद्धृत्वा श्रीहरेः पञ्चायुधं विधानतः ।
तत्तन्मन्त्रेण मन्त्रज्ञः प्रतिष्ठाप्य पृथक् पृथक् ॥
अग्निमध्ये समारोप्य विधिवत्पूजयेन्नरः ।
अंकयेद्विधिवद् ब्रह्मन्नप्रमत्तः समाहितः ॥

शाण्डिल्यस्मृति में कहा है–पशु-पुत्रादिक समस्त गृहोपकरण को शंख-चक्र से अङ्कित करें, विष्णु-सम्बन्धि नाम यथा-विष्णु-दास, कृष्णदास इत्यादि नाम से अलंकृत कर दें । आसन, शय्या, पृथवी इनको मुद्राङ्कित नहीं करना चाँहिये । छत्र-मध्य में शिला-चक्रादि चिन्ह की स्थापना करें ॥५५॥

अग्निपुराण में कहा है–भक्ति-श्रद्धा से युक्त होकर पंचायुध का धारण कर्त्तव्य है । ललाट, मस्तक, हृदय, बाहु इन स्थानों में पंचायुध का पृथक् पृथक् धारण करें, ललाट में गदा, मस्तक में धनु, हृदय में नन्दक, दोनों भुजा में क्रम से शंख-चक्र धारण करें ॥५६॥

वर्णाश्रमेषु निष्ठानामन्येषां च विशेषतः ।
कर्त्तव्यं भगवद्भक्तैः सिद्धैर्मुक्तैः च योगिभिः ॥ ५७ ॥

प्रतापमार्त्तण्डे स्कान्दवाक्यम्—

नारायणायुधैरलंकृत्वात्मानं कलौ युगे ।
कुरुते पुण्यकर्म्माणि मेरुतुल्यानि तानि वै ॥
धात्रीमाला हरेः शंखः पद्मं कौमोदकी तथा ।
रथाङ्गचिन्हितो देहे दृश्यते स जनार्द्दनः ॥
कृष्णायुधाङ्कितो यस्तु श्मशाने म्रियते यदि ।
प्रयागे या गतिः प्रोक्ता सा गतिस्तस्य नारद ! ॥
यः करोति हरेः पूजां तस्य शस्त्राङ्कितो नरः ।
अपराधसहस्रं तु नित्यं हरति केशवः ॥
ललाटे तु गदा धार्य्या मूर्द्धिन चापं शरस्तथा ।
नन्दकं चैव हृन्मध्ये शंखचक्रं भुजद्वये ॥ ५८ ॥

यथावा-मन्त्रज्ञ यथा विधि से हवन पूर्वक पञ्चायुध का उस उस मन्त्र से अग्नि में पृथक् पृथक् रख कर, विधि पूर्वक पूजन करें। मनुष्य अप्रमत्त हो कर स्थिर पूर्वक यथा विधान से अङ्कन करें। वर्णाश्रम निष्ठ के लिये विशेष रूप से सबके प्रति यह विधि है; भगवद्भक्त, सिद्ध, मुक्त, योगि सब यह कर्त्तव्य पालन करें॥५७॥

प्रतापमार्त्तण्ड में स्कन्दपुराण का वाक्य यथा-कलि युग में नारायण के आयुध से आत्मा को अलंकृत कर पुण्य कर्म्म केकरने पर वे समस्त पुण्यकर्म्म मेरु के समान होते हैं। जिस के अंग में धात्रीमाला, हरि के शंख, पद्म, गदा एवं चक्र चिन्हित दिखे जाते हैं वह साक्षात् जनार्द्दन स्वरूप है। हे नारद ? कृष्णायुध से अङ्कित होकर यदि श्मशान में मरता है तो प्रयाग में जो गती

वाराहे—

मन्मुद्राङ्कितदेहो यो मद्भक्तो भुवि दुर्ल्लभः ।
मामपेक्षते धर्म्मात्माइहैकान्तेन चेतसा ॥
चक्राङ्कितभुजा किञ्चित् यत्र कुत्र वसन्ति वै ।
योजनानि तथा त्रीणि मम क्षेत्रं वसुन्धरे ॥
ये केचिद् यज्ञपुरुषा विष्णुचक्रेण मुद्रिताः ।
तेषां दर्शनमात्रेण महापातकनाशनम् ॥ ५९ ॥

लैङ्गे—अष्टाक्षरविदः सर्व्वे विष्णुचक्राङ्कितास्तथा ।
तावकाः वासुदेवस्य तथा ते नटनर्त्तकाः ॥
अन्ये च वैष्णवास्तत्र सर्वे चक्रेण लाञ्छिताः ॥ ६० ॥

होती है वह गती उसको मिलती है। जो मनुष्य शस्त्र से अङ्कित होकर हरी पूजा करता है उसके हजार अपराध का केशव हरण करते हैं। ललाट में गदा, मस्तक में चाप-शर, हृदय में नन्दक एवं दोनों भुजा में शंख-चक्र धारणीय हैं॥५८॥

वराहपुराण में कहा है-मेरी मुद्रा से अङ्कित देहवाला मेरा भक्त पृथिवी में दुर्ल्लभ है। धर्म्मात्मा पुरुष एकान्त-चित्त से मेरी अपेक्षा करता है। चक्राङ्कित भुज होकर मेरा भक्त जहाँ कहाँ निवास करते हैं वहाँ तीन योजन तक मेरा क्षेत्र माना जाता है। विष्णु चक्र से मुद्रित होकर कोई व्यक्ति जहाँ वैठते हैं उनके दर्शन मात्र से महापातक नाश हो जाता है॥५९॥

लिङ्गपुराण में कहा है—उस महाराज के राज्य में समस्त जन अष्टाक्षर मंत्र को जानने वाले एवं विष्णु-चक्र से अङ्कित वाले थे। और भी वासुदेव के वे समस्त जन, नट, नर्तक, तथा अन्य वैष्णव समस्त चक्र से लाञ्छित थे॥६०॥

बामने—

लीलयाऽपि लिखेद्यस्तु बाहुमूले सुदर्शनम् ।
कुलकोटिं समुद्धृत्य स गच्छेत्परमं पदम् ॥
येषां चक्राङ्कितं गात्रं कुत्रचित् परिदृश्यते ।
ते वै स्वर्गस्य नेतारो ब्राह्मणाः भुवि देवताः ॥ ६१ ॥
शंखचक्राङ्कनं कुर्य्यादात्मनो बाहुमूलयोः ।
कलत्रापत्यभृत्येषु पश्वादिष्वपि मुक्तये ॥
मच्चक्राङ्कितदेहो यो मद्भक्तो भुवि दुर्ल्लभः ।
नैवाप्नोति बशं मृत्योर्संसारभंगकृन्नरः ॥ ६२ ॥

कौर्म्ये—

चक्रादिधारणं पुंसां परं सम्बन्धवेदनम ।
पतिव्रतालक्षणं हि वलयादिबिभूषणम ॥ ६३ ॥

बामनपुराण में कहा है—जो लीला पूर्वक वाहुमूल में सुदर्शन का अङ्कन करता है वह कुल कोटि का उद्धार कर परमपद के लिये जाता है। जिनके कहीं कहीं चक्राङ्कित शरीर दीखने में आता है वे सब स्वर्ग के नेता अर्थात स्वर्ग को लेने वाले हैं, ब्राह्मण हैं एवं पृथ्वी के देवता हैं ॥६१॥

मत्स्यपुराण में कहा है—अपने वाहुमूल में शङ्ख-चक्र का अङ्कन करें। कलत्र, अपत्य, भृत्य, पश्वादिकों को भी मुक्ति के लिये अङ्कित करें। मेरे चक्र से अङ्कित देह वाला मेरा भक्त पृथ्वी में दुर्लभ है। वह मृत्यु के वस में नहीं आता है ॥६२॥

कूर्मपुराण में कहा है-मनुष्यों के चक्रादिक धारण परमेश्वर के सम्बन्ध को ज्ञात करने वाला है। स्त्रियों के लिये वलय आदि भूषण पातिव्रत्य का लक्षण है ॥६३॥

इतिहाससमुच्चये—

केचिच्चक्राङ्कितास्तत्र प्राणिनः पुण्यदर्शिनः ।
बिचरन्ति यथा कामं पुण्य-तीर्थ-प्रशंसिनः ॥

भीष्मपर्व्वणि—

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्च कृतलक्षणैः ।

हरिबंशे—

चक्राङ्किताः प्रवेष्टव्याः यावदागमनं मम ।
नामुद्रिता प्रवेष्टव्याः यावदागमनं मम ॥

भारते स्कान्दे—

नान्यं देवं नमस्कुर्य्यान्नान्यदेवं निरीक्षयेत ।
चक्राङ्कितः सदा तिष्ठेन्मद्भक्तः पाण्डुनन्दन ! ॥

ब्रह्माण्डे—

बैष्णवाः मुनयः पुण्याः बिष्णुलक्षणलक्षिताः ।
ध्यानिनो योगनिरताः सदा बिष्णुपरायणाः ॥ ६४ ॥

इतिहाससमुच्चय में कहा है-वहाँ कोई कोई पवित्र दर्शन वाले प्राणी यथेच्छा भ्रमण करते हैं वे सब पुण्यतीर्थ में प्रशंसित हैं। भीष्मपर्व में कहा—ब्राह्मण, क्षत्रिय, बैश्य, शूद्र चिन्हों से चिन्हित हों। हरिवंश में कहा है— जब तक मेरा आगमन नहीं होता है तब तक चक्राङ्कित व्यक्तियों का प्रवेश कराना एवं जब तक मेरा आगमन नहीं होता है तब तक अचिन्हित व्यक्तियों का प्रवेश नहीं कराना। महाभारत एवं स्कन्दपुराण में कहा है-हे पाण्डुनन्दन ! अन्य देवता का नमस्कार नहीं करना चाहिये। अन्य देवता का निरीक्षण भी नहीं करना चाहिये। मेरे भक्त चक्राङ्कित सर्वदा रहें। ब्रह्माण्डपुराण में कहा है। बिष्णु-लक्षण से चिन्हित व्यक्ति सर्वदा विष्णु-परायण वैष्णव माने

वायव्ये—

चक्रादिं धारयेद्विप्रो ललाटे मस्तके भुजे ।
पातकादि-बिशुद्ध्यर्थं भवक्लेशबिनाशनम् ॥
चक्राङ्कितभुजं बिप्रं यो निन्दयति सर्व्वदा ।
स याति नरकं घोरं यावदाहूतसंप्लवम् ॥
चक्राङ्कितभुजं दृष्ट्वा यस्तु तं नाभिवादयेत् ।
तिर्य्यग्योनिशतं प्राप्य बिष्ठायां जायते कृमिः
तद्धारणान्महापापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥
उद्र्ध्वपुण्डं शिखावंद्धं चक्रलाञ्छनसंयुतम् ।
चक्रलाञ्छनहीनस्य सकलं बिफलं भवेत् ॥ ६५ ॥

भारते—

चक्राङ्कितस्य सांनिध्यं व्ययं कुर्य्यात्प्रयत्नतः ।
स्नानं दानं तपो होमं तत्सर्बं चाक्षयं भवेत् ॥

जाते हैं। वे सब मुनि रूप हैं, पुण्यवान हैं, उत्तम ध्यान करने वाले एवं उत्तम योग रत हैं ॥६४॥

वायुपुराण में कहा है-ब्राह्मण ललाट, मस्तक एवं भुजाओं में चक्रादि चिन्ह को पातक शुद्धि के लिये धारण करें। जो भव-क्लेश का विनाश करने वाला है। चक्राङ्कित भुज वाले विप्र की जो निन्दा करता है वह जब तक सृष्टि प्रलय है तब तक घोर नरक को जाता है। चक्राङ्कित भुज वाले को देख कर जो उनका अभिवादन नहीं करता है वह सत सत बार तिर्यग् योनि प्राप्त कर विष्ठा का कीड़ा बनता है। चिन्हों के धारण से मनुष्य महान पापों से मुक्त होता है इसमें कोई संदेह नहीं है। मनुष्य उद्र्ध्व-पुण्ड्र को धारण करें, शिखा वध्वन करें, एवं चक्र-चिन्ह से चिन्हित रहें। चक्र लाञ्छन रहित जनका समस्त कार्य विफल होता है ॥६५॥

संवत्सरेण यत्पापं मनसा कर्मणा कृतम् ।
तत्सर्वं नश्यते तेषां शंखचक्रांकलाञ्छनात् ॥

प्रतापमार्त्तण्डे—अगस्त्यसंहितायाम्—

तस्यायुधानि वाह्वोश्च तेनैब द्विजसत्तम! ।
पापिष्ठो वाप्यपापिष्ठः सर्वज्ञोऽप्यज्ञ एव च ॥
भवेदेवाधिकार्य्यत्र पूजाकर्म्मण्यसंशयः ॥ ६६ ॥

ब्रह्माण्डे ब्रह्मनारदसंबादे—

सुदर्शनेन यस्याङ्गं लाञ्छितं तु भवेद्यदा ।
देहे तस्य भवेन्नित्यं श्रिया युक्तः स्वयं हरिः ॥
कृष्णायुधाङ्कितं दृष्ट्वा यमोऽपि हृदि शङ्कितः ।
उपसर्गाः क्षयं यान्ति रोगाः नश्यन्ति दूरतः ॥
यत्फलं पृथिवीदाने कुरुक्षेत्रे रबिग्रहे ।
बिष्णुचक्राङ्किते देहे तत्तत्फलमबाप्नुयात् ॥

महाभारत में कहा है—चक्राङ्कित व्यक्ति के निकट यत्न पूर्वक धनादिक का व्यय करें तो स्नान, दान, तपस्या, होम उसके समस्त अक्षय होते हैं। मन से कर्म से एक वर्ष में जो पाप किया जाता है वे सब उनके शङ्ख चक्र के अङ्कन से नष्ट हो जाते हैं। प्रताप-मार्तण्ड में अगस्त्यसंहिता का बचन यथा-हे द्विजश्रेष्ठ-पापिष्ठ, अपापिष्ठ, सर्वज्ञ, अल्पज्ञ समस्त व्यक्ति आयुधों से अङ्कित होकर पूजादिक का अधिकारी होता है ॥६६॥

ब्रह्माण्डपुराण के ब्रह्मनारद संवाद में कहा है-जिसके अङ्ग जिस समय सुदर्शन से लाञ्छित होता है उस समय स्वयं हरि लक्ष्मी के साथ उसके शरीर में नित्य बिराजमान होते हैं। कृष्ण आयुध से अङ्कित व्यक्ति को देख कर यमराज भी हृदय में शंकित हो जाता है। उपसर्ग समूह क्षय प्राप्त हो जाते हैं एवं रोग समूह नष्ट

चक्राङ्कितशरीरस्य गृहे मुक्तिः करे स्थिता ।
अरण्यमपि गच्छेत् किं किं पुनर्पुण्यभूमयः ॥
ततः प्रभृति देवाद्याः सर्वदेवाः मुनीश्वराः ।
देहं कुर्व्वन्ति सततं शंखचक्रादिलाञ्छनम् ॥
तस्मात्त्वमपि देवर्षे कुरु कृष्णायुधाङ्कितम् ।
स्वदेहं तव सर्व्वत्र सर्व्वसिद्धिर्भविष्यति ॥
नारायणायुधैर्नित्यं चिन्हितो यस्य बिग्रहः ।
पापकोटिशतं दग्धं तस्मिन् दृष्टे भवेत्सदा ॥
राक्षसाश्च पिशाचाश्च दानवाः दैत्यजातयः ।
कृष्णायुधाङ्कितं दृष्ट्वा सर्वे नश्यन्ति दूरतः ॥
चक्रादिनाङ्कितं देहं यः श्राद्धे कुरुते नरः ।
बिधिहीने भवेद्गापि पितृणां तद्गयासमम् ॥
चक्राङ्किततनुर्बिप्रो भुंक्ते यस्य च वेश्मनि ।
तदन्नं सर्वमश्नाति पितृभिः सह केशवः ॥

हो जाते हैं। पृथ्वीदान में कुरुक्षेत्र में सूर्य्य ग्रहण में जो फल प्राप्त हैं विष्णु चक्राङ्कित देह से वे सब फल प्राप्त होते हैं। चक्राङ्कित शरीर के गृह में मुक्ति उनके हाथ ठहरती है। वन में जाकर क्या हो सकता है ? पुण्यभूमि आदिक क्या कर सकते हैं। तब से समस्त देवता मुनीश्वर अपने शरीर को शङ्ख चक्रादि चिन्हों से चिन्हित करने लगे। अतः हे देवर्षे तुम भी अपने शरीर कृष्णायुध से अङ्कित करो। तुम्हें सर्वत्र समस्त सिद्धि मिलेगी। नारायण के आयुध से जिसके शरीर चिन्हित हैं उसके दर्शन से सतकोटि पाप दग्ध होजाता है। राक्षस, पिशाच, दानव, दैत्य कृष्णायुध से अङ्कित व्यक्ति को देख कर दूर से नाश हो जाते हैं चक्रादि चिन्ह से चिन्हित देह होकर जो व्यक्ति श्राद्ध करता है

कृष्णायुधाङ्कितो भूत्वा जलान्नं प्रददाति यः ।
तदन्नं मेरुतुल्यं स्यात्तज्जलं चार्णवोपमम् ॥
यस्यान्तकाले गात्रं तु लाञ्छितं चायुधैर्हरेः ।
दृष्ट्वा शीघ्रं पलायन्ते यमेन सह किङ्कराः ॥ ६७ ॥

ब्रह्माण्डे एव महेश्वरसंबादे—

साध्वसाधु महादेवि ! साधूनां च हितैषिणी ।
बैष्णवानां च माहात्म्यं तव बक्ष्यामि सुब्रते ! ॥
शंखचक्राङ्कितान् बिप्रान् यः पूजयति मानवः ।
स साक्षाद्विष्णुसामीप्यं लभते नात्र संशयः ॥
बिष्णुचक्राङ्कितं बिप्रं यो भूम्यामभिबादयेत् ।
ललाटपांशुसंख्याया बिष्णुलोके महीयते ॥

वह विधि हीन होने पर भी पितरों के लिये गया समान पिण्ड प्रदान करता है। चक्रादिक से चिन्हित होकर जो विप्र जिसके घर पर भोजन करता है उसके घर पर केशव पितरों के साथ उसके दिये हुये समस्त अन्न भोजन करते हैं। जो व्यक्ति कृष्ण-आयुध से अङ्कित होकर जिस जल, अन्न का दान करता है वह अन्न सुमेरु के बराबर एवं वह जल समुद्र के बराबर होता है। अंतकाल में जिसके शरीर हरि--आयुधों से चिन्हित है उसको देख कर यम के साथ उनके किङ्करगण शीघ्र पलायन करते हैं ॥६७॥

ब्रह्माण्डपुराण के माहेश्वरसंवाद में कहा है।-हे महादेवी जी ! इस संसार में साधु असाधु दो प्रकार के व्यक्ति हैं तुम साधुओं के हितैषिणी हो। हे सुब्रते ? वैष्णवों के महात्म्य तुम्हारे लिये कहता हूँ। जो मनुष्य शङ्ख चक्र से चिन्हित विप्रों की पूजा करता है वह साक्षात् विष्णुसामीप्य को प्राप्त करता है इसमें

बिष्णुचक्राङ्कितं दृष्ट्वा योऽभ्युत्थाय कृताञ्जलिः ।
स्वकीयं कुलमुद्धृत्य ब्रह्मलोके महीयते ॥
चक्राङ्कितभुजा यत्र पंक्तिमध्ये तु भुंजते ।
सा पंक्तिः स्वर्गलोकेषु देवपंक्तिषु युज्यते ॥
अष्टके मासिके चापि चक्राङ्कितभुजं चरेत् ।
रौरवात् कुलमुद्धृत्य ब्रह्मलोके महीयते ॥
शंखचक्राङ्कितं बिप्रं दृष्ट्वा योऽत्यादृतो भवेत् ।
परमानन्दमाप्नोति किं पुनस्त्वैहिकं परम् ॥
ये केचिद् यत्र पुरुषा बिष्णुचक्रेण मुद्रिताः ।
तेषां दर्शनमात्रेण महापातकनाशनम् ।
चक्राङ्कितस्य नामानि यो वदेद्भक्तिमान्नरः ॥
सर्व्वपापविनिर्म्मुक्तः स याति परमं पदम् ।

कोई संशय नहीं है। विष्णुचक्र से अङ्कित ब्राह्मण का जो पृथ्वी पर अभिवादन करता है वह अपने ललाट में लग्न धूल कणिका की संख्या से विष्णुलोक में उतने जन्म तक पूजित होता है। विष्णुचक्र से अङ्कित व्यक्ति को देख कर जो व्यक्ति कृताञ्जलि पूर्वक अभ्युत्थान करता है वह अपने कुल का उद्धार कर ब्रह्मलोक में पूजित होता है। चक्राङ्कित भुजा वाला जिस पंक्ति में भोजन करता है वह पंक्ति स्वर्ग लोक में देवपंक्ति में संयोजित होजाती है। अष्टक मास में जो व्यक्ति चक्राङ्कित भुज हो कर विचरण करता है वह रौरव से अपने समस्त कुल का उद्धार कर ब्रह्मलोक में पूजित होता है। शङ्ख-चक्र से अङ्कित ब्राह्मण को देख देखकर जो आद्रित होता है वह परमानन्द को प्राप्त होता है। उसके ऐहिक सुख का तो कहना ही क्या है। जो कोई पुरुष विष्णु-चक्र से मुद्रित है उनके दर्शन मात्र से महापातक नाश होता है। जो

चक्राङ्किताय बिप्राय यो भक्त्यान्नं ददाति यत् ।
अन्नसंख्यानि बर्षाणि ब्रह्मलोके महीयते ॥
बिष्णुभक्ताय बिप्राय चक्रचिन्हाय मानवः ।
गोखूरमात्रभूमिं तु दत्वा राज्यमवाप्नुयात् ॥
अग्निना तप्तचक्रेण बाहुमूलेषु लाञ्छिताः ।
सर्व्वपापानि संतीर्य्य भविष्यन्त्यीश्वरोपमाः ॥
विष्णुस्थाने तु सर्व्वेषु ब्राह्मणाश्चक्रलाञ्छिताः ।
ते हि बिष्णुमयाः भूत्वा बिष्णुसायुज्यमाप्नुयुः ॥
बन्हितप्तेन चक्रेण बाहुमूले तु लाञ्छिताः ।
रौरवाद्वं समुद्धृत्य यान्ति बिष्णोः परं पदम् ॥
बिष्णुचक्राङ्किता यत्र बसन्ति नरपुङ्गवाः ।
तद्देशोत्पन्नमानुषास्तद्वैष्णवत्वं लभन्ति ते ॥

मनुष्य भक्तिमान होकर चक्राङ्कित व्यक्ति का कीर्तन करता है वह समस्त पापों से मुक्त होकर परम पद को प्राप्त करता है। चक्राङ्कित बिप्र को जो भक्ति पूर्वक अन्न दान करता है वह अन्न संख्या से उतने वर्ष तक ब्रह्मलोक में पूजित होता है। मनुष्य चक्र चिन्हित विष्णु भक्त ब्राह्मण के लिये गोचरण मात्र भूमि का दान करता है वह महान राज्य प्राप्त करता है। मनुष्य अग्नि से तप्त चक्र के द्वारा बाहुमूल से लाञ्छित होकर समस्त पापों से उत्तीर्ण होते हैं, वे ईश्वर सदृश माने जाते हैं। समस्त बिष्णुस्थान में चक्र लाञ्छित ब्राह्मण गण विष्णुभक्त होकर विष्णुसायुज्य प्राप्त करते हैं। बह्नि तप्त चक्र से बाहुमूल में लाञ्छित होकर मनुष्य रौरव से उठ कर विष्णुपद को प्राप्त करते हैं। विष्णु चक्र से अङ्कित नर श्रेष्ठ जहाँ निवास करते हैं उस देश में उत्पन्न मनुष्य समूह वैष्णव होते हैं! बिष्णुचक्र से अङ्कित विप्र को विष्णु रूप से जो स्मरण

बिष्णुचक्राङ्कितं बिप्रं बिष्णुरूपमिति स्मरेत् ।
तस्य सर्व्वाणि पापानि दह्यन्ते नात्र संशयः ॥
अभ्यञ्जनादिभुक्त्यन्तं यः करोति स मानवः ।
चक्राङ्किताय बिप्राय कन्यादानं करोति यः ॥
परमानन्दमाप्नोति नृविष्णोः परमं पदम् ।
बिष्णुभक्ततमाः मुख्याः शंखचक्राङ्कितद्विजाः ॥
क्रीडार्थमपि यद्ब्रूयुः स धर्म्मः परमो मतः ।
यस्मिन् तीर्थे कृतस्नानाः बैष्णवाः चक्रलाञ्छिताः ॥
तस्मिन्स्नानं प्रकुर्व्वीत विष्णुलोकमबाप्नुयात् ।
चक्राङ्किताय बिप्राय बिष्णुभक्त्या यद्दीयते ॥
भिक्षामात्रप्रदानेन मुक्तिं यान्ति हि सूरयः ।
पादौ पवित्रभूतौ तौ बिष्णुचक्राङ्कितस्य च ॥
प्रक्षालनं द्विजाः कुर्य्यादात्मशुद्धिं करोति हि ।
चक्राङ्कितं द्विजवरं यो दूषयति मानवः ॥

करता है उसके समस्त पाप दग्ध हो जाते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं हैं। जो मनुष्य चक्राङ्कित विप्र के लिये कन्यादान करता है एवं अभ्यञ्जन, स्नान, भोजन जो कराता है वह परमानन्द स्वरूप विष्णु के परम पद का लाभ करता है। शङ्ख-चक्र से अङ्कित ब्राह्मण मुख्य एवं विष्णु भक्त तम हैं। उनके लिये जो कहा जाता है वह परम धर्म माना जाता है तथा जिस तीर्थ में चक्रलाञ्छित वैष्णवगण स्नान करते हैं उस तीर्थ में स्नान करने पर मनुष्य विष्णुलोक को प्राप्त करता है चक्राङ्कित विप्र के लिये विष्णु भक्ति से जो दिया जाता है उस भिक्षा मात्र प्रदान से दानी मुक्ति को प्राप्त करता है। विष्णु चक्र से अङ्कित जन के चरण परम पवित्र रूप हैं। उनके प्रक्षालन आत्म शुद्धि करता है। हे महादेवी जो

स चार्व्वाङ्गि महादेवि ! रौरवं नरकं ब्रजेत् ।
ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्व्वाङ्गनागमः ॥
चक्राङ्कितस्य निन्दा च पञ्चैते ह्यतिपातकाः ।
यः प्रसूयितरं द्वेष्टि तं बिद्यादन्यरेतसं ॥
चक्राङ्कितं तु यो द्वेष्टि तं बिद्यदन्यरेतसं ।
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च बानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः ॥
यत्पुण्यं कुरुते नष्टं शंखचक्रबिहीनतः ।
यज्ञदानतपो होम भोजनं पितृतर्पणम् ।
चक्रलाञ्छनहीनस्य बिप्रस्य बिफलं भवेत् ॥ ६८ ॥

अन्तिमपटले—

चक्रादिधारणं पुंसां परं सम्बन्धवेदनम् ।
पतिब्रतालक्षणं हि बलयादिबिभूषणम् ॥
एकान्तिमुनिमुख्यैस्तु कृतचक्रादिलक्षणैः ।
यजमानः प्रकुर्व्वीत प्रतिष्ठानादिकं हरेः ॥ ६९ ॥

मनुष्य चक्राङ्कित द्विजश्रेष्ठ को देखकर ईर्षा करता है वह रौरव नरक में गिरता है। ब्रह्महत्या, शुरापान, सुवर्णस्तेय, गुर्व्वाङ्गना-गमन एवं चक्राङ्कित की निन्दा ये पंच अति-पातक हैं। जो अपने माता पिता से द्वेष करता है उसको अन्य वीर्य उत्पन्न जानो। उसी चक्राङ्कित व्यक्ति से जो द्वेष करता है उसे भी उसी प्रकार वर्णशंकर जानना चाहिये। ब्रह्मचारी, गृही, बानप्रस्थी, भिक्षुक, जो पुन्य करते हैं वे सब पुन्य चक्र शङ्ख से रहित होने पर नष्ट हो जाते हैं। यज्ञ, दान, तप, होम, भोजन, पितृ तर्पण आदि समस्त कृत्य चक्र लाञ्छित रहित ब्राह्मण के विफल हो जाते हैं ॥६८॥

पारमेश्वरसंहितायाम्—

श्रोत्रियो भगवद्भक्तो गृहस्थः शास्त्रवित्तमः ।
चक्रलिंगधरो बिप्रः प्रतिष्ठां कर्त्तुमर्हति ॥
तेन प्रतिष्ठितस्तत्र सन्निधत्तो सदा हरिः ।
देवतान्तरभक्तो वा समबुद्धिरथापि वा ॥
नास्तिको बेदहीनो वा न प्रतिष्ठां समापयेत ॥ ७० ॥

नारदीयपद्धतौ—

गृहस्थः श्रोत्रियो बिप्रो नित्यं धर्मरतः शुचिः ।
शंखचक्रधरोदाचास्तद्भक्तोऽपि जितेन्द्रियः ॥
शास्त्रज्ञः सर्वदक्षश्च प्रतिष्ठां कर्त्तुमर्हति ॥ ७१ ॥

सनत्कुमारसंहितायाम्—

सर्वपापबिनाशनं रथाङ्गस्य तु धारणम् ।
सर्वकल्याणदमिह पश्चात्संसारतारणम् ॥

अन्तिमपटल में कहा है-मनुष्यों के चक्रादि धारण परमेश्वर के संबन्ध को ज्ञात कराने वाला है । स्त्रियों के बलयादि भूषण पातिव्रत्य का लक्षण है । यजमान शङ्ख चक्रादि चिन्हित एकान्ती मुनि-श्रेष्ठों के द्वारा हरि की प्रतिष्ठा करें ॥६६॥

पारमेश्वरसंहिता में कहा—वेदनिष्ठ शास्त्रज्ञ गृहस्थ भगवद् भक्त ब्राह्मण चक्र चिन्ह को धारण कर प्रतिष्ठा कर सकता है। उसके द्वारा प्रतिष्ठित होकर भगवान हरि सर्वदा बिराजमान होते हैं । अन्य देबता के भक्त एवं अन्य देवता में समान बुद्धिबाला वेद रहित नास्तिक हरि की प्रतिष्ठा नहीं कर सकता है ॥७०॥

नारदीयपद्धति में कहा है—गृहस्त, वैदिक, विप्र धर्म निरत, शुद्ध, शङ्ख चक्र धर, जितेंद्रिय, शास्त्रज्ञ, सर्वदक्ष, भगवान के भक्त भगवान की प्रतिष्ठा कर सकता है॥ ७१॥

सुबर्णरजताद्यैर्वा लोहेन च तथैव च ।
तथा रथाङ्गमष्टारं सुनाभं च सुवृत्तकम् ॥
ज्वालाचतुष्कसंयुक्तं कृत्वा चैव बिधानतः ।
अग्नौ प्रताप्य बिधिवद्धारयेद्भक्तिसंयुतः ॥ ७२ ॥

गरुड़संहितायाम्—

शृणुष्व विहगेशान सदा त्वं बचनं मम ।
श्रुतिस्मृतिस्वरूपेन जगतामुपकारकम् ॥
सर्वकर्म्माधिकारश्च शुचीनामेव चादितः ।
शुचि नियतं तस्य यो विभर्त्त्यायुधानि मे ॥
अश्बमेधसहस्रस्य बाजपेयशतस्य च ।
यत्फलं श्रूयते तत्स्यान्मदीयायुधधारणात् ॥
तद्धारणबिधिं बक्ष्ये महापातकनाशनम् ।
शंखचक्रं समाराध्य गन्धपुष्पादिभिः शुभैः ॥

सनत्कुमारसंहिता में कहा है-चक्र के धारण से समस्त पाप विनास हो जाता है वह समस्त कल्याण को देने वाला है । पश्चात् संसार के त्राण करने वाला है। सुबर्ण, रजत, अथवा लोह के द्वारा रथाङ्ग का निर्माण करे । वह अष्ट अर युक्त हो । उसकी सुन्दर नाभि हो एवं वह गोलाकार हो । उसमें चार ज्वाला हो । इस प्रकार चक्र का निर्माण कर अग्नि से विधि पूर्वक तप्त कर यथा-विधि भक्ति युक्त होकर धारण करें ॥७२॥

गरुड़संहिता में कहा है-हे विहङ्गश्रेष्ठ ! तुम निरन्तर इस बचन का श्रवण करो । जो कि श्रुति स्मृति के स्वरूप हैं एवं जगत् के उपकारक हैं। जो व्यक्ति इन आयुधों को धारण करता है उसका समस्तकर्म में अधिकार है । प्रारम्भ से ही उसमें समस्त पवित्रता आजाती है । हजार अश्वमेध से शत बाजपेय से जो फल सुनने

अनवद्यं च नैवेद्यं विनिवेद्य स्वशक्तितः ।
"सुदर्शन नमस्तेऽस्तु पाञ्चजन्य नमोऽस्तु ते" ॥
इति मन्त्रं समुचार्य्य नमः कुर्य्यात्पुनः पुनः ।
ततः पावकमभ्यर्च्य जुहुयाद्वैष्णवाहुत्या ॥
वेदादिभिस्तथा मंत्रैः स्तवेन जुहुयात्घृतम् ।
चक्रं च पाञ्चजन्यं च तस्मिन्नग्नौ विनिक्षिपेत् ॥
पुनश्च पूजा कर्त्तव्या गन्धपुष्पोपहारकैः ।
मद्भक्तानप्यनुज्ञातः प्रणतैः प्रणमेत्सुधीः ॥
अग्निनैव तु संयुक्तं चक्रमादाय मामकम् ।
दक्षिणं वाहुमूलं तु दहेद्विगतसाध्वसः ॥
अथवान्येन केनापि वैष्णवेन महात्मना ।
लाञ्छनं बिभृयाचक्रं पाञ्चजन्यं तथैव च ॥
उच्चारयन्निमं मन्त्रं हृदये मां विचिन्तयत् ।
य एतेन विधानेन शंखचक्रं तु धारयेत् ॥
त्रिषु लोकेष्वसंदिग्धो मद्भक्त इति गीयते ।

में आता है वह मेरे आयुध धारण से होता है। उसके धारण की विधि कहता हूँ जो महान पातक को नाश करने वाला है। पवित्र गन्ध पुष्पादिकों से शङ्ख चक्र की आराधना कर अपने शक्ति के अनुसार नैवेद्यादि अर्पण कर "हे सुदर्शन! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे पाञ्चजन्य! तुम्हारे लिये नमस्कार है।" इस मंत्र का उच्चारण कर वार वार नमस्कार करे। तदनन्तर अग्नि की अर्चना कर वेद मंत्रों एवं स्तवन से घृत के द्वारा वैष्णव आहुति देकर हवन करे। उस अग्नि में चक्र एवं पाञ्चजन्य का निक्षेप करे, पुनः गन्ध पुष्पादि उपहारों से पूजा करे। मेरे भक्तों को प्रणाम कर एवं उनसे आदेश लेकर अग्नि से युक्त मेरे चक्र को लेकर भय रहित

गरुत्मानुवाच—
चक्रादिधारणं देव घोरसंसारतारणम् ।
अत्रापि कारणं ब्रूहि विधौ केऽधिकारिणः ॥
श्रीभगवानुवाच—
गरुत्मन्नविशेषेण सर्ववर्णेष्वयं विधिः ।
भजस्व नित्यं चक्रं त्वं मम प्रीतिकरं शुभम् ॥
विप्रो वा यदि वा क्षत्रो वैश्यः शूद्रस्तथैव च ।
अन्ये संकरजाश्चैव चक्राङ्का मम वल्लभाः ॥
चक्राङ्कितशरीराय हव्यं कव्यं द्विजातये ।
यो ददाति नरः प्राज्ञः स भवेन्मुक्तिभुग्नरः ॥
शरीरे यस्य कस्यापि दृश्यते वै सुदर्शनम् ।
तस्मै कुर्वीत पक्षीन्द्र नमस्कारं हि यो नरः ॥
मच्चक्राङ्कितदेहाय यस्तु द्वेषं समाचरेत् ।
वदेद्वा परुषं वाक्यं मम द्वेषी नराधमः ॥
तस्मात्सर्व्वप्रयत्नेन मद्भक्तहितमाचरेत् ॥ ७३ ॥

हो दक्षिण बाहु मूल को उससे दहन करे। अथवा अन्य किसी वैष्णव महात्मा के द्वारा चक्र व पाञ्चजन्य का लाञ्छन करावै। मंत्र उच्चारण पूर्वक हृदय में मेरा चिंतन कर इस प्रकार विधान से शङ्ख चक्र का जो धारण करता है वह निश्चय तीन लोक में मेरे भक्तरूप से प्रगीत होता है। गरुड़ जी पूछते हैं-हे देव ! चक्रादि का धारण घोर संसार से परित्राण करने बाला है इसका क्या कारण है। इस विधि में कौन अधिकारी है यह हमसे कहें। श्रीभगवान कहने लगे-हे गरुड? विशेष रूप में समस्त वर्णों में ये विधि है। तुम नित्य मेरी प्रीतिकर मंगलदायक चक्र का भजन करो। विप्र हो या क्षत्री हो अथवा वैश्य या शूद्र हो अथवा वर्ण

पुराणान्तरे—

न बिदुर्हरिं वन्हिकाः न स्मरन्ति हरिं कचित् ।
नार्चयिष्यन्ति मैत्रेय पाषण्डोपहता जनाः ॥
चतुर्वेद्यपि यो बिप्रो बासुदेवं न विन्दति ।
बेदभारभराकान्तः स वै ब्राह्मणगर्दभः ॥
बिष्णुभक्तिबिहीनस्तु सर्वशास्त्रार्थवेद्यपि
ब्राह्मण्यं तस्य न भवेत्तस्योत्पत्तिर्निरर्थकम् ॥
हरिनामाक्षरयुतं भाले गोपीमृदाङ्कितम् ।
तुलसीमालिकोरस्कं न स्पृशेयुर्यमोद्भटाः ॥ ७४ ॥

संकर हो वे सब चक्रादि से अङ्कित होकर मेरे प्रिय होते हैं। जो मनुष्य चक्राङ्कित शरीर बाला ब्राह्मण के लिये हव्य कव्य प्रदान करता है वह मनुष्य मुक्ति भागी होता है। जिस किसी के शरीर में सुदर्शन दीखता है हे पक्षीराज उसे नमस्कार करना चाहिये। मेरे चक्राङ्कित देह से जो द्वेष करता है या कठोर बाक्य बोलता है वह नराधम मेरा द्वेषी है अतः सर्व प्रकार यत्न से मेरे भक्त का हिताचरण करे ॥७३॥

पुराणान्तर में कहा—ऋषिगण हरि को नहीं जानते हैं, कहीं पर भी हरि का स्मरण नहीं करते हैं। मनुष्य सब पाषण्ड धर्म से ग्रसित होकर हरि की अर्चना नही करते हैं। चतुर्वेदी जो विप्र वासुदेव को नही जानता है बह ब्राह्मण गर्दभ है। वेद-भार से भराक्रान्त है। समस्त शास्त्र वेत्ता होने पर भी जो बिष्णु भक्ति से रहित होता है उसका ब्राह्मणत्व नहीं है। उसकी उत्पत्ति निरर्थक है। हरिनामाक्षर से युक्त, भाल में गोपीचन्दन से अङ्कित, गला में तुलसी-मालिका धारी के लिये यम के उद्भट दूत गण स्पर्श नहीं करते हैं ॥७४॥

पाद्मे—

कृष्णनामाक्षरैर्गात्रमङ्कयेच्चन्दनादिना ॥
स लोकपावनो भूत्वा तस्य लोकमवाप्नुयात् ॥ ७५ ॥

बृहन्नारदीये—

तुलसीकाननं दृष्ट्वा ये नमस्कुर्व्वते नराः ।
तत्काष्ठाङ्कितकर्णा ये ते वै भागवतोत्तमाः ॥

प्रह्लादसंहितायाम—

निवेद्य केशवे मालां तुलसीकाष्ठसम्भवाम् ।
वहते यो नरो भक्त्या तस्य नैवास्ति पातकम् ॥
सदा प्रीतमनास्तस्य कृष्णो देवकीनन्दनः ।
तुलसीकाष्ठसम्भूतां यो मालां बहते नरः ॥
प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति नाशौचं तस्य बिग्रहे ।
तुलसीकाष्ठसम्भूतां प्रेतराजस्य दूतकाः ॥
दृष्ट्वा नश्यन्ति दूरेण बातोद्धूतं यथा दलम ॥ ७६ ॥

पद्मपुराण में कहा है—श्रीकृष्ण के नामाक्षर से चन्दनादि के द्वारा शरीर का अङ्कन करें तो वह व्यक्ति पवित्र हो कर श्रीकृष्ण लोक का प्राप्त करता है ॥७५॥

बृहन्नारदीयपुराण में कहा है—तुलसीबन को देख कर जो मनुष्य नमस्कार करते हैं तथा तुलसी-काष्ठ से कर्णों को विभूषित करते हैं वे निश्चय भागवतोत्तम हैं। प्रह्लादसंहिता में कहा है—तुलसी-काष्ठ से निर्म्मित माला को केशव के लिये अर्पण कर जो मनुष्य भक्ति-पूर्वक बहन करता है उसका कोई पातक नहीं है तथा देवकीनन्दन श्रीकृष्ण उसके प्रति सर्वदा प्रसन्न रहते हैं। तुलसी-काष्ठोत्पन्न माला का जो बहन करता है उसका कोई प्रायश्चित्त नहीं है एवं उसके शरीर में कोई अपवित्रता नहीं। तुलसी

पाद्मे—

ये कण्ठलग्नतुलसीनलिनाक्षमाला
ये वा ललाटफलके लसदूर्द्ध्वपुण्ड्रा ।
ये बाहुमूलपरिचिन्हितशंखचक्रा—
स्ते बैष्णवा भुवनमाशु पवित्रयन्ति ॥ ७७ ॥

अथ मालानित्यधारणम्—

न जह्यात्तुलसीमालां धात्रीमालां बिशेषतः ।
महापातकसंहत्री धर्मकामार्थदायिनी ॥ ७८ ॥

पाद्मे —

त्रयो देवास्त्रयो वेदास्तिस्रः सन्ध्यास्त्रयोऽग्नयः ।
तुलसीकाष्ठधृक् बिप्रे सदा कुर्व्वन्ति मङ्गलम् ॥

काशीखण्डे द्वारकाप्रस्तावे—

तुलसीकाष्ठसम्भूता माला धार्य्या सदा मया ।
पूजां तु तुलसीपत्रैः मया कार्य्या सदैव हि ॥ ७९ ॥

काष्ठोत्पन्न माला का दर्शन कर यमराज के दूतगण वायु से उद्धूत दल की भाँति दूर से नष्ट हो जाते हैं ॥७६॥

पद्मपुराण में कहा है–जिन के कंठ में तुलसीमाला एवं नलिनाक्ष-माला संलग्न है, जिन के ललाटपट्ट में उद्र्ध्वपुण्ड्र तिलक विद्यमान है, और जो बाहुमूल में शंख–चक्र से परिचिन्हित हैं वे वैष्णब कहे जाते हैं जो कि भुवन को शीघ्र ही पवित्र करते हैं ॥७७॥

अब माला का नित्य ही धारण करना कर्त्तव्य है उसका निर्णय करते हैं–तुलसीमाला का एवं बिशेष–तया धात्रीमाला का कभी त्याग नहीं करना चाहिये। जो कि महापातक को हनन करने वाली एवं धर्म्म–काम–अर्थ को देने वाली है ॥७८॥

अधारणे निन्दा–स्कान्दे कार्त्तिके माहात्म्ये—

धात्रीफलकृतां मालां कण्ठस्थां यो बहेन्नहि ।
बैष्णवो न स बिज्ञेयो विष्णुपूजारतो यदि ॥

गारुडे—

धारयन्ति न ये मालां हैतुकाः पापबुद्धयः ।
नरकान्न निवर्त्तन्ते दग्धा कोपाग्निना हरेः ॥
कृष्णायुधाङ्कितं बिप्रं तुलसीकाष्ठभूषितम् ।
दृष्ट्वा निन्दापरो यस्तु स बौद्धो न तु बैष्णवः ॥ ८० ॥
ततः श्रीकृष्णपूजां बै कुर्व्वन्गच्छेद्गुरुं प्रति ।
पूजयित्वा गुरुं पूर्व्वं पश्चाच्छ्रीकृष्णमर्च्चयेत् ॥

किञ्चिदुपायनं दत्त्वा गन्धपुष्पैः संपूज्य श्रीकृष्णं पूजयेन ।

पद्मपुराण में कहा है–तीन वेद, तीन देवता (ब्रह्मा–बिष्णु-महेश्वर) तीन सन्ध्या, तीन अग्नि ये सब तुलसी काष्ठ–धारी विप्र के लिये निरन्तर मङ्गल करते हैं। काशीखण्ड के द्वारका-प्रस्ताब में कहा–मैं ने तुलसी–काष्ठोत्पन्न माला का निरन्तर धारण किया है एवं तुलसी–पत्रों से सदैव पूजा करुँगा ॥७९॥

स्कन्दपुराण के कार्त्तिकमाहात्म्य में–बिष्णुपूजा–परायण जो व्यक्ति कंठ में धात्रीफलनिर्म्मित माला का बहन नहीं करता है वह वैष्णव नहीं है ऐसा जानना। गरुड़पुराणमें कहा–पाप बुद्धि वाले, नाना प्रकार कारण देखाने वाले व्यक्ति यदि तुलसीमाला का धारण नहीं करते हैं तो वे नरक से नहीं फिरते हैं एवं हरि के कोपाग्नि से जल जाते हैं। कृष्णायुध से अङ्कित एवं तुलसी-काष्ठ से विप्रों को भूषित देख कर जो निंदा करता है वह बौद्ध है वैष्णब नहीं है ॥८०॥

तदनन्तर श्रीकृष्ण-पूजा उद्देश्य में पहले गुरु के पास गमन

तथोक्तं —

प्रथमं च गुरुं पूज्य ततश्चैव ममार्च्चनम् ।
कुर्व्वन् सिद्धिमवाप्नोति ह्यन्यथा तस्य निस्फलम् ॥

महार्णवे—

रिक्तपाणिर्न पश्येत राजानं भिषजं गुरुम् ॥

मनुः-अन्यो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः ।

तथा बामनकल्पे—

यो मन्त्रः स गुरुः साक्षाद् यो गुरुः स हरिः स्मृतः ।
गुरुर्यस्य भवेत्तुष्टस्तस्य तुष्टो हरिः स्वयम् ॥

बिष्णुरहस्ये—

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन यथा बिष्णुस्तथा गुरुः ।
अभेदेनार्चयेद् यस्तु स भक्तिफलमाप्नुयात् ॥

करे, पहले गुरु का पूजन कर पश्चात् श्रीकृष्ण की अर्च्चना करे। किञ्चित् उपायन दे कर गन्ध-पुष्पों से गुरु को सन्मानित कर पश्चात् श्रीकृष्ण की पूजा करे। जैसा कि कहा है-पहले गुरु का पूजन कर पश्चात् मेरी पूजा करें तो सिद्धि प्राप्ति होती है नहीं तो उस का पूजन निष्फल हो जाता है। महार्णव में कहा है-राजा वैद्य एवं गुरु के पास जावें तो रिक्तहस्त न जावें। मनु ने कहा है-मन्त्रदाता गुरु पिता माने जाते हैं, तथा मन्त्र लेने वाला शिष्य बालक माना जाता है। वामनकल्प में कहा है-जो मन्त्र है वह साक्षात् गुरु रूप हैं, जो गुरु है वे हरि माने जाते हैं। जिस के गुरु प्रसन्न होते हैं उसके हरि स्वयं प्रसन्न हो जाते हैं। विष्णुरहस्य में कहा--अतः सर्व प्रकार प्रयत्न से "जैसे विष्णु वैसे गुरु हैं" इस प्रकार अभदेरूप से जो अर्च्चना करता है वह भक्ति फल लाभ करता है। भागवत में कहा है-मुझको साक्षात

आदित्यपुराणे—

अविद्यो वा सविद्यो वा गुरुरेव जनार्द्दनः ।
स्वमार्गस्थोऽप्यमार्गस्थो गुरुरेव सदा गतिः ॥

किञ्च-हरौ रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन ।
तस्मात्सर्व्वप्रयत्नेन गुरुमेव प्रसादयेत् ॥

ब्रह्मवैवर्त्ते—

अपि घ्नन्तः सपन्तो वा बिरुद्धा अपि ये क्रुधाः ।
गुरवः पूजनीयास्ते गृहं नत्वा नयेत तान् ॥८१॥

अथवाकरणे निन्दा सप्तमस्कन्दे नारदबचनम्—

यस्य साक्षाद्भगवति ज्ञानदीपप्रदे गुरौ ।
भक्तिर्न स्याच्छ्रुतं तस्य मन्ये कुञ्जरशौचवत् ॥

नारदोक्तौ—

गुरौ संनिहिते यस्तु पूजयेदन्यमग्रतः ।
स दुर्गतिमवाप्नोति पूजनं तस्य निष्फलम् ॥ ८२ ॥

आचार्य्य स्वरूप जानना, आचार्य्य का अवमानन नहीं करना चाहिये। गुरु को कभी मनुष्य-बुद्धि से असूया न करे क्योंकि वे सर्वदेवमय हरिस्वरूप हैं। आदित्यपुराण में कहा है-अविद्य हों अथवा सविद्य हों गुरुदेव जनार्द्दन स्वरूप हैं। अपने मार्ग में हों अथवा मार्गच्युत हों तो भी गुरुदेव सर्वदा गति हैं। और भी हरि के रुष्ट होने पर गुरु रक्षा करते हैं परन्तु गुरु के रुष्ट होने पर कोई रक्षा नहीं कर सकता है। अतः सर्व प्रकार से गुरु को प्रसन्न करें। ब्रह्मवैवर्त्त में कहा है-गुरुदेव मार डारें, अथवा अभिशाप दें किम्बा विरुद्ध आचरण करें अपितु निरन्तर क्रोधित रहें तो भी वे पूजनीय हैं उनको विनय पूर्वक नमस्कार कर घर में लेकर पूजा करें ॥८१॥

अथ गुरुत्यागनिन्दा—

उपदेष्टारमाम्नायागतं परिहरन्ति ये ।
तान् मृतानपि क्रव्यादः कृतघ्नान्नोपभुञ्जते ॥
बोधः कलुषितस्तेन दौरात्म्यं प्रकटीकृतम् ।
गुरुर्येन परित्यक्तस्तेन त्यक्तः पुरा हरिः ॥ ८३ ॥

तथा श्रीदशमे —

मातरं पितरं वृद्धं भार्य्यां साध्वीं सुतं शिशुं ।
गुरुं विप्रं प्रपन्नं च कल्पोऽबिभ्रच्छ्वसन्मृतः ॥

तन्त्रे—

प्रतिपद्य गुरुं यस्तु मोहाद्विप्रतिपद्यते ।
स कल्पकोटि नरके पच्यते पुरुषाधमः ॥ ८४ ॥

सप्तमस्कन्ध में नारद जी का बचन है-जिस को साक्षात भगवद्रूप, ज्ञानदीप के देने वाले गुरु में भक्ति नही हैं उसका समस्त कर्म्म हस्ति-शौचवत् जानना चाहिये । नारद जी के बचन में-गुरु के उपस्थित में जो आगे अन्य की पूजा करता है वह दुर्गति को प्राप्त करता है एवं उसका पूजन निष्फल माना जाता है ॥८२॥

गुरुत्याग में निन्दा यथा—जो व्यक्ति उपदेश्य गुरु का त्याग करते हैं वे कृतघ्न हैं, मरे पीछे उनके पिण्डों का कोई ग्रहण नहीं करता हैं । उसने अपने बोध का कलुषित किया है एवं उसने दौरात्म्य का प्रगट किया हैं कि जिसने गुरु का त्याग किया है । पहले से ही उसने हरि का त्याग कर दिया है ॥८३॥

दशम में—वृद्ध माता-पिता, सती-भार्य्या, बालक पुत्र, विप्र गुरु इनका यावत् जीवन मुख्य रूप से सेवा करें । तन्त्र में कहा है-जो सद् गुरु को प्राप्त हाकर मोह से अन्य प्रकार विचार करता है वह पुरुषाधम कोटिकल्प पर्य्यन्त नरक में पचता है ॥८४॥

अत्रापवादः पञ्चरात्रे—

अवैष्णवोपदिष्टेन मन्त्रेण निरयं ब्रजेत् ।
पुनश्च बिधिना सम्यक् ग्राहयेद्वैष्णवाद्गुरोः ॥

पाद्मे उत्तरखण्डे द्वात्रिंशदध्याये—

न्यासे वाप्यर्च्चने वापि मन्त्रमैकान्तिनं श्रयेत् ।
अवैष्णवोपदिष्टस्य पूर्वमन्त्रवरद्वयम् ॥
पुनश्च बिधिना सम्यक् बैष्णवाद्ग्राहयेन्मुने ! ॥

नारदपञ्चरात्रे—

महाकुलप्रसूतोऽपि सर्व्वयज्ञेषु दीक्षितः ।
सहस्रशाखाध्यायी च न गुरुः स्यादवैष्णवः ॥

ब्राह्मणेतरदीक्षितस्य ब्राह्मणस्य पुनर्वैष्णवब्राह्मणाद्दीक्षा-चिता प्रायश्चितप्रकारेण, शूद्राचार्य्यस्य प्रायश्चितबिधानात् । इतरस्मादितरस्य भगवच्छक्तिप्रवेशाप्रवेशाभ्यां व्यवस्था ॥ ८५ ॥

इस विषय में अपवाद-नारदपञ्चरात्र में यथा-अवैष्णव गुरु के उपदिष्ट मन्त्र से मनुष्य नरक में जाता है । अतः पुनः सम्यक् विधि से वैष्णवगुरु से मन्त्र ग्रहण करें । पद्मपुराण के उत्तरखण्ड में बत्तीसवाँ अध्याय में कहा है-न्यासादि में अथवा अर्च्चनादि में एकान्तिक मन्त्र का आश्रय करें । अवैष्णव उपदिष्ट मन्त्र का त्यागदें । वैष्णव उपदिष्ट मन्त्र का ग्रहण कर्त्तव्य है । यदि पहले किसी प्रकार अवैष्णव से मन्त्र-ग्रहण हो गया हो तो उसका त्याग कर विधि पूर्वक वैष्णव गुरु से मन्त्र का ग्रहण करें । नारदपञ्चरात्र में—"महान कुल में उत्पन्न हो, सर्व्वयज्ञों में दीक्षित हो, सहस्रशाखा के अध्यायी हों, परन्तु यदि अवैष्णव होवहगुरुनहीं है" । ब्राह्मणेतर से दीक्षित ब्राह्मण का पुनः वैष्णव-ब्राह्मण से प्रायश्चित्त के द्वारा दीक्षा ग्रहण उचित है । शूद्राचार्य्य का भी

अथ गुर्व्वभक्तनिन्दा अगस्त्यसंहितायाम्—

यैः शिष्यैः शश्वदाराध्या गुरवो ह्यवमानिताः ।
पुत्रमित्रकलत्रादिसम्पद्भ्यः प्रच्युता हि ते ॥
ये गुर्व्वाज्ञां न कुर्व्वन्ति पापिष्ठाः पुरुषाधमाः ।
न तेषां नरकक्लेशनिस्तारो मुनिसत्तम ! ॥ ८६ ॥

पूर्व्वोक्तरीत्या गुरुसेवां कृत्वा गुर्व्वाज्ञां सादरेण गृन्हन् श्रीकृष्णमन्दिरं संस्कृतं प्रविशेत् । तथाहि संस्कारप्रकारस्तु पूर्वं मार्ज्जनं ततो गोमयेनोपलेपस्ततश्चित्रीकरणं स्वस्तिकादिना ।

तथैकादशे—

संमार्जनोपलेपाभ्यां सेकमण्डलवर्त्तनैः ।
गृहशुश्रूषणं मह्यं दास्यवद्यदमायया ॥ ८७ ॥

प्रायश्चित्त किया जाता है। यदि शूद्राचार्य्य में भगवच्छक्ति का प्रवेश अनुमित किया जाता है तो ब्राह्मण उससे दीक्षा ले सकता है। भगवच्छक्ति के प्रवेश व अप्रवेश में यह व्यवस्था की जाती है ॥८५॥

गुरु अभक्त की निन्दा अगस्त्यसंहिता में—जिन शिष्यों से पहले गुरुदेव आराधित हो कर पश्चात् उन शिष्यों से अवमानित होते हैं वे सब शिष्य पुत्र-मित्र-कलत्रादि सम्पत्ति से गिर जाते हैं। जो गुरु-आज्ञा का पालन नहीं करते हैं वे पापिष्ठ हैं पुरुषों में अधम हैं, हे मुनिश्रेष्ठ ! सुनो, उनके नरक-क्लेश का उद्धार नहीं है ॥८६॥

पूर्वोक्त-रीति से गुरु-सेवा कर गुरु-आज्ञा का सादर पूर्वक ग्रहण कर संस्कार किया हुआ मन्दिर में प्रवेश करे। मन्दिर संस्कार का प्रकार यथा-पहले मार्जन, तदनन्तर गोबर से लेपन पश्चात् स्वस्तिकादि के द्वारा चित्रीकरण है। एकादश में कहा है-

ततो ध्वजापताकादिभिरलंकृतं कुर्य्यात् । ध्वजापताकायास्तु भेदः गरुडजयपत्रादिचित्रत्वेन ।

स्कान्दे—

कृष्णालयं प्रकुरुते पताकाभिश्च शोभितम् ।
सदैव तस्य लोके तु वासस्तस्य न चान्यतः ॥

इत्यादि माहात्म्यं ज्ञातव्यम् ॥ ८८ ॥

अथ मन्दिरे प्रवेशः ।—

कृताचमनन्यासः मन्दिरे प्रविशेत् । तत्र तान्त्रिकप्रकारेणैव कृष्णं पूजयेत् ॥

तथा चोक्तं विष्णुयामले—

कृते श्रुत्युक्तमार्गः स्यात्त्रेतायां स्मृतिभावतः ।
द्वापरे तु पुराणोक्तः कलावागमसम्भवः ॥

सम्मार्जन, उपलेपन, सींचन, मण्डलादि के द्वारा मेरे मन्दिर की सेवा मेरे भक्त जन दास की भाँति कपट रहित होकर करें ॥८७॥

तदनन्तर ध्वजा-पताकादियों से मन्दिर को अलंकृत करे। ध्वजा एवं पताका के ये भेद हैं कि जिनमें गरुड़ एवं जयपत्र आदि अलग अलग चित्र हैं। स्कन्दपुराण में कहा है—जो व्यक्ति श्रीकृष्ण के मंदिर को पताकादियों से शोभित करता है उसको भगवान् श्रीकृष्ण के लोक में निरन्तर वास मिलता है इसमें सन्देह नहीं है ॥८८॥

मन्दिरप्रवेश—आचमन एवं न्यास आदिक कर मन्दिर में प्रवेश करे, एवं तांत्रिक प्रकार से श्रीकृष्ण की पूजा करे। विष्णुयामल में कहा है-सत्ययुग में श्रुति-कथित-मार्ग,त्रेता में स्मृति-मार्ग, द्वापर में पुराण कथित-मार्ग, कलिकाल में तंत्र-मार्ग ग्रह-

अशुद्धाः शूद्रकल्पा हि ब्राह्मणाः कलिसंभवाः।
तेषामागममार्गे स्याच्छुद्धिर्न श्रौतवर्त्मना ॥
अभावे बेदमन्त्राणां पञ्चरात्र्यादितो बिधिः।
बैदिकी तान्त्रिकी दीक्षा द्विविधापि हि सिद्धिदा ॥
ततः आगममार्गेण सेवयेत् ॥ ८६ ॥

अथ प्रबोधनम्—

ततः प्रबोधयेत्कृष्णं शंखघण्टादिघोषणैः ।
ततश्च मार्जयेदङ्गे स्थितं गन्धसुपुष्पकम् ॥

बेदस्तुत्यादिना प्रबोधनं—तथोक्तं पञ्चरात्रे—

यः प्रातरुत्थाय एवं बिधैर्नित्यं निर्म्माल्यमीशस्य निराकरोति।
न तस्य दुःखं न दरिद्रता स्यात् नाकालमृत्युर्न च रोगमात्रम् ॥
तत्र निर्म्माल्योद्धारणं प्रातः काले न सूर्य्योदये ॥ ९० ॥

तथा चोक्तं पञ्चरात्रे —

अरुणोदयबेलायां निर्माल्यं शल्यतां ब्रजेत् ।
प्रातस्तु स्यान्महाशल्यं घटिकामात्रयोगतः ॥

णीय हैं। कलिकाल में उत्पन्न ब्राह्मण-गण अपवित्र एवं शूद्र समान होते हैं । अतः उनके आगम-मार्ग से शुद्धि होती है वेदमार्ग से नहीं। वेदमंत्रों के अभाव से पञ्चरात्र-कथित विधि मानी जाती है। अतः वैदिकी तांत्रिकी दो प्रकार की दीक्षा सिद्धि को देने वाली है अतः आगममार्ग से सेवा करे ॥८९॥

अथ प्रबोधन—अनन्तर शङ्ख-घण्टादि से श्रीकृष्ण का प्रबोधन करे एवं अंगस्थित गंध-पुष्पादिकों का मार्जन करे। वेदस्तुत्यादि के द्वारा प्रबोधन करे। नारदपंचरात्र में कहा है—जो प्रातःकाल उठकर इस प्रकार से नित्य प्रभु के निर्माल्य उत्तोलन करता है उसको न दुःख न दरिद्रता न अकालमृत्यु न कोई रोग होता है। सूर्योदय के पहले निर्माल्य का उत्तोलन करना चाहिये ॥९०॥

अतिशल्यं विजानीयात्ततो बज्रप्रहारबत् ।
अरुणोदयबेलायां शल्यं तत्क्षमते हरिः ॥
घटिकायामतिक्रान्तौ क्षुद्रपातकमावहेत् ।
मुहूर्त्ते समतिक्रान्ते पूर्णं पातकमुच्यते ॥
अतिपातकमेव स्याद् घटिकाणां चतुष्टयम् ।
मुहूर्त्ततृतीये पूर्णे महापातकमुच्यते ॥
ततः परं ब्रह्मबधो महापातकपञ्चकम् ।
प्रहरे पूर्णतां याते प्रायश्चित्तं ततो नहि ॥ ९१ ॥

अथ प्रायश्चित्तम्—

अतिक्रान्ते मुहूर्त्तार्द्धे सहस्रं जपमाचरेत् ।
पूर्णमुहूर्त्तसंजाते सहस्रं सार्द्धमुच्यते ॥

पंञ्चरात्र में कहा है-अरुणोदयकाल में निर्माल्य शल्यात को प्राप्त करता है। और प्रातः काल में महाशल्य माना जाता है। एक घड़ी मात्र योग से अतिशल्य जानना जो कि बज्रप्रहार के बराबर होता है। अरुणोदय कालमें जो शल्य है उसको श्री हरि क्षमा करते हैं। एक घड़ी के अतिक्रान्त होने पर क्षुद्रपातक एवं मुहूर्त्त काल के अतिक्रान्त होने पर पूर्णपातक और चार घड़ी के अतिक्रान्त होने पर अतिपातक, तीनमुहूर्त्त के अतिक्रान्त होने पर महापातक कहा जाता है। उसके बाद ब्रह्मबधरूप पाँच महा पातक होते हैं। एक प्रहर के पूर्ण होने पर इसका प्रायश्चित नहीं किया जा सकता है ॥९१॥

प्रायश्चित्त का विधान—अर्ध मुहूर्त के अतिक्रान्त होने पर हजार बार, पूर्ण मुहूर्त्त के अतिक्रान्त होने पर डेढ़ हजार बार, चार घड़ी के अतिक्रान्त होने पर दो हजार बार, तीन मुहूर्त्त के अति

सहस्रद्वितयं कुर्य्याद्घटिकाणां चतुष्टये ।
मुहूर्त्ते तृतीये प्राप्ते अयुतं जपमाचरेत् ॥
प्रहरे पूर्णतां याते पुरश्चरणमुच्यते ।
प्रहरे समतिक्रान्ते प्रायश्चित्तं न बिद्यते ॥ ६२ ॥

अथ मुखप्रक्षालनार्थमुष्णोदकं कुर्य्यात् । ततो बस्त्रं मुखमार्जनार्थं ततो दन्तकाष्ठमग्रकूर्च्चीकृतं द्वादशाङ्गुलं ततो जिह्वोल्लेखनिकाम् ।

तथा चोक्तं बिष्णुधर्म्मोत्तरे—

जिह्वोल्लेखनिकां दत्त्वा बिरोगस्त्वभिजायते ।
पादुकायाः प्रदानेन गतिमिष्टामबाप्नुयात् ॥
मृद्भागदानाद्देवस्य भूमिमाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥

ततो दुग्धं समर्प्य नीराजनं कुर्य्यात् महास्थाने श्रीमूर्त्तौ, बक्ष्माणक्रमेण स्वदेहं शुद्धीकृत्य स्पर्शं कुर्य्यात् ॥ ६३ ॥

क्रान्त होने पर दस हजार बार एवं एक प्रहर के अतिक्रान्त होने पर पुरश्चरण-संख्या से जप करना चाहिये । एक प्रहर के वाद के उस पाप का प्रायश्चित्त नहीं किया जा सकता है ॥६२॥

तदनन्तर मुख प्रक्षालन के लिये इषत् उष्ण जल देना चाहिये, तत्पश्चात् मुख मार्जन के लिये वस्त्र खण्ड प्रदान करे । तदनन्तर दन्त काष्ठ का अग्र भाग कूँच कर अर्पण करे जिसका परिमाण द्वादश अंगुल होना चाहिये । तदनन्तर जीभछीली दिखावै । विष्णुधर्मोत्तरमें कहा है—जीभछिली देने पर मनुष्य रोग शून्य होता है । पादुका अर्पण से अभिलषित गति को प्राप्त करता है ! देव के लिये मृत्तिका का भाग दान करने से उत्तम भूमि को प्राप्त करता है । तदनन्तर दुग्ध प्रदान कर नीराजन करे । बक्षमाणक्रम से अपने शरीर को शुद्ध करके स्पर्श करे ॥६३॥

अथ पूजाप्रकारः—

तत्रादौ द्वारपूजा—द्वारे—"द्वारदेबताभ्यो नमः" द्वाराग्रे—"गरुडाय नमः" द्वारोदूर्ध्वे—"द्वारश्रियै नमः" इति मन्त्रैः तान् चण्डप्रचण्डादिकं च सम्पूज्य ततोऽङ्गं संकोचयन् प्रविशेत् ।

तथैव रामार्च्चनचन्द्रिकायाम्—

अभिधानात् ततः दिग्बन्धपूर्वमक्षतादीन प्रक्षिपेत ॥६४॥

अथासनम्—

आसनभूमिं स्पृष्ट्वा "आसनमन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः सुतलं छन्दः कूर्म्मो देबता आसनपावने बिनियोगः" "पृथ्वि ! त्वया धृता लोकास्त्वं धृता बिष्णुना पुरा । त्वञ्च धारय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनमिति" पठित्वा कम्बलादिकमासनं संस्थाप्य स्वस्तिकासनेन पद्मासनेन चोपबिशेत् ।

तथैब रामार्च्चनचन्द्रिकायाम्—

कृष्णाजिनं ब्याघ्रचर्म्म कौशेयं बेत्रनिर्म्मितम ।
कृष्णाजिनं कम्बलं वा कल्पयेदासनं मृदु ॥

पूजा का प्रकार-पहले द्वारपूजा है । द्वार में "द्वारदेवताभ्यो नमः, द्वार के अग्र भाग में "गरुडाय नमः, और द्वार के ऊर्ध्व भाग में "द्वारश्रियै नमः" कह कर उन सबकी तथा चण्ड-प्रचण्डादि की पूजा कर अङ्गो को संकुचित कर मंदिर में प्रवेश करे । रामार्चनचन्द्रिका में कहा है-तदनन्तर दिग् वंधन कर अक्षतादि का क्षेपण करे । ६४॥

आसन प्रकार-आसन भूमि का स्पर्श कर मूलोक्त "अस्य आसनमन्त्रस्य" इत्यादि आसन मंत्रका पाठ कर कम्वलादि आसन रख कर स्वस्तिक आसन से अथवा पद्मासन से वैठे । रामार्चनचन्द्रिका में कहा है-मृगचर्म, व्याघ्रचर्म अथवा कौषेय

अथ निषिद्धासनानि—

वंशाश्मदारुधरणीतृणपल्लवनिर्म्मितम् ।
बर्ज्जयेदासनं धीमान् दारिद्र्यव्याधिदुःखदम् ॥ ६५ ॥

अत्र पात्रस्थापनं—

स्ववामाग्रे शंखार्घपाद्याचमनीयादिपात्राणि पूर्णकलशं च स्वदक्षिणे गन्धपुष्पतुलस्यादि, स्वपृष्ठे करप्रक्षालनपात्रादि स्थापयेत। घृतादिदीपं च दक्षिणे भागे अर्घादिपात्रं तु यथा बैभवं सुवर्णादिना पद्माकारं कल्पयेत् ।

यथोक्तं देवीपुराणे—

नाना बिचित्ररूपाणि परिकल्पयेत पाद्याचमनीयमधुपर्कार्थं पात्रचतुष्टयं स्थापयेत ॥

अथार्घे द्रव्याणि—

गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिलाः सर्षपा दूर्वा च ।

तथोक्तं सारदायाम् —

गन्धपुष्पोक्षतयवकुशाग्रतिलशर्षपैः सदूर्व्वैः ।

आसन (कुशाशन) वेत्र-निर्मित आसन, तथा कम्वलासन रखना चाहिये । निशिद्ध आसन यथा-बाँस, पत्थर, लकड़ी, धरणी (मृत्तिका) तृण, पल्लव-निमित आसन का बुद्धिमान लोग वर्जित करें । क्योंकि वे सब दारिद्र-व्याधि को देने वाले हैं ॥६५॥

पात्र स्थापन का प्रकार-अपने वाम भाग के आगे शङ्ख, अर्घ पाद्य, आचमनीय, आदिक पात्र एवं पूर्णकलश, अपने दक्षिण-भाग में गंध, पुष्प, तुलसी आदिक, और पृष्ठ-भाग में हस्त प्रक्षालन के लिये पात्र आदि स्थापित करे । दक्षिण-भाग में घृत-प्रदीप रखे । अपने वैभव के अनुसार पद्माकार अर्घ्यादिपात्र का निर्माण कर स्थापना करे । देवीपुराण में कहा है-पाद्य, अर्घ,

अथ पाद्यद्रव्यम्--

श्यामाकं दूर्व्वा कमलं विष्णुक्रान्ता ।

तथा चन्द्रिकायाम्--

पाद्यपात्रेऽपि दातव्यं शामाकं दूर्वमेव च ।
अब्जं च बिष्णुक्रान्तां च पाद्यसिद्धयै प्रयोजयेत् ॥

अथाचमनद्रव्यम्--

जातीफलं लबङ्गं च कंकोलैला ।

तथा सारदायाम् --

जातीलबङ्गकंकोलैस्तदुक्तं तन्त्रवेदिभिः ।

अथ मधुपर्कद्रव्यम् —

दधि-मधु-सर्पिश्च अथ चैकपात्रेणैव द्रव्याभावे भावनया कल्पयेत् ।

आचमन, मधुपर्क के लिये नाना चित्रबिचित्र पात्र चतुष्टय स्थापना करे । अब अर्घ द्रव्य यह है-गंध, पुष्प, अक्षत, जव, कुशाग्र, तिल,सरसों, दूर्बादि । शारदातिलक में कहा है-गंध, पुष्प, अक्षत, जव,कुशाग्र, तिल, सरसों, दूर्वा इन वस्तुओं से अर्घ्य प्रदान करे । पाद्य द्रव्य—श्यामाक, दूर्वा, कमल, विष्णुक्रान्ता ये पाद्यद्रव्य हैं । रामार्चनचन्द्रिका में कहा है-पाद्यपात्र में श्यामाक, दूर्वा का प्रदान करना चाहिये । कमल एवं विष्णुक्रान्ता को पाद्य सिद्धि के लिये नियोजित करे । आचमनद्रव्य-जायफल, लौंग, कंकोल (शीतल-चीनि), इलाइची ये आचमन द्रव्य हैं । शारदातिलक में कहा है-तन्त्रवेदियों ने जायफल, लौंग, कंकोल (शीतलचीनि) को आचमन द्रव्य बतलाया है । मधुपर्क द्रव्य-दधि, मधु, घी, ये मधुपर्क द्रव्य है । इन सबको एक पात्र में रखे । द्रव्याभाव में भावना

तथोक्तं चन्द्रिकायाम् —

एकस्मिन्नपि बा पात्रे पाद्याघीदीनि कल्पयेत् ।
सर्बोपचारबस्तुनामभावे भावनैव हि ॥ ६६ ॥

उक्तं द्रव्यादिकं सम्पाद्य बिघ्ननिबारणं बामपार्ष्णिघातत्रयेण मन्त्रं पठन् कुर्य्यात् । अथ मन्त्रः—"अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुबि संस्थिताः । ये भूता बिघ्नकर्त्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया" इति दृष्ट्या सर्बगतान् बिघ्नान्निबारयेत् । ततो गुरून्नमः स्कुर्य्यात् स्वबामभागे-गुरु-परमगुरु-परात्परगुरून् चतुर्थ्यन्तनमोऽन्तान्, वामे गणेशं, अग्रे श्रीकृष्णं नमः स्कुर्य्यात् ॥ ६७ ॥

अथ न्यासादीनि, कर्त्तव्यताक्रमः । —

"मूलेन हस्तौ संशोध्य वास्त्रमन्त्रेण बन्धनम् ।
दिशां तालत्रयेणैव कुर्य्यादागमशास्त्रबित् ॥

से पूजा करनी चाहिये । रामार्च्चनचन्द्रिका में कहा है-यदि शक्ति न हो तो एक ही पात्र में समस्त वस्तु की स्थापना करे तथा समस्त उपचार बस्तुओं के अभाव में भावना के द्वारा पूजा करे ॥६६॥

उन द्रव्यों का संपादन कर वाम ऐड़ी के तीन घात से मंत्रपाठ कर सर्व दिशाओं के विघ्नों का निवारण करे। मूल में मंत्र कथित है ! तदनन्तर अपने वाम-भाग में गुरु, परमगुरु, परात्परगुरु का नमस्कार करे । नमस्कार मंत्र-यथा-"गुरुभ्यो नमः" परम-गुरुभ्यो नमः", "परात्परगुरुभ्यो नमः" , पश्चात् वाम-भाग में "गं गणेशाय नमः" इस मंत्र से गणेशजी को, अग्र-भाग में "श्री-कृष्णाय नमः" ऐसा कह कर श्रीकृष्ण को नमस्कार करे ॥६७॥

न्यासादिकों के कर्त्तव्य क्रम-तंत्रबित् पहले मूल-मंत्र से हस्त का शोधनकर, अस्त्रमंत्र से तीन ताल देकर दिशाओं का बन्धन

अग्निबीजेन चाग्नेश्च प्राकारं जलधारया ।
कल्पयेदथवाङ्गुल्या तर्जन्या सर्वतो दिशाम् ॥
बिनियोगं ततः कुर्य्यात्स्वस्वमन्त्रानुसारतः ।
स्वस्वकामानुसाराच्च भूतशुद्धिं ततश्चरेत् ॥
मातृकात्मकमन्त्रस्य मुनिः छन्दः सदैवतम् ।
न्यसेत्ततो मातृकायाश्चाक्षरान् ह्यंगपञ्चकम् ॥
पश्चान्मातृकया ह्यङ्गपञ्चके ह्यङ्गपञ्चकम् ।
ततो मातृकया सर्वस्वांगे सर्वाक्षरं न्यसेत् ॥
सविन्दुसविसर्गं च ह्युभाभ्यां सर्बमक्षरम् ।
स्थितिसृष्ट्यादिभेदश्च गुरोर्ज्ञेयः सुबुद्धिना ॥
केशवादेः सकीर्त्यैश्च न्यासस्य ध्यानमाचरेत् ।
ततो न्यासं प्रकुर्व्वीत केशवादेः सकीर्तितः ॥
तत्त्वन्यासं ततः कुर्य्यादन्ते बीजं च बिन्यसेत् ।

करे। अथवा अंगुली-तर्जनी के द्वारा अग्नि-बीज से जलधार के द्वारा-सर्व दिशाओं में अग्नि-प्राकार करे । तत्पश्चात् अपने अपने मंत्रानुसार बिनियोग करे । तदनन्तर अपने अपने मंत्रानुसार भूतशुद्धि करे । तत्पश्चात मुनि, छन्द, देवता के साथ मातृकाक्षर मंत्र का न्यास करे । अनन्तर मातृका के पाँच अंगो में न्यास करे तत्पश्चात् मातृका के समस्त वर्ण समस्ताङ्गों में न्यास करे। बिन्दु, विसर्ग, एवं विन्दुबिसर्ग दोनों के साथ मातृकाक्षर का प्रयोग करे। अ से लेकर क्ष पर्यन्त मातृकाक्षर हैं । इनके सृष्टि-स्थित्यादि भेद हैं । अर्थात् अनुलोम बिलोम से इनके भेद हैं । ये समस्त भेद सुबुद्धिजन गुरु से जान ले। कीर्ति आदि शक्ति के साथ केशवादि का न्यास करना चाहिये। एवं उसी प्रकार ध्यानादि करे । तदनन्तर तत्वन्यास

नृहरेः सर्व्वगात्रेषु प्राणायामं ततश्चरेत् ॥
ततश्च बपुषा स्वेन योगपीठं प्रकल्पयेत् ।
करशुद्धिं ततः कुर्य्यात् मध्ये पृष्ठे सपार्श्वके ॥
दशाक्षरस्य च मनोरङ्गुलीषु तदक्षरम् ।
सृष्टि-स्थितिप्रभेदेन ह्यंगुलीन्यास ईरितः ॥
अङ्गकैः पञ्चकैर्मन्त्रैरङ्गुलीषु च बिन्यसेत् ।
ततो न्यसेन्मातृकार्णान् मनुना संपुटीकृतान् ॥
दशार्णं ह्युच्चरेत्पूर्वं पश्चान्मातृकमक्षरम् ।
ततोऽपि मनुवर्य्यं च संपुटीकरणं त्विदम् ॥
ततश्च दशकं तत्त्वं न्यसेत सृष्ट्यादिभेदतः ।
वेदादिपुटितं पश्चादाकेशात्पादगं मनु ॥
त्रिशः संन्यस्य विधिवत्पश्चादावर्त्तयेद्यथा ।

करे। अन्त में श्रीहरि के मङ्गलमय समस्त गात्रों में बीजन्यास करे। तत्पश्चात् प्राणायाम करे। तदनन्तर अपने शरीर के द्वारा योगपीठ की कल्पना करे। तत्पश्चात् कर शुद्धि करे। मध्य में, पृष्ठ में, पार्श्व में दशाक्षर मंत्र का न्यास करे। अंगुलियों में सृष्टि-स्थिति-भेद से मंत्रो का न्यास अंगुलीन्यास है। मंत्र-के पाँच अंग से अंगुलियों का विन्यास करे। तत्पश्चात् मंत्र द्वारा संपुट देकर मातृका-वर्णो का न्यास करे। पहले दशाक्षर मंत्र का उच्चारण करे। पश्चात् मातृकाक्षर का उच्चारण करे फिर अंत में दशाक्षर का उच्चारण करे ये मंत्र का संपुटी-करण है। तदनन्तर सृष्टि स्थित्यादि भेद से दश तत्व का न्यास करे। पश्चात् केश से लेकर पाद पर्यन्त वेदादि से पुटित मंत्र का तीन तीन न्यास करे। पश्चात् विभूति पञ्जर तथा मूर्ति-पञ्जर का न्यास करे। पुनः सृष्टि-स्थिति का न्यास करे। तत्पश्चात मंत्र के दशाक्षर

बिभूतिपञ्जरं पश्चान्मूर्त्तिपञ्जरकं ह्यनु ॥
सृष्टि— स्थिती पुनश्चांगे दशार्णं च दशाङ्गकम् ।
श्चांगकैः पञ्चभिर्मन्त्रैरंगेष्वव तु बिन्यसेत् ॥
ततो मुन्यादिकं न्यसेत् पश्चान्मुद्रां प्रदर्शयेत् ।
पूर्वं तु बेणुमुद्रा स्याद्बनमाला ततः प्रिया ॥
श्रीबत्सकौस्तुभौ पश्चाद्बिल्वमुद्रातिगोपिता ।
अस्त्रं पठन् दिशाबन्धं प्रकुर्य्याच्च समाहितः ॥
ब्रजराजकुमारस्य ततो ध्यानं समाचरेत ॥ ९८ ॥

तथा चोक्तं नारदपञ्चरात्रे—
स्वागतं देवदेवेश संनिधौ भव केशव ! ।
गृहाण मानसीं पूजां यथार्थपरिभाबिताम् ॥ इति
अथोपचारैः संपूज्य भगवान् गोकुलेश्वरः ।
स्ववृत्त्योपार्जितैर्द्रव्यैजीवमात्रैर्यथाबिधिः ॥
पूर्वं शङ्खं प्रतिष्ठाप्य ततः पूजनमारभेत् ।
पीठपूजां ततः कुर्य्यात्पश्चात्पाद्यादिकं चरेत ॥

तत्त्वसागरे—संग्राहकपद्यं—
आवाहनादिमुद्राश्च दर्शयित्वा ततः पुनः ।
अङ्गन्यासं च देवस्य कृत्वा मुद्रां प्रदर्शयेत् ॥

को दस अंगो में न्यास करे। पुनः मंत्र के पाँच अंग से पंचांग का न्यास करे। अनन्तर ऋष्यादि न्यास करे, उसके बाद मुद्राओं का दर्शन करावें। पहिले बेणुमुद्रा, उसके बाद परम-प्रिया वनमाला, तदनन्तर श्रीवत्समुद्रा, कौस्तुभमुद्रा को दिखावै। बाद में अत्यन्त गोपनीय बिल्वमुद्रा दिखावै। पश्चात् अस्त्रमंत्र का पाठ कर दिशाओं का बन्धन कर संयत-चित्त से ब्रजराजकुमार का ध्यान करे ॥९८॥

नारदपंचरात्र में कहा है-हे देवदेवेश ! हे केशब! तुम्हारा स्वागत है, तुम सन्निधि हो। यथार्थ रूप से परिभावित मानसी पूजा को

स्मृत्यर्थसारे—

आवाहनासनापाद्यं सार्व्वमाचमनीयकम् ।
स्नानमाचमनं बस्त्राचमनं चोपवीतकम् ॥
आचमनं गन्धं पुष्पं धूपं दीपं प्रकल्पयेत् ।
नैवेद्यं पुनराचमं नत्वा स्तुत्वा बिसर्जयेत् ॥१००॥

अथावाहनादिबिचारः—

आवाहनविसर्ज्जने च शालग्रामप्रतिष्ठितश्रीमूर्त्तौ न स्तः ।

तथोक्तं स्कान्दकार्त्तिकमहात्म्ये—

सुबर्णार्च्चा न रत्नार्च्चा न शिलार्च्चा सुरोत्तम ।
शालग्रामशिलायां तु सर्व्वदा बसते हरिः ॥

ग्रहण करो। इस प्रकार उन उपचारों से अपने बृत्ति-द्वारा शुद्ध रूप से उपार्जित द्रव्यों से भगवान गोकुलेश्बर पूजित होकर अभिलषित वस्तु प्रदान करते हैं। पहले शङ्ख की स्थापना कर तत्पश्चात् पूजन का आरम्भ करे। उसके वाद पीठपूजा करे। पश्चात् पाद्यादिक अर्पण करे ॥६६॥

तत्वसागर में सग्रहीत पद्य यथा-तदनन्तर आवाहन आदि मुद्रा दिखा कर पुनः देवता का अङ्गन्यास कर मुद्रा दिखावै। स्मृत्यर्थसार में कहा है-आवाहन, आसन, पाद्य, सर्वाचमन, स्नान, आचमन, वस्त्र--आचमन, उपबीति, आचमन, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, इन सबका अर्पण कर नैवेद्य अर्पण करे। पुनः आचमन कर नमस्कार कर, स्तुति कर पूजा विसर्जन करे ॥१००॥

आवाहन आदिक विषय में विचार यह है शालिग्राम एवं प्रतिष्ठित श्रीविग्रह में आवाहन विसर्जन नहीं है। स्कन्दपुराण के कार्तिक-माहात्म्य में कहा है-हे देवश्रेष्ठ! सुवर्णमूर्ति, रत्नमूर्ति, शिलामूर्ति ये सब श्रीहरि स्वरूप हैं। श्रीहरि शालिग्राम-शिला में निरन्तर वास करते हैं। यहाँ कोई कोई शालिग्राम में आवाहन बिसर्जन

अत्र केचित् शालग्रामे दैशिकसांनिध्येऽपीश्वरस्य पूर्णत्वात बुद्धिसांनिध्यार्थं कर्त्तव्यमित्येको 'युक्त्याभासः'। ननु दैशिकस्य सांनिध्यबत् बुद्धिसांनिध्यमपि ईश्वरस्य बर्त्तत एवेति पूर्वपक्षं कृत्वा समाधानं कुर्व्वन्ति। दृष्टबिशेषार्थैरावाहनमिति। क्रीतसोमयागवदिति द्वितीयो युक्त्याभासः तत्तुच्छं वचनकदम्बबिरोधात्।

तथा स्कान्दे कार्त्तिके—

शालग्रामशिलायास्तु प्रतिष्ठा नैव बिद्यते ।

श्रीभागवते—

"उद्वा सावाहने न स्तः स्थावरे च यथा तथा ।
शालग्रामार्च्चने नैब ह्याबाहनबिसर्ज्जने ॥
उद्बा साबाहने न स्तः स्थिरायामुद्धवार्च्चने ।
अस्थिरायां बिकल्पः स्यात्स्थण्डिले तु भवेद्द्वयम्-"

करना चाहते हैं। वे युक्ति दिखाते हैं कि ईश्बर परिपूर्ण है। आचार्य में उनका जिस प्रकार आवाहन विसर्जन होता है, उसी प्रकार शालिग्राम में आवाहन-बिसर्जन होना चाहिये वे गुरु के सानिध्य में ईश्वर के पूर्णता के कारण बुद्धि का सानिध्य उपस्थित करके आवाहन एवं बिसर्जन का विधान करते हैं। अच्छा गुरु के सानिध्य के भांति ईश्वर के बुद्धि सानिध्य हैं। इस प्रकार पूर्व पक्ष कर समाधान करते हैं। वे कहते हैं कि दृष्ट विशेष के लिये ऐसा होता है। जैसा कि सोमयाग में आनीत पशु में आवाहनादि किया जाता है। वे इस प्रकार युक्ति आभास देते हैं। उनका वह मत तुच्छ है। उसमें नाना बचनों का विरोध पड़ता है। स्कन्दपुराण के कार्तिक महात्म्य में कहा है कि-शालिग्राम-शिला की प्रतिष्ठा नहीं है। भागवत में कहा है कि स्थावर में आवाहन विसर्जन नहीं है उसी प्रकार शालिग्राम पूजा में आवा-

इति बचनकदम्बैर्बिरोधः स्यात् न च क्रीतसोमदृष्टान्तेनावाहनमिति बाच्यं हेतुं बिना दृष्टान्तेन कार्य्यासिद्धिः। किञ्च नहि निषेधबस्तुनि प्रवृत्तिः शुभमुत्पादयति। अन्यच्च सोमयागे बिद्यमानेऽपि सोमः कर्त्तव्यः निषेधाभावेनादृष्टजनकत्वात् । कृतेऽपि भूमिदाने दानान्तरबत् बिशेषाधायकत्वात् । प्रकृतेः निषेधस्य बिद्यमानत्वाद्विधायकस्याभावान्नावाहनं युक्तमिति। अन्यथा कृते ह्युपनयने बिबाहे बा पुनरपि ब्राह्मणे उपनयनं स्त्रियां च बिबाहः स्यात् ॥१०१॥

इति श्रीनारायणभट्टबिरचितायां साधनदीपिकायां सेबालक्षणे द्वितीयः प्रकाशः॥

हन बिसर्जन नहीं है। हे उद्धव ! स्थिरा अर्चा में आवाहन विसर्जन नहीं है। अस्थिरा अर्चा में उसका बिकल्प होता है, स्थण्डिल-अर्चा में दोनों आवाहन विसर्जन होते हैं। इस प्रकार नाना बचनों से बिरोध आ पड़ता है। कृत्य सोमयाग दृष्टान्त से आवाहन हो सकता है ऐसा नहीं कह सकते हो। बिना हेतु से दृष्टान्त के द्वारा कार्य की असिद्धि होती है। और भी सुनो निषेध-वस्तु में प्रवृत्ति कल्याण का उत्पादन नहीं करती है। और भी कहा है सोमयाग के विद्यमान में सोम कर्त्तव्य है। निषेध का अभाव से अदृष्ट जनक के कारण निषेधाभाव है। भूमिदान के विषय में दानान्तर की विधि विशेष कारण को लेकर है। वस्तुतः निषेध का विद्यमान के कारण और विधि के अभाव के कारण आवाहन उचित नहीं है। नहीं तो उपनयन एवं विवाहके किये जाने पर भी पुनः ब्राह्मण में उपनयन एवं स्त्री में विवाह हो सकता है ॥१०१॥



तृतीयः प्रकाशः

तं बन्दे देशिकं कृष्णं यस्य संसर्गलेशतः।
बालोऽपि विन्दते भेदं भक्तेर्भावस्य चोत्तमः ॥१॥

अथ शालग्रामस्वरूपम्—

स्कन्दपुराणे—

स्निग्धा कृष्णा पाण्डुरा च पीता नीला तथैव च।
बक्रा रुक्षा च रक्ता च महास्थूला त्वलांछिता ॥
कपिला कर्व्वुरा भग्ना बहुचक्रैकचक्रका।
बृहन्मुखी बृहच्चक्रा लग्नचक्राथ वा पुनः ॥
बद्धचक्राथवा काचिद् भग्नचक्रा त्वधोमुखी ॥२॥

अथ तासां गुणभेदौ—

स्कान्दे—

स्निग्धा सिद्धिकरी मंत्रे कृष्णा कीर्तिं ददाति च।
पांडुरा पापदहनी पीता पुत्रफलप्रदा ॥

उन देशिक (गुरु) श्रीकृष्ण (कृष्णदास-ब्रह्मचारी) की हम बन्दना करते हैं जिन के संसर्ग-लेश से बालक (अनभिज्ञ) भी उत्तम हो कर भक्ति व भाव के भेद को जान लेता है॥१॥

अब शालिग्राम-स्वरूप का विवेचन किया जाता है-स्कन्द-पुराण में कहा है-स्निग्धा (चिकनी) कृष्णवर्णा, पाण्डुरा, पीला, नीलवर्णा, बक्रा, रुक्षा, रक्तवर्णा, अत्यन्त-स्थूला, चिन्ह-रहिता, कपिलबर्णा, मेड़क की सदृश टूटी हुई, बहुत चक्रों से युक्ता, एक चक्र वाली, बृहन्मुखी, बृहचक्रवाली, लग्नचक्रा, बद्धचक्रा, भग्नचक्रा तथा अधो-मुख इन लक्षणों से युक्त शालिग्राम शिला मानी जाती है ॥२॥

नीला संदिशते लक्ष्मीं रक्ता रोगप्रदायिका ।
रुक्षा चोद्वेगदा नित्यं वक्रा दारिद्र्यदायिका ॥
बृहन्मुखी बृहच्चक्रा लग्नचक्राथ वा पुनः ।
बद्धचक्राथ वा या स्याद् भग्नचक्रा त्वधोमुखी ॥
पूजयेद्यः प्रमादेन दुःखमेव लभेत सः ॥ ३ ॥

अग्निपुराणे—

तथा व्यालमुखी भग्ना विषमा बद्धचक्रिका ।
विकारावर्त्तनाभिश्च नारसिंही तथैव च ॥
कपिला विभ्रमावर्त्ता रेखावर्त्ता च या शिला ।
दुःखदा सा तु विज्ञेया सुखदा न कदाचन ॥
केचित्तु स कामविषयमेतदिति ॥

तथा च ब्राह्मे—

खंडितं स्फुटितं भग्नं पार्श्वभिन्नं विभेदितम् ॥
शालग्रामसमुद्भूतं शैलं दोषावहं न हि ॥ ४ ॥

उनके गुण-भेद यथा-स्निग्धा शिला मन्त्र में सिद्धि को करने वाली, कृष्णा कीर्त्ति को देने वाली, पाण्डुरा पाप का दहन करने वाली, पीला पुत्र-फल प्रदायिनी, नीला लक्ष्मी को देने वाली, रक्ता रोग को बढ़ाने वाली, रुक्षा उद्वेग देने वाली, वक्रा दारिद्र-दायिनी हैं। बृहन्मुखवाली, बृहच्चक्रवाली, लग्नचक्र-वाली, वद्धचक्रवाली, भग्नचक्रवाली, अधो-मुख-वाली, शिलाओं के पूजन से पूजक दुःख प्राप्त होता है ॥३॥

अग्निपुराण में कहा है-सर्पमुखी, भग्नवाली, विषमा, वद्धचक्रवाली, नाभि में विकारावर्त्तवाली, नरसिंहचिन्हवाली, कपिलवर्णवाली, विभ्रमआवर्त्तवाली, रेखा-आवर्त्त वाली शिला दुःखदायिनी होती है कभी सुखदायिनी नहीं है। यह

अथ पूज्यशिला—

धात्रीफल- प्रमाणा या करेणोभय-संपुटा ।
पूजनीया प्रयत्नेन शिला चैतादृशी शुभा ॥
इष्टा तु यस्य या मूर्त्तिः स तां यत्नेन पूजयेत् ॥५॥

अथ क्रयविक्रयनिषेधः—

स्कान्दे कार्त्तिके—

शालग्रामशिलायां यो मूल्यमुद्घाटयेन्नरः ।
विक्रेता चानुमन्ता च यः परीक्ष्यानुमोदयेत् ॥
सर्वे ते नरकं यान्ति यावदाहूतसंप्लवम् ॥ ६ ॥

अथ शालग्रामपूजायामधिकारनिर्णयः—

कपिलो नरसिंहोऽथ पृथुचक्रे च शोभने ।
ब्रह्मचार्य्यधिकारी स्यान्नान्यथा पूजनं भवेत् ॥

अथ पूजायां चतुर्बर्णानामधिकारो बिचार्यते—

समस्त वचन सकाम विषयक है ऐसा कोई कोई कहते हैं । खण्डित, स्फुटित, भग्न, पार्श्व में भिन्न, विभेद प्राप्त, शालिग्राम-उद्भूत शिला दोषावह नहीं है ॥४॥

धात्री-फल के समान, दोनों हाथ में संपुट की भाँति शुभ शिला यत्न-पूर्वक पूजनीया है । जिसकी जो मूर्त्ति वाञ्छनीय है वह उस मूर्त्ति से चिन्हित शिला का यत्न-पूर्वक पूजा करे ॥५॥

शालिग्राम-शिला के बारे में जो मूल्य का उद्घाटन करता है अर्थात् इसका यह मूल्य है ऐसा निर्णय देता है, जो बेचता है, जो अनुमोदन करता है, जो परीक्षण करता है वे सब महा-प्रलय तक नरक में गिरते हैं ॥६॥

अब शालिग्राम-पूजा में अधिकार का निर्णय-कपिल, नर-सिंह, बड़े चक्र वाले होते हैं, उनकी सेवा में ब्रह्मचारी का अधि-

तत्र सामान्येन मनुष्यमात्राणामधिकारः, क्षमादौ तथोक्तं—

क्षमा शौचं दमः सत्यं दानमिन्द्रियनिग्रहः ।
अहिंसा गुरुशुश्रूषा तीर्थानुशरणं दया ॥
आर्ज्जवं लोभशून्यत्वं देव-ब्राह्मणपूजनम् ।
अनभ्यसूया च तथा धर्मः सामान्य इष्यते, इति ॥

पूजादौ शूद्रस्याप्यधिकारः, ननु तथापि न शालग्रामपूजायामिति चेन्न बचन विरोधात्तथाहि—

स्कान्दे ब्रह्मनारदसंबादे चातुर्मास्यप्रस्तावे—

ब्राह्मणक्षत्रियविशां सच्छूद्राणामथापि वा ।
शालग्रामेऽधिकारोऽस्ति न चान्येषां कदाचन ॥ ७ ॥

पाद्मे माघमाहात्म्ये—

यदामनन्ति वेदान्ता ब्रह्म निर्गुणमच्युतम् ।
तत् प्रसादो भवेन्नृणां शालग्रामशिलार्च्चनात् ॥

कार है, अन्यथा पूजन नहीं होता है। अब शालिग्राम-पूजा में चार वर्णों के अधिकार विषय में बिचार करते हैं। क्षमा, शौच, दम, सत्य, दान, इन्द्रिय-निग्रह, अहिंसा, गुरुसेवा, तीर्थ-सेवा, दया, सरलता, लोभ-शून्यता, देवता-ब्राह्मणों की पूजा, असूयादि सामान्य धर्म्म माने जाते हैं। पूजादि में शूद्र का भी अधिकार है। "अच्छा ? पूजा में शूद्र का भले अधिकार हो परन्तु शालिग्रामशिला की पूजन में नहीं" अगर ऐसा कहते हो तो सुनो उससे नाना-वचन का विरोध आ पड़ता है। स्कन्द-पुराण के ब्रह्मनारदसंवाद में चातुर्मास्य प्रस्ताव पर कहा है-ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य एवं उत्तम शूद्र का शालिग्राम पूजा में अधिकार है अन्य का नहीं ॥७॥

पद्मपुराण के माघ-माहात्म्य पर कहा है-समस्त वेदान्त

अपि पापसमाचाराः कर्मण्यधिकारिणः ये ॥
शालग्रामार्चका वैश्य ! नैव यान्ति यमालयम् ।
कामैः क्रोधैः प्रलोभैश्च व्याप्तो योऽत्र नराधमः ॥
सोऽपि याति हरेर्लोकं शालग्रामशिलार्चनात् ।
यः पूजयति गोविन्दं शालग्रामे सदा नरः ॥
आहूतसंप्लवं यावन्न स प्रच्यवते दिवः ॥
नरकं गर्भवासं च तिर्यक्त्वं क्रिमियोनिताम् ॥
न याति वैश्य ! पापोऽपि शालग्रामशिलार्चकः ॥ ८ ॥

ननु-"ब्राह्मणस्यैव पूज्योऽहं शुचेरथाशुचेरपि ।
स्त्री-शूद्र-कर-संस्पर्शो वज्रादपि सुदुःसहः ॥" इति बचन-बिरोधादिति चेत्तन्न स्मृत्यनवकाशदोषप्रसंगादित्यधिकरणन्यायेन नरमनुष्यशब्दद्वय बिशेषकल्पनायां प्रमाणाभावेन बचनांतरप्रामाण्यात्तथाहि ।

शास्त्र निर्गुण-अच्युत जिस ब्रह्म का मनन करते हैं, उससे मनुष्यों के लिये जो प्रसाद मिलता है वह शालिग्राम-शिला के पूजन से प्राप्त है। हे वैश्य ! पापाचरण करने वाले, कर्म्म में अधिकार रखने वाले मनुष्य भी शालिग्राम पूजा से यमालय के लिये नहीं जाते हैं। काम, क्रोध, लोभादि से व्याप्त अधम-नर भी शालिग्राम-शिलार्च्चन से हरि के लोक को जाता है। जो मनुष्य शालग्राम में निरन्तर गोविन्द की पूजा करता है वह महाप्रलय तक स्वर्ग से नहीं गिरता है। हे वैश्य ! शालिग्राम-शिला-पूजक पापीजन भी नरक, गर्भवास, तिर्य्यग्योनि, क्रिमियोनि को नहीं प्राप्त करता है ॥८॥

अच्छा "मैं शुचि हो अथवा अशुचि हो उस प्रकार ब्राह्मण के पूज्य हूँ। स्त्री-शूद्र के हस्त स्पर्श मेरे लिये बज्र से भी

पाद्मे माघमाहात्म्ये—

बिना तीर्थैर्विना दानैर्विना यज्ञैर्विना मतिम् ।
मुक्ति याति नरो वैश्य ! शालग्रामशिलार्चनात् ॥
मुच्यते चाशुभैर्दुःखैर्जन्मकोटि-समुद्भवैः ॥ ६ ॥

ननु नरमनुष्य-शब्दैः संकोच्य भावैरन्त्यजादीनामप्यधिकारः स्यादिति चेत्सत्यं—"ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रान्त्यजादयः। संपूज्य तं सुरश्रेष्ठं भक्त्या सिंहवपुर्धरमिति ॥" नृसिंहपुराणबचनात्पूजाधिकारोऽस्त्वेवेति केचित् किं च अन्यत्र बज्रादपि सुदुःसह इत्यत्र शालग्रामपदाभावात्पूजनमात्रे स्पर्शादिनिषेधः ।

श्रीभागवते—

एतद्धि सर्ववर्णानामाश्रमाणां च संमतम् ।
श्रेयसामुत्तमं मन्ये स्त्रीशूद्राणां च मानदेति ॥

दुःसह है।" इस प्रकार बचन से बिरोध आ पडता है तो कहते हैं—स्मृति के अनवकाश दोष प्रसंग मान लेते हो तो अन्य-स्मृति का भी अनवकाश-दोष प्रसंग के बारे में क्या कहोगे। एक स्मृति किसी बाक्य का समर्थन करती है फिर उस बचन को अन्य-स्मृति निषेध कर लेती है। स्मृति में मनुष्य मात्र को लेकर शालिग्राम-पूजा की विधि बतलाई गई है। पद्मपुराण के माघमाहात्म्य में कहा है—हे वैश्य ! मनुष्य बिना तीर्थों के, बिना दानों के, बिना यज्ञों के, बिना मति के शालिग्राम पूजन से मुक्ति को प्राप्त करता है, वह कोटिजन्म समुद्भव अशुभ व दुःख से मुक्त हो जाता है ॥६॥

अच्छा-नर-मनुष्य शब्दों से तुम संकुचित भाव से यज्ञादि में सबका अधिकार सिद्ध करना चाहते हो, यह सत्य है, नृसिंह-पुराण का बचन है कि-"ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शूद्र, अन्त्यजादि भी सिंहवपुधारी नरसिंह हरि की भक्ति के साथ

"भक्त्या सिंहवपुर्धरमि"त्यत्र भक्त्येति पदश्रवणाद् वैष्णवावैष्णवव्यवस्थया "बज्रादपि सुदुःसहे"त्यस्यापवादः ॥१०॥

केचित्तु पूजां स्वीकृत्य स्पर्शवर्तीं विरुद्धन्ति करस्पर्शेति श्रवणादिति ।

तत्रान्ये—

कामासक्तोऽपि यो नित्यं भक्तिभावविवर्जितः ।
शालग्रामशिलां पुत्र संपूज्यैवाच्युतो भवेत् ॥
अशुचिर्वा दुराचारः सत्यशौचविवर्जितः ।
शालग्रामशिलां स्पृष्ट्वा सद्य एव शुचिर्भवेदिति ॥

स्कान्दे कार्त्तिके—

शिव-स्कन्दसंबादबचनेन स्पर्शेऽप्यधिकारं मन्यन्त इति ।

पूजा करें"। अतः मनुष्य मात्र का शालिग्राम-पूजा में अधिकार है। और भी-"स्त्री-शूद्र का हस्त स्पर्श वज्र से भी दुःसह है" यहाँ शालग्राम पद का प्रयोग नहीं है। अतः पूजन मात्र में स्पर्श का निषेध है। भागवत में कहा है-यह भक्ति-धर्म्म समस्त-वर्ण एवं समस्त आश्रम के सम्मत है, श्रेय के श्रेय रूप तथा स्त्री-शूद्र के भी मानद है। "भक्ति पूर्वक सिंह-वपुधारी" इस बाक्य में "भक्ति के साथ" इस पद का प्रयोग है। अतः वैष्णव व अवैष्णव व्यवस्था से "वज्र से भी सुदुःसह" इसका अपवादत्व है। अवैष्णव का शालिग्राम पूजा में अधिकार नहीं है, वह पूजा बज्र से भी सुदुःसह है ऐसा भाव है। १०॥

कोई कोई पूजा को स्वीकार करते हैं परन्तु स्पर्श का निषेध करते हैं। उसमें हस्त द्वारा स्पर्श ऐसा बचन भी है। अपर कोई-कामासक्त व्यक्ति नित्य-प्रति भक्तिभाव से रहित होकर भी शालिग्राम शिला का पूजन करता है वह गिरता नहीं है। अशुचि

लिंगपुराणे च—

मद्भक्तैर्मनुजैस्तस्मात्प्रीत्यर्थं मम पुत्रक ! ।
कर्त्तव्यं सततं वत्स ! शालग्रामशिलार्चनमिति ॥ ११ ॥

किं च—

पूजां स्वीकृत्य स्पर्शमनंगी—कुर्वाणो व्याघातेनाहतः स्यात् षोडशोपचारलक्षणांगैः पूजास्वरूपनिर्वाहात् स्नानादेरनिर्वाहात् दश पंचोपचाराणामशक्तविषयत्वात् अन्यथा नमस्कारादिनैव पूजार्थे संपन्नेऽन्यकल्पने प्रमाणाभावात् ।

तथा हि स्कान्दे ब्रह्मनारदसंवादे शालग्रामप्रसंगे—

"ब्राह्मण-क्षत्रिय-विशां सच्छूद्राणामथाऽपि वा ।
शालग्रामेऽधिकारोऽस्ति न चान्येषां कदाचने"ति ॥
अशुचिर्वा दुराचारः सत्यशौचविवर्जितः ।
शालग्रामशिलास्पर्शात् सद्य एव शुचिर्भवेत् ॥

परायण, दुराचारी, सत्य-शौच से विवर्जित व्यक्ति शालिग्राम शिला का स्पर्श कर सद्य ही पवित्र होता है। इस स्कन्दपुराण के कार्त्तिकमाहात्म्य के शिव-स्कन्द संवाद बचन से स्पर्श में अधिकार मानते हैं! लिङ्गपुराण में भी कहा है-हे पुत्र! हे वत्स! सुनो, मेरे भक्त मनुष्य मेरी प्रीति के लिये निरन्तर शालग्राम शिला का अर्चन करें ॥११॥

और भी-पूजा का स्वीकार कर स्पर्श का अनङ्गी-कार में व्याघात दोष आ पड़ता है। षोडशोपचार से पूजा की जाती है। बिना स्पर्श से स्नानादि पूजांग का निर्वाहन किस प्रकार हो सकता है। षोडश, दश व पंच ये त्रिविध उपचार हैं। दशोपचार व पंचोपचार तो अशक्त के लिये है जानना। केवल नमस्कारादि के करने पर पूजा होती है ऐसा नहीं। सर्व्वांग से पूजा होनी चाहिये-

यथा स्त्री-शूद्रपदं मद्यपपरं ततश्च मद्यपकरस्पर्शो वज्रसदृश एव ।
ननु किमनुरोधेन शूद्रपदे मद्यपकल्पना ? शृणु—

"स्त्रियो वा यदि वा शूद्रो ब्राह्मणः क्षत्रियादयः ।
पूजयित्वा शिलाचक्रं लभन्ते शाश्वतं पदमि"ति ।

स्कान्दवचनानुरोधात् । अथ चोत्तरवचनैः स्कान्दे मद्यपस्यैवनिषेधात् तथाहि—

"मद्यपस्तु समासाद्य मम कर्म-परायणः ।
तस्य पापं प्रवक्ष्यामि शृणु सुन्दरि तत्वतः ॥
एकं जन्म भवेद्गृध्रश्चांडालः सप्त जन्म चेति"।

उपसंहारात् तत्रैव "दीक्षितः पिबते मद्यं प्रायश्चित्तं न विद्यते" दीक्षितः कृतमन्त्रोपदेशशूद्रः, अन्यथा द्विजन्मनो मद्यपानेन सर्वकर्माधिकारित्वात् । महापातकित्वेन तिर्यग्योनित्वस्याल्पत्वात् वस्तुतस्तु वैष्णवातिरिक्तेन शूद्रेन स्पर्शवती पूजा न कार्या वैष्णवमात्रस्य शुद्धसत्वात्मकत्वात् ।

स्कन्ध-पुराण के ब्रह्म-नारद संवाद में शालिग्राम प्रसंग पर कहा है-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा उत्तम शूद्र का शालिग्राम-में अधिकार है अन्य का नहीं। अपवित्र हो, दुराचारी हो, सत्य-शौच से रहित हो तो भी मनुष्य शालिग्राम शिला के स्पर्श मात्र में सद्य ही परम-पवित्र हो जाता है। अथवा स्त्री शूद्र शब्द मद्यप दरक है उन के कर-स्पर्श से बज्र सदृश सुदुःसह आ पड़ता है। अच्छा? किस अनुरोध से तुम मद्यप की कल्पना करते हो? तो कहते हैं सुनो, स्त्री हों, अथवा शूद्र हों, किम्वा ब्राह्मण-क्षत्रियादि में कोई हो, शिला-चक्र का पूजन कर शाश्वत्-पद का लाभ करते हैं।" इस स्कन्दपुराण-वचन के अनुरोध से हम कहते हैं जानना चाहिये। स्कन्द-पुराण में मद्यप का ही निषेध आगे किया गया है। हे सुन्दरि

तथा चोक्तं श्री कृष्णेनोद्धवं प्रति श्रीभागवते—

सात्विकः कारकोऽसंगी रागांधो राजसस्स्मृतः।
तामसः स्मृतिविभ्रष्टो निर्गुणो मदपाश्रयः ॥१२॥

तत्वसागरे पुराणान्तरे च—

अर्च्ये विष्णौ शिलाधीर्गुरुषु नरमतिर्वैष्णवे जातिबुद्धि:
र्विष्णो र्वा वैष्णवानां कलिमलमथने पादतीर्थेऽम्बुबुद्धिः।
कंसारेर्नाम्नि मंत्रे पुरुषकलुषघ्ने शब्दसामान्यबुद्धि:-
र्विष्णौ सर्वेश्वरेशे तदितरसमधीर्यस्य वै नारकी सः ॥१३॥

अगर मद्यप मेरी पूजा करता है तो उसके पाप का श्रवण करो, मैं कहता हूँ, वह एक जन्म तक गृद्ध एवं सात जन्म पर्य्यन्त चाण्डाल होता है। उपसंहार में-दीक्षित यदि मद्य का पान करता है तो उसके पाप का प्रायश्चित्त नहीं है। यहाँ दीक्षित शब्द का अर्थ मन्त्रोपदेश प्राप्त शूद्र है। नहीं तो ब्राह्मण के मद्य-पान से समस्त कर्म में अधिकार महान् पातकी रूप नहीं माना जा सकता। महापातक से तिर्य्यग्योनि का फल स्वल्प है। वस्तुतः वैष्णवातिरिक्त शूद्र की स्पर्शवती पूजा नहीं है। वैष्णव का स्व-रूप शुद्ध-सत्व रूप है। भागवत में श्री कृष्ण ने उद्धव के प्रति कहा है-असंगी सात्विक, रागान्धजन राजस, स्मृतिभ्रष्ट तामस तथा मेरे आश्रित जन निर्गुण हैं ॥१२॥

तत्वसागर में पुराणान्तर का वचन, यथा-जो व्यक्ति विष्णु की अर्चा में शिलाबुद्धि, और गुरु में मनुष्यबुद्धि, वैष्णव में जाति बुद्धि, विष्णु किंवा वैष्णवों के कलिमल-मथन करने वाले चरणामृत में जल-बुद्धि, श्रीहरि के सकल-कलुष-नाशक-नाम व मंत्र में सामान्यशब्द-बुद्धि, सर्वेश्वर-विष्णु के साथ इतर-व्यक्ति में समान बुद्धि करता है, वह नारकी है ॥१३॥

भारते—

अहिरिव गुणाद्भीतः सन्मानान्मारणादिव।
कुणपदि वयः स्त्रीभ्यः तं देवाः ब्राह्मणं विदुः ॥
न जाति कारणं तात गुणाः कल्याणकारिणः।
वृत्तस्थमपि चांडालं ते देवाः ब्राह्मणं विदुः ॥

तस्माद्वैष्णवमात्रैः स्त्रीपुरुषसामान्येन शालग्रामपूजा कार्या ॥१४

अथ शुद्धिः—

शुद्धिः पंचविधा प्रोक्ता कृष्णसेवनतत्परैः।
पत्रपुष्पादिवस्तूनां कुर्याज्जन्त्वादिशोधनम ॥
लेपस्य क्षालनादेव मूर्त्तिशुद्धिं ततश्चरेत्।
अचांचल्येनात्मशुद्धिं मंत्रशुद्धिं च पूर्वतः ॥
मंत्रशुद्धिस्तु मद्गुरूपदेशान् ॥

मनुष्यों की जाति कारण नहीं है अर्थात् ब्राह्मणादि-जाति में जन्म होने से ब्राह्मण, ब्राह्मण नहीं है। गुण समूह कल्याणकारी होते हैं। अगर ब्राह्मण में ब्राह्मणत्व-गुण है तो वह ब्राह्मण माना जाता है। अगर चाण्डाल है और उसमें ब्राह्मण की वृत्ति है तो देवता-गण उसको ब्राह्मण जानते हैं। अतः स्त्री या पुरुष हों, एवं शूद्र हों, यदि उनमें वैष्णवत्व है तो वह शालग्राम की पूजा कर सकता है ॥१४॥

अब शुद्धि का विवेचन करते हैं- कृष्ण-सेवन-परायण पाँच प्रकार शुद्धि मानते हैं। पत्र पुष्पादिक वस्तुओं से जन्त्वादिक का शोधन किया जाता है। लेपन-वस्तु क्षालन से शुद्ध होती है। पंचामृत आदिक स्नान से मूर्ति की शुद्धि होती है। धीरता से आत्मशुद्धि तथा सद्गुरु के उपदेश से मंत्र शुद्धि होती है।

तथा चोक्तं श्री भगवतोद्धवं प्रति—

"मंत्रस्य च परिज्ञानं कर्म-शुद्धिर्मदर्पणम्" ।

सद्गुरुमुखाद्यथावत् परिज्ञानं मंत्रशुद्धिरित्यर्थः ॥

केचित्तु षट् बिधां शुद्धिं मन्यन्ते—

पुष्पाक्षतादीनां मूर्त्तेश्च आत्मनश्चेति क्षितेश्च मंत्रस्य चित्तस्य इति शुद्धिः ॥१५॥

अथ श्रीमूर्त्तिसेबाप्रकारः—

यथाविधि पूजिते पीठे श्रीकृष्णं संस्थाप्य मूलमंत्रमुच्चार्य पुष्पांजलिं दत्वा आवाहनोचितस्थले आवाहनादिकं कुर्यात् ॥

तथा चोक्तमागमे—

आवाहनं चादरेण संमुखीकरणं प्रभोः ।
भक्त्या निवेशनं तस्य संस्थापनमुदाहृतम ॥
तवास्मीति त्वदीयस्य दर्शनं संनिधापनम् ।
क्रियासमाप्तिपर्यन्तं स्थापनं संनिरोधनम् ॥

भगवान ने उद्धव के प्रति कहा है कि परिज्ञान से मंत्र की शुद्धि एवं मेरे अर्पण से कर्म-शुद्धि होती है। सद्गुरु-मुख से यथाबत्-परिज्ञान मंत्र-शुद्धि है। कोई कोई छः प्रकार की शुद्धि मानते हैं। पुष्प एवं अक्षतादिकों की शुद्धि, मूर्ति की शुद्धि, आत्मा की शुद्धि, पृथ्वी की शुद्धि, मंत्र एवं चित्त की शुद्धि ॥१५॥

अब मूर्त्ति सेवा के प्रकार कहते हैं—यथाबिधि से पूजित पीठ में श्रीकृष्ण की स्थापना कर मूलमंत्र का उच्चारण कर पुष्पांजलि अर्पण करें। तत्पश्चात् आवाहन के उचित-स्थल में आवाहनादिक करें। आगमशास्त्र में कहा है कि-प्रभु का आदर के साथ सम्मुखीकरण आवाहन है, भक्ति-पूर्वक प्रभु का निवेशन संस्थापन है। "मैं तुम्हारा हूँ" इस प्रकार त्वदीय-भाव का

सकलीकरणं चोक्तं तत्सर्वांगप्रकाशनम् ।
आनन्दघनतात्यन्त- प्रकाशो ह्यवगुण्ठनम् ॥
अमृतीकरणं सर्वैरेवांगैरवरुध्यता ।
परमी—करणं नामाभीष्टसंपादनं पदम् ॥

आवाहनमुद्रयावाहनं, संस्थापनमुद्रया संस्थापनं, संनिधापनमुद्रया संनिधापनं, संनिरोधनमुद्रया संनिरोधनं, सकलीकरणमुद्रया सकलीकरणं, अवगुंठनमुद्रयाबगुण्ठनं, अमृतीकरणमुद्रया अमृतीकरणं परमीकरणमुद्रया परमीकरणम् ।

ततो वेणुवनमाला-श्रीबत्स-कौस्तुभ-मुद्राः प्रदर्श्य कामबीजमुच्चरन्बिलबमुद्रां प्रदर्शयेत् ॥१६॥

ततः षोडशोपचारैः पूजयेत् तथा चोक्तं—

आसनं स्वागतं सार्घ्यं पाद्यमाचमनीयकम् ।
मधुपर्काचमं स्नानं वसनाभरणानि च ॥

दर्शन सन्निधापन है। क्रिया की समाप्ति-पर्यन्त-स्थापन सन्निरोधन है। सर्वाङ्ग का प्रकाशन सकलीकरण है। आनंदघन-गुण का अत्यंत-प्रकाश अवगुंठन है। समस्त अंगो से अवरोध करना अमृतीकरण है। अभीष्ट-संपादन करना परमीकरण है। आवाहन मुद्रा से आवाहन, संस्थापन—मुद्रा से संस्थापन, सन्निधापन मुद्रा से सन्निधापन, सन्निरोध-मुद्रा से सन्निरोधन, सकलीकरण-मुद्रा से सकलीकरण, अवगुंठन-मुद्रा से अवगुण्ठनकरण, अमृतीकरण-मुद्रा से अमृतीकरण, परमीकरण-मुद्रा से परमीकरण किए जाते हैं। तदनन्तर वेणु, वन-माला, श्रीवत्स, कौस्तुभ इन मुद्राओं को दिखाकर कामबीज का उच्चारण कर बिल्व-मुद्रा का प्रदर्शन करें ॥१६॥

सुगन्धं सुमनो धूपं दीप-नैवेद्य-चन्दनं ॥ पुष्पाञ्जलिः ।
"उपचारैश्च योजयेत् दशानामथ षोडशः ।
गंधादयो नैवेद्यांता उपचारा दश क्रमात्" ॥
अर्घपाद्याचममधुपर्काचमनान्यपि च ।
गंधादयो नैवेद्यान्ताः पूजा पंचोपकारका ।
सपर्या त्रिविधा प्रोक्ता तासामेकां समाश्रयेत "॥१७॥

प्रयोगस्तु मूलमंत्रमुच्चार्य "श्रीकृष्ण स्व गतं-श्रीकृष्णेदमासनमि"त्यादि । अथानुक्रमेण प्रकारः-आसनं दत्वा पुष्पाञ्जलिं दद्यात् । ततश्च श्रीमूर्त्तौ शिरसि अर्घं, पादयोः पाद्यं, मुखे आचमनं त्रिवारं मधुपर्कं मुखे पुनाचमनं ततः श्रीकृष्णं संप्रार्थ्य स्नानार्थं पादुके अग्रे स्थापयेन , ततः स्नानस्थले उपवेश्य शंखोदकेन घंटानादपूर्व्वकं सुगंधतैलाभ्यंगपूर्वकं धूपं ददत स्नानं श्रीकृष्णाय दद्यात ॥१८॥

तत्पश्चात् षोडश उपचारों से पूजा करें । आसन, स्वागत, अर्घ, पाद्य, आचमनी, मधुपर्क, पुनः आचमन, स्नान, वसन, आभरण, सुगन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, चंदन, पुष्पांजलि ये सोलह उपचार हैं। दस उपचार अथवा षोडश उपचार की योजना करे । गंधादि से लेकर नैवेद्य पर्यंत ये पाँच उपचार हैं। अर्घ, पाद्य, आचमन, मधुपर्क, आचमन, ये भी पाँचप्रकार के उपचार हैं । पूजा तीन प्रकार की है, उनमें से किसी एक का आश्रय करे ॥१७॥

इन षोडशोपचारों का प्रयोग क्रम से—मुलमंत्र का उच्चारण कर "हे श्रीकृष्ण तुम्हारा स्वागत है यह आसन है ग्रहण कीजिये" ऐसा कह कर आसन देकर पुष्पांजलि अर्पण करे । इसी प्रकार श्रीमूर्ति के मस्तक में अर्घ, चरण में पाद्य, मुख में तीन बार

अथ स्नानद्रव्यं स्कान्दे—
मालती-युतिमादाय सुगंधीनां तु वा पुनः ।
तथान्य-पुष्पजातीनां गृहीत्वा भक्तितो नराः ॥
स्नापयेयुरिति शेषः ॥१६॥

अथ पंचामृतस्नानम्—
क्षीरेण पूर्वं कुर्वीत दध्ना पश्चाद्घृतेन वै ।
मधूना चाथ खंडेन क्रमो ज्ञेयो विचक्षणैः ॥२०॥

अथ पंचामृतपरिमाणं—ब्राह्मे—
देवानां प्रतिमा यत्र घृताभ्यंगस्ततो भवेत् ।
पलानि तस्य देयानि श्रद्धया पंचविंशति ॥
अष्टोत्तरपलशतं स्नाने देयं च सर्वदा ।
द्विसहस्रपलानां तु महास्नाने चासंख्यया ॥
दातव्ये येन सर्वासु दिक्षु निर्याति तद्द्रुतमिति ॥

आचमन, मधुपर्क प्रदान, पुनः मुख में आचमन की विधि है। अनन्तर श्रीकृष्ण की प्रार्थना कर स्नान के लिये आगे पादुका धरे। तदनन्तर स्नान-स्थल में बैठकर घंटा-नाद करते हुए शंखोदक से सुगंधि तेल का मर्दन कर धूप प्रदान कर, श्रीकृष्ण के लिए स्नानकराबे ॥१८॥

स्कन्दपुराण में स्नान द्रव्य का निरूपण इस प्रकार है—मालती,यूंत(जुही)अन्य सुगंधी वस्तु का पुनः अन्य समस्त पुष्पजातियों का गंध लेकर, मनुष्य प्रभु के आगे स्थापन करे ॥१६॥

पंचामृतस्नान की बिधि—पहले दूध उसके बाद दही तत्पश्चात् घी तत्पश्चात मधु तदनन्तर खांड से पंचामृत स्नान की बिधि है ॥२०॥

पंचामृत का परिमाण—जहाँ देवताओं की प्रतिमा है वहाँ

पलपरिमाणो याज्ञवल्क्यवाक्ये--

पंच कृत्पलको माषस्तेषु वर्णस्तु षोडशः ।
सुवर्णानां च चत्वारः पलमित्यभिधीयत ॥

महिष्यादिक्षीरं तु वर्ज्यम् ॥२१॥

अथोद्वर्त्तनं—

सुगन्धद्रव्य-संयुक्तेन यवगोधूमचूर्णेन ।

तथोक्तं नारसिंहपुराणे—

यवगोधूमजैः चूर्णैरुद्वर्त्त्योष्णेन वारिणा ।
प्रक्षाल्य देवदेवेशं वारुणं लोकमाप्नुयात ॥
ततः शुद्धतोयेन स्नापयेत् ।

घृतादिक से स्नान करने की विधि है । घृतादिक की श्रद्धा-पूर्वक पच्चीस पल देने की विधि है । स्नान में एक सौ आठ पल और महास्नान में दो सहस्र-फल का विधान है । शक्ति हो तो असंख्यपल प्रदान करे, जिससे कि चारों ओर में बहता जाय । याज्ञवल्क्य ने पल का परिमाण बतलाया है । महिषादिक दूध का वर्जन करे ॥२१॥

उद्वर्त्तन—सुगन्ध द्रव्य से युक्त गेंहू चूर्ण के द्वारा उद्वर्त्तन किया जाता है । नृसिंहपुराण में कहा है—उष्ण जल के द्वारा यव, गोधूम उत्पन्न चूर्ण का उद्वर्त्तन कर देवदेवेश के प्रक्षालन से मनुष्य वरुण लोक को जाता है । तदनन्तर पवित्र-जल से स्नान करावे । जल का परिमाण—भविष्यपुराण में कहा है—स्नान में सौ पल, अभ्यंग अर्थात् मर्द्दन में पच्चीस पल, महास्नान में दोहजार-पल का प्रयोग होना चाहिये । अनन्तर सूक्ष्मवस्त्र से धीरे धीरे संमार्जन करे, उसके बाद केश से लेकर हृदय तक सुगन्धित पट्ट वस्त्र को अर्पण करे । तत्पश्चात् हस्त-मार्ज्जनार्थ सूक्ष्मवस्त्र

अथ जलपरिमाणं भविष्ये—

स्नाने पलशतं देयमभ्यंगे पंचविंशति ।
पलानां द्विसहस्रं तु महास्नाने प्रकीर्त्तितम् ॥

अथ सूक्ष्मवस्त्रेण शनैः शनैः संमार्जनं कुर्यात् ततः केशाद्यहृदयन्तं सुगंधी कृष्णवस्त्रं दद्यात् ततः हस्तमार्ज्जनार्थ सूक्ष्मवस्त्रं, ततः सुन्दरतिलकं कुर्यात ततः सुन्दराण्याभरणानि । अथ च श्रीकृष्णं संप्रार्थ्य पादुके अग्रे निधाय सिंहासने उपवेशयेत् ततो गन्धं दद्यात । गंधमागमोक्तं—"चंदना-गरुकर्पूरं पञ्चगंधमिहोच्यते" ।

गारुडे—

कस्तूरिकाया द्वौ भागौ चत्वारश्चंदनस्य तु ।
कुंकुमस्य त्रयश्चैकः शशिनः स्याच्चतुः समम् ॥
कर्पूरं चन्दनं-दर्प्यः कुंकुमं च चतुः समम् ।
सर्वगंधमिति प्रोक्तं समस्तसुरवल्लभम् ॥

तदभावे चन्दनमात्रं चन्दनाभावे देवदारुजम् ।

देवें । तदनन्तर सुन्दर तिलक करे, बाद में सुन्दर आभरण पहिनावें । अब श्रीकृष्ण की प्रार्थना कर उनके समक्ष दो पादुका रख कर सिंहासन में बिठाकर गन्ध प्रदान करें । आगम-शास्त्र में गन्ध के बारे में कहा है—चन्दन, अगर, कपूर, कुङ्कुम एवं कस्तुरी ये पंच गन्ध हैं । गरुड़पुराण में कहा है—कस्तुरि का दो भाग, चन्दन का चार भाग, कुंकुम का तीन भाग कपूर का एक भाग, चतुः सम का समान भाग प्रयोजित हैं । कपूर, चन्दन, कस्तुरिका, कुंकुम, चतुः सम ये सर्वगन्ध कहे जाते हैं जो समस्त देवताओं के प्रिय माने जाते हैं । सर्वगन्ध के अभाव में केवल चन्दन का तथा चन्दन के अभाव में देवदारु का प्रयोग किया जाता है । गरुड़पुराण में कहा है—श्रीहरि के लिये मलयज

तथा गारुडे—

हरेर्मलयजं श्रेष्ठमभावे देवदारुजम् ।

अथ निषेधानि विष्णुधर्मोत्तरे—

दारिद्र्यं पद्मकं कुर्यादस्वास्थ्यं रक्तचंदनम् ।
उसीरं चित्तविभ्रं समन्ये कुर्यु रुपद्रवम् ॥२२॥

अथ व्यजनं कुर्यात्—

शीतोष्णतारतम्येन सर्वकार्यमिति ।

अथ मंत्रवर्णपदैः पूजयेत्—कर्णिकामध्ये श्रीकृष्णं ततो सुदामादिभिः प्रथमाद्यावृत्तिरिस्तु प्रकीर्त्तिता ततोऽङ्गदेवता द्वितीयावृत्तिः, रुक्मिमण्याद्यष्टाभिः तृतीया, वसुदेवनन्दबलदेवादि-गोप-गोपीभिश्चतुर्थी, चतुर्द्दिक्षु संतानपारिजातकल्पद्रुमैः, हरिचंदनेन

(चन्दन) उत्तम है, अभाव में देवदारु का प्रयोग भी हो सकता है। विष्णुधर्म्मोत्तर में कहा है-पद्मक (पद्माक) दारिद्रता को प्राप्त कराता है, रक्तचन्दन अस्वस्थ उत्पन्न कर लेता है, उसीर चित्त में विभ्रम एवं अन्य समस्त उपद्रव पहुँचाय देते हैं ॥२२॥

तदनन्तर व्यजन करे, यह समस्त कार्य्य शीत-व उष्ण समयानुसार किया जावे। अब मन्त्र के वर्ण व पदों से पूजन करें। कर्णिका के बीच में श्रीकृष्ण का, कमल की प्रथमावृत्ति में सुदामादिओं का, द्वितीयावृत्ति में-अंगदेवता का, तृतीयावरण में रुक्मिण्यादि अष्ट पट्टमहिषी का, चतुर्थावरण में वसुदेव, नन्द, बलदेवादिक गोप-गोपियों का, चार ओर सन्तान-पारिजात, कल्पवृक्षों का, पंचमावरण में हरिचन्दन का, षष्ठावरण में अष्ट दिक्पाल का, सप्तमावरण में वज्रादि का पूजन करे। कोई कोई एकान्ती केवल श्रीकृष्ण का पूजन करते हैं। विरल-भावुक-जन श्रीराधिकादि प्रेयसी वर्ग के साथ श्रीकृष्ण का पूजन करते हैं।

मन्दारेण च पंचमी, अष्टदिक्पालैः षष्ठी, वज्रादिभि सप्तमी। एकांतिनः केचन श्रीकृष्णमेव भावुकास्तु विरलाः श्रीराधादिभिः, ततः श्रीकृष्णाष्टकैः ततो धूपं च

विष्णुधर्मोत्तरे—

देवस्य दक्षिणे पार्श्वे देया तैलतुला नृप !
पलाष्टकयुता राजन् बर्त्ति तत्र तु दापयेत् ॥
बाससा तु समग्रेण सोपवासो जितेंद्रियः ।
महावर्त्तिद्वयमिदमिति—॥२३॥

अथ नैवेद्यम्-श्रीकृष्णाय पीठं दत्वा पाद्याचमनं च संपूज्य सपायसमन्नमानयेत्, अस्त्रेण संप्रोक्ष्य चक्रमुद्रयाभिरक्ष्य धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य मूलमंत्रेण प्रोक्ष्य अष्टधा मूलमंत्रं जपेत्। ततः श्रीकृष्णं संप्रार्थ्य निवेदयेत्। "निवेदयामि भवते जुषाणेदं हविर्हरे"-इति मंत्रेण वारिगंडूषं दत्वां ग्रासमुद्रां प्रदर्शयेत्। ततः

तदनन्तर श्रीकृष्णाष्टक का पाठ करे, पश्चात् धूप तथा महादीप को प्रदान करे। विष्णुधर्म्मोत्तर में कहा है-देवता के दक्षिण पार्श्व में आठ पल परिमाण से तैल एवं बत्ती से पूर्ण महादीप का प्रदान करे, उपवास करे एवं जितेन्द्रिय होकर रहे। महाबत्ती दोनों के बारे में यह व्यवस्था है ॥२३॥

अब नैवेद्य प्रदान का विवेचन—श्रीकृष्ण के समक्ष पीठासन रखकर पाद्य तथा आचमन से पूजा कर पायसादि के साथ अन्न व्यञ्जनादि धरें। उस नैवेद्य द्रव्य को "अस्त्राय फट्" इस अस्त्र मन्त्र से प्रोक्षित कर पुनः उसका चक्र-मुद्रा से रक्षण कर, धेनु-मुद्रा से अमृतकरण कर, फिर मूलमन्त्र से प्रोक्षण कर, आठ बार मूल मन्त्र का जप करे। तदनन्तर श्रीकृष्ण की प्रार्थना कर निवेदन करे। "हे हरे! आप के लिये यह हवि अर्पित है

किंचित्कालं प्रतीक्ष्याचमनं दद्यात्। ततो मुखवासं ततस्तांबूलं ततो नीराजनं ततः संपूज्य दंडवत्प्रणामस्तोत्रपाठादि-नृत्यादीन् कृत्वा श्रीकृष्णं शय्यामंदिरे शायित्वा पादसंवाहनं कृत्वा आत्म-समर्पणं कुर्यात्-ततश्चरणामृतं गृहीत्वा वैष्णवैः सह भुञ्जीत ॥२४॥

अथ नैवेद्यपात्रं देवीपुराणे—

षट्त्रिंशदंगुलं पात्रमुत्तमं परिकीर्त्तितम्।
मध्यमं च त्रिभागोनं कन्यसं द्वादशांगुलम् ॥
वस्वंगुलविहीनं तु न पात्रं कारयेत् क्वचित् ॥

स्कान्दे—

हैरण्यं राजतं ताम्रं कांस्यं मृण्मयमेव च।
पालाशं पाद्मपात्रं वा पात्रं विष्णोरतिप्रियम्।
सुवर्णरूप्यशंखाश्म-शुक्तिरत्नमयानि च।
निर्लेपानि तु शुद्ध्यन्ति केवलेनोदकेन तु ॥२५॥

ग्रहण कीजिये" इस मन्त्र से जल-गण्डूष देकर ग्रासमुद्रा दिखावे। तत्पश्चात् कुछ समय प्रतीक्षा कर आचमन देवे। तद-नन्तर मुखबास देकर ताम्बूल अर्पण करे। तदनन्तर नीराजन करे। तत्पश्चात् पूजन कर दण्डवत् प्रणाम, स्तोत्रपाठ, नृत्य-गानादि कर शय्या-मन्दिर में श्रीकृष्ण का शयन करा कर पाद-सम्बाहन कर आत्म समर्पण करे। उसके बाद चरणामृत ग्रहण कर वैष्णवों के साथ भोजन करे ॥२४॥

देवीपुराण में नैवेद्य-पात्र के बारे में कहा है-छत्तीस अंगुल उत्तम, चव्वीस अंगुल मध्यम, तथा बारह अंगुल कनिष्ठ पात्र है। आठ अंगुल से कम पात्र कभी न बनावे। स्कन्दपुराण में कहा है-सुवर्णपात्र, रजतपात्र, ताम्रपात्र, कांस्यपात्र, मृण्मयपात्र; ढाक के पत्ते, पद्मपत्ते, ये सब पात्र श्रीहरि के अत्यन्त प्रिय

अथ भक्ष्यम्—

दौग्धान्नं पूपकं चैव शष्कुलीमोदकं तथा।
सूपान्तं पायसाद्यन्तं भक्ष्यं श्रीकृष्णवल्लभम् ॥

अथाभक्ष्याणि विष्णुधर्मोत्तरे—

अभक्ष्यं चाप्यहृद्यं च नैवेद्यं न निवेदयेत्।

कौर्म्ये—

वृन्ताकं जालिकाशाकं कुसुम्भाश्मंतकं तथा।
पलाण्डुं लशुनं शुक्तं निर्यासं चैव वर्जयेत् ॥
गृञ्जनं किंशुकं चैव कुकुण्डं च तथैव च।
उदुम्बरमलाबुं च जग्ध्वा पतति वै द्विजः ॥

स्कान्दे—

यो भक्षयति वृन्ताकं तस्य दूरतरो हरिः।

अन्यत्र—

वार्त्ताकुं वृहतीं चैव दग्धमन्नं मसूरिकाम्।
यस्योदरे प्रवर्त्तेत तस्य दूरतरो हरिः ॥२६॥

हैं। स्वर्णपात्र, रजतपात्र, शंखपात्र, पत्थर के बासन, शुक्तिपात्र, रत्न के पात्र निर्लेप माने जाते हैं ये सब पात्र केवल जल से शुद्ध हो जाते हैं ॥२५॥

भक्ष्यद्रव्य-दुग्ध--अन्न, पीठा, मोदक, दाल, शाग, पायसादि श्रीकृष्ण के प्रिय हैं। विष्णुधर्म्मोत्तर में कहा है-अभक्ष्य, अप्रिय नैवेद्य का निवेदन न करे। अभक्ष्यवस्तु-के बारे में कूर्म्मपुराण में कहा है-बार्त्ताकी (बेंगनीभाटा) जालिकाशाग, (तोरई) कुसुम्भशाग (बरै) अश्मन्तकशाग (अम्लोटशाग), प्याज, लहसन, कांजी, निर्य्यास (मद) ये सब बस्तु निषेध है। गाजर, किंशुक, कुकुन्द(कुकुरौंदा)गूजर, कद्दू इन वस्तुओं का भक्षण करने

अथापराधाः--आगमे-

यानैर्वा पादुकैर्वापि गमनं भगवद्गृहे ।
देवोत्सवाद्यसेवा च अप्रणामस्तदग्रतः ॥
उच्छिष्टे चाथवाशौचे भगवद्वन्दनादिकम् ।
एकहस्तप्रणामश्च तत्पुरस्तात्प्रदक्षिणम् ॥
पादप्रसारणं चाग्रे तथा पर्य्यंकबन्धनम् ॥
शयनं भक्षणं चापि मिथ्याभाषणमेव च ॥
उच्चैर्भाषा मिथो जल्पो रोदनानि च बिग्रहः ।
निग्रहानुग्रहौ चैव नृषु च क्रूरभाषणम् ॥

से ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य जाति पतित हो जाते हैं। स्कन्द-पुराण में कहा है-जो बैंगन का भक्षण करता है उससे श्रीहरि अति दूर में रहते हैं। अन्यत्र भी कहा है-बैंगन, घीआ, उसना चावल (सेला हुआ चावल) मसूर दाल, जिसके उदर में हैं उससे श्रीहरि दूर में हैं ॥२६॥

भगवान की सेवा में बत्तीस अपराध होते हैं जिनका बर्जन करे ऐसा तंत्र-शास्त्र में कहा है। (१)सवारियों पर चढ़कर अथवा चरणों में पादुका पहन कर भगबान के मन्दिर में गमन करना, (२) देवता का उत्सब आदिक न करना व न देखना, (३) देवता के समक्ष प्रणाम न करना, (४) उच्छिष्ट वा अपवित्र अवस्था में भगवान का दर्शन करना (५) एक हाथ से प्रणाम करना (६) भगबान के सम्मुख प्रदक्षिणा करना, (७) प्रभु के सामने पैर फैलाना, (८) भगवान के सामने अपने लिये पलँग आदि शैय्या का बिछाना, (९) उनके आगे शयन (१०) भोजन (११) एवं मिथ्या कथन (१२) उनके आगे ऊँचेस्वर में बोलना, (१३) आपस में वातचीत करना (१४) रोदन करना, (१५) उनके

कम्बलावरणं चैव परनिन्दा परस्तुतिः ।
अश्लीलभाषणं चैव अधोवायुविमोक्षणम् ॥
शक्तौ गौणोपचारश्च अनिवेदितभक्षणम् ।
तत्तत्कालोद्भवानां च फलादीनामनर्पणम् ॥
बिनियुक्तावशिष्टस्य प्रदानं व्यञ्जनादिके ।
पृष्ठीकृत्यासनं चैव परेषामभिवादनम् ॥
गुरौ मौनं निजस्तोत्रं देवतानिन्दनं तथा ।
अपराधास्तथा बिष्णोर्द्वात्रिंशत् परिकीर्त्तिताः ।२७।

अथ प्रदक्षिणाचतुष्टयं दद्यात्
तथा चोक्तं स्कान्दे—
"चतुर्वारं भ्रमीभिस्तु जगत्सर्व्वं चराचरम् ।
क्रान्तं भवति विप्राग्य ! तत्तीर्थगमनाधिक"मिति ।

बिरोध करना, (१६) किसी का निग्रह करना, (१७) किसी का अनुग्रह करना, (१८) प्रभु के सामने मनुष्य के प्रति निष्ठुर बाक्य बोलना, (१९) उनके आगे कम्बल ओढ़ना (२०) उनके आगे किसी की निंदा करना (२१) दूसरे की स्तुति करना, (२२) उनके आगे अश्लील भाषण करना (२३) उनके आगे अधो-वायु का त्याग करना (२४) शक्ति के रहते हुये भी मुख्य उपचारों से सेवा न कर गौणोपचार से सेवा करना, (२५) अनिवेदित पदार्थ का भोजन करना, (२६) समयोचित फलों का (ऋतु फलों का) अर्पण न करना, (२७) व्यञ्जनादिक जिन वस्तुओं का आघ्राण दूसरे ने ले लिया हो उन वस्तुओं का अर्पण करना, (२८) भग-बान की तरफ पीठ करके बैठना, (२९) प्रभु के सामने दूसरे को प्रणाम आदि सम्मान करना (३०) गुरु की स्तुति न करना (३१) अपने मुख से अपनी प्रशंसा करना, (३२) देवता की निन्दा करना ये भगवान की सेवा में बत्तीस अपराध हैं ॥२७॥

एकां प्रदक्षिणां न कुर्यात् ॥

तथा विष्णुस्मृतौ—

एकहस्तप्रणामश्च एका चैव प्रदक्षिणा ।
अकाले दर्शनं विष्णोर्हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ॥२८॥

अथ प्रणामः । अष्टांङ्ग प्रणमेत्

यथा आगमे—

दोर्भ्यां पद्भ्यां च जानुभ्यामुरसा शिरसा दृशा ।
मनसा वचसा चेति प्रणामोऽष्टांग ईरितः ॥

प्रणामास्तु अधिकाः न न्यूनाः न कर्त्तव्याः प्रणामस्य न्यूनाधिक्यकरणे प्रत्यवायः ॥

तथा बृहन्नारदीये—

सकृद्वा न नमेद्यस्तु विष्णवे शर्म्मकारिणे ।
शवोपमं विजानीयात् कदाचिदपि नालपेत् ॥

अनन्तर चार प्रदक्षिणा करे । स्कन्दपुराण में कहा है कि-भगवान की चार बार परिक्रमा करने से चराचर समस्त जगत का परिभ्रमण होता है जिसका फल पृथ्विस्थ समस्त तीर्थ गमनसे अधिक है । एक प्रदक्षिणा नहीं करनी चाहिये । विष्णुस्मृति में कहा है कि-एक हाथ से प्रणाम, एक प्रदक्षिणा एवं असमय में विष्णु का दर्शन, पूर्व कृत पुण्य को नाश कर देता है ॥२८॥

अब प्रणाम का विवेचन करते हैं-देवता को अष्टाङ्ग प्रणाम करें । तंत्र में कहा है कि—दोनों हाथ, दोनों भुजा, दोनों चरण, दोनों जंघा, बक्षस्थल, मस्तक, नेत्र, मन, बचन इनसे प्रणाम अष्टाङ्ग प्रणाम कहा जाता है । अधिक वा न्यून प्रणाम न करे उसमें प्रत्यवाय होता है । बृहन्नारदीय में कहा है कि-जो व्यक्ति एक बार कल्याणप्रद भगवान को प्रणाम नहीं करता है वह व्यक्ति

वस्त्रप्रावरणेन नमस्कारं न कुर्यात् ।

तथा वाराहे--

वस्त्रप्रावृत्तदेहस्तु यो नरः प्रणमेत माम् ।
श्वित्री स जायते मूर्खः सप्तजन्मनि भामिनि ! ॥

प्रामाणिकाः पठन्ति--

अग्रे पृष्ठे वामभागे समीपे गर्भमन्दिरे ।
जप-होम-नमस्कारान न कुर्यात् केशवालये ॥
शाठ्येनापि नमस्कारं कुर्वतः शार्ङ्गधन्वने ।
शत जन्मार्ज्जितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥ २९ ॥

अथ मंत्रेण सर्वकर्म्मार्पणम्—

"इतः पूर्वं प्राण-बुद्धि-देह-धर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा बाचा कर्म्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत्स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं श्रीकृष्णार्पणं भवतु स्वाहा"।
मां मदीयं च सकलं हरये समर्पयेत् ओं तत्सदिति ॥ ३० ॥

शव (मुर्दा) के समान है । उसके साथ कभी आलाप न करे । वस्त्र से शरीर को ढ़क कर नमस्कार न करें । वाराहपुराण में कहा है कि-जो व्यक्ति वस्त्र से शरीर को ढक कर प्रणाम करता है वह सात जन्म तक श्वेतकुष्टी होता है । प्रामाणिक जन कहते हैं कि आगे, पृष्ठदेश में, वाम भाग में, समीप में, गर्भमन्दिर में, जप, होम, नमस्कार न करे । यदि कोई शठता से भी सारंग-धनुष वाले भगवान को नमस्कार करता है तो उसके सौ जन्म से अर्जित पाप उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं ॥२९॥

अब मंत्र के द्वारा समस्त कर्म्मार्पण-यथा—इससे पहले प्राण, बुद्धि, देह, धर्म का अधिकार कर जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति

अथ तुलसीग्रहणम्—

दंडवत्प्रणामं कृत्वा मंत्रप्रार्थनया नखैरस्पृशन् श्रीतुलसीं गृह्णीयात् । मंत्रं स्कान्दे—

तुलस्यमृतजन्मासि सदा त्वं केशवप्रिया ।
केशवार्थे चिनोमि त्वां वरदा भव शोभने ॥

अथ तुलसीपूजायां नित्यता—गारुडे—

तुलसीं प्राप्य यो नित्यं न करोति ममार्चनम् ।
तस्याऽहं प्रतिगृह्णामि न पूजां शतवार्षिकीम् ॥

इन तीनों अवस्था में मन के द्वारा, बचन के द्वारा, कर्म के द्वारा, हाथ एवं पैर के द्वारा, उदर से, मस्तक से, जो स्मरण किया, जो कहा, जो किया वे समस्त श्रीकृष्ण के लिये अर्पण होवें। श्रीहरि के लिये मुझको एवं मुझ संवन्धी सबका समर्पण करता हूँ ॥३०॥

तुलसीप्रकरण—अब तुलसी का विवेचन करते हैं-उसके ग्रहण करने की विधि-यथा-दण्डवत् प्रणाम कर मंत्र प्रार्थना पूर्वक नखों से स्पर्श न करता हुआ तुलसी का ग्रहण करे। स्कन्द-पुराण में मंत्र-यथा-हे शोभने तुलसी ! तुम्हारा जन्म अमृत-स्वरुप है और तुम निरन्तर केशव की प्रिया है। केशव के लिये तुम्हारा चयन कर रहा हूँ, तुम वरदानी हो । तुलसीपूजन-की नित्यता-यथा-गरुड़पुराण में कहा कि-जो व्यक्ति तुलसी लेकर मेरी अर्चना नहीं करता है उसके सौ वर्ष के पूजा को मैं ग्रहण नहीं करता हूँ। स्कन्दपुराण में तुलसी की महिमा-यथा-न सुवर्ण के समान कोई पात्र है, न सुरभि दान के समान कोई दान है, न गंगा के समान कोई तीर्थ है, न तुलसी के समान कोई पत्र है। पद्मपुराण में कहा है कि-मणि, कंचन, पुष्प, मुक्ता,

अथ महिमा स्कान्दे—

न स्वर्णसदृशं पात्रं न दानं सुरभी-समम् ।
न च गंगासमं तीर्थं न पत्रं तुलसीसमम् ॥

पाद्मे—

मणिकांचनपुष्पाणि तथा मुक्तातपानि च ।
तुलसीपत्रदानस्य कलां नार्हति षोड़शीम् ॥

द्वादशीं बिना सर्वत्र तुलसी-अवचयः ।

तथोक्तं बिष्णुधर्मोत्तरे—

न छिंद्यात्तुलसीं विप्राः द्वादश्यां वैष्णवः क्वचित् ।

अमावास्यादौ त्ववचयोऽस्ति—

देवार्थे तुलसीच्छेदो होमार्थे समिधां तथा ।
इन्दुक्षये न दुःखेत गवार्थे तु तृणस्य च ॥

यथा होमार्थे अमावास्यायां समिधहरणं तद्विदित्यर्थः ॥३१॥

चँदोवा इन सबों के दान से जो फल मिलता है वह तुलसी-पत्र दान के सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं है। द्वादशी को छोड़ कर हर समय में तुलसी चयन करने की विधि है विष्णुधर्मोत्तर में कहा है कि-हे विप्र-गण! वैष्णव कभी भी द्वादशी में तुलसी का चयन न करे। अमावस्यादिक में भी तुलसी चयन करने की बिधि है। जैसा कि—देबता के लिये तुलसी का छेदन, यज्ञ के लिये समिधा का आहरण, गौ के लिये तृण का आहरण, चंद्रक्षय दिवस में दुखःप्रद नहीं है। जिस प्रकार होम के लिये अमावास्या में समिध का आहरण किया जाता है उसी प्रकार अमावास्या के दिन तुलसी का चयन किया जा सकता है ॥३१॥

अथ पुष्पं विष्णुधर्मोत्तरे—

पुष्पाणि तु सुगंधानि मनोज्ञानि तु यः पुमान् ।
प्रयच्छति हृषीकेशे स भागवतः मानुषः ॥

नारसिंहे—

मल्लिका—मालती—जाती—केतक्याशोकचंपकैः ।
पुन्नाग—नाग—बकुलैः पद्मैरुत्पलजातिभिः ॥
एतैरन्यैश्च कुसुमैः प्रशस्तैरच्युतं नरः ॥

अर्चयेदिति शेष ॥ ३२ ॥

अथ निषिद्धानि विष्णुरहस्ये—

न शुष्कैः पूजयेद्देवं न पुष्पैः धरणीगतैः ॥
न विशीर्णदलैस्त्रिष्टैर्नाशुभैः न विकारिभिः ॥
पूतिगन्धनिर्गंधानि उग्रगन्धानि वर्जयेत् ।
न गृहे करवीरोत्थैः कुसुमैरर्चयेद्धरिम् ।
पतितैर्मुकुलैर्म्लानैः त्रासैर्वा जंतुदूषितैः ।
आघ्रातैरङ्गसंस्पृष्टैर्दूषितैश्चैव नार्चयेत् ।

पुष्पों का विवेचन—विष्णुधर्मोत्तर में कहा है कि-जो मनुष्य मनोहर सुगंधित पुष्पों को ऋषीकेश में अर्पित करता है वह परम भागवत है । नरसिंहपुराण में कहा कि-मल्लिका, मालती, जूही, केतकी, अशोक, चंपा पुन्नाग, नागकेशर, कमल, उत्पल इन पुष्पों से एवं अन्य प्रशस्त पुष्पों से अच्युत को अर्चना करना चाहिये ॥३२॥

अब निषिद्ध पुष्पों का विवेचन-विष्णुरहस्य में कहा है-सूखे पुष्पों से देवता की पूजा न करे, पृथ्वी में पतित-फूलों से देवता की पूजा न करे। जिनके दल टूट गये हैं एवं जो

वाराहे—

बन्धूकं करवीरं च न गृहे रोपयेत्क्वचित् ।

बन्धुजीवमपि वामनपुराणादौ निषिद्धम् । अन्यत्रापि करवीर-पूजनं सामान्यरूपेण निषिद्धं तत्रापि । गृहे यत् करवीरो तेन श्रीकृष्णं न पूजयेत् उपवनस्थेन तु पूजयेत् अन्यथा शास्त्रविरोधः स्यात् ।

तथा स्कान्दे पार्वती प्रति—

करवीरैर्महादेवि यः पूजयति केशवम् ।
दश सौवर्णिकैः पुष्पैर्यत्फलं तदवाप्नुयात् ।

स्कान्दे ब्रह्मवाक्यं नारदं प्रति—

येऽर्चयंति सुराध्यक्षं करवीरैः शितासितैः ।
चतुर्युगानि विप्रेन्द्र प्रीतो भवति केशवः ।

विकारी हैं और जो अशुभ हैं उनसे देवता की पूजा न करे। मन्द गंधवाले और गंधरहित तथा तीव्रगंधवाले पुष्पों का वर्जन करे। घर में स्थित करवीर के पुष्पों से भी हरि की अर्चना न करे। गिरे हुये, मुर्दे हुये, मुरझाये हुये, जंतुओं से दूषित, सूँघे हुये, और शरीर में लगे हुये, दूषित पुष्पों से भगवान की पूजा नहीं करनी चाहिये। वाराहपुराण में कहा हैं-करवीर बृक्ष का रोपण घर में न करे । वामनपुराणादिक में बन्धूक पुष्प का निषिध है। अन्यत्र भी करबीर से पूजन सामान्य रूप से निषेध किया है, तो भी गृहस्थित करवीर से श्रीकृष्ण की पूजा न करे। उपबन में स्थित करवीर से पूजा करे । नहीं तो शास्त्रों का विरोध होता है। स्कन्दपुराण में पार्वती के प्रति कहा है कि-हे महा-देवीजी! करबोर पुष्पों से जो केशव का पूजन करता है वह

अथ दमनकस्य स्कान्दे—

दमनैकेन देवेशं संप्राप्ते मधु-माधवे ।
गोशतस्य मुनिश्रेष्ठ ? अर्च्चनाल्लभते फलम् ॥३३॥

अथ नृत्यादि-नित्यता नारदीये—

बिष्णोर्गीतं च वाद्यं च नटनं च विशेषतः ।
ब्रह्मन् ब्राह्मणजातीनां कर्त्तव्यं नित्यकर्मवत् ॥

स्मृतौ—

गीत-नृत्यादि-कुर्व्वीत द्विजदेवाग्नितुष्टये ।
न जीवनाय युंजीत विप्रः पापभिया क्वचित् ॥

वाराहे—

ब्राह्मणो वासुदेवार्थं गायमानोऽनिशं परम् ।
नबबर्ष सहस्राणि कुवेर-भुवनं वसेत् ॥

ब्राह्मे नृसिंहपरिचर्य्यायाम्—

सुवर्ण के दस फल-पुष्पों के समान फल को प्राप्त होता है। स्कन्द-पुराण में नारद जी के प्रति ब्रह्मा जी का वाक्य है कि हे देवश्रेष्ठ सफेद व काले करबीर पुष्पों से जो अर्चना करता है उसके प्रति भगवान केशब चार युग तक प्रसन्न रहते हैं। अब दमनकपुष्प के वारे में स्कन्द-पुराण में कहा है हे देवश्रेष्ठ ! चैत्र एवं वैशाख मास में जो दमनक पुष्पों से प्रभु की अर्चना करता है,शत गऊ के दान के समान उसका फल मिलता है ॥३३॥

अब नृत्यादि की नित्यता कहते हैं—(नारदपुराण में) हे ब्रह्मन् ! ब्राह्मण-जाति का नित्य-कर्म की भाँति विशेष-कर्त्तव्य यह है कि भगवान-विष्णु के समक्ष गान, वाद्य एवं विशेष रूप से नृत्यादिक करे। स्मृति में कहा है कि-ब्राह्मण, देवता और अग्नि

यो निवारयति गीतं नृत्यं जागरणे हरेः ।
षष्टियुगसहस्राणि पच्यते रौरबादिषु ॥
नृत्यमानस्य विप्रस्य उपहासं करोति यः ।
जागरे याति निरयं याबदिन्द्राश्चतुर्द्दश ॥

स्कान्दे—

प्रभाते केशवं यस्तु प्रगायेज्जागरे हरेः ।
स समुद्धरते सर्वान् श्वपचान् ब्राह्मणो यथेति ॥३४॥

अथ श्रीमद्भागवतमाहात्म्यं स्कान्दे—

नित्यं भागबतं यस्तु पुराणं पठते नरः ।
प्रत्यक्षरं भवेत्तस्य कपिलादानजं फलम् ॥
श्लोकार्द्धं श्लोकपादं बा नित्यं भागबतोद्भवम् ।
पठेच्छृणोति बा भक्त्या गोसहस्रफलं लभेत् ॥

की संतुष्टि—हेतु गान, नृत्यादि करे। बाराह-पुराण में कहा है कि यदि ब्राह्मण वासुदेव के लिये निरंतर गानादिक करता है तो वह सौ हजार वर्ष तक कुवेर-भवन में निबास करता है। नृसिंह-परिचर्या नामक ग्रन्थ में ब्रह्मपुराण का बचन उद्धृत कर कहा है कि-श्रीहरि के जागरण में गान, नृत्य का जो मनुष्य निवारण करता है वह साठ हजार युग तक रौरबादि नरकों में गिरता है। भगवान के जागरण में नृत्य-परायण-विप्र का जो उपहास करता है, वह जब तक चौदह इन्द्र रहते हैं तब तक नरक में गिरता है। स्कन्दपुराण में कहा है कि प्रभात-काल में जो व्यक्ति हरि के जागरण में गान करता है बह सबका कल्याण करता है जिस प्रकार कि ब्राह्मण चाण्डालों का उद्धार करता है ॥३४॥

अब भागवतमाहत्म्य का विवेचन--स्कन्दपुराण में कहा है कि-जो नित्य-प्रति भागवत-पुराण का पाठ करता है उसको

य: पठेत्प्रयतो नित्यं शास्त्रं भागवतं कलौ ।
आस्फोटयन्ति वल्गन्ति तेषां प्रीताः पितामहाः ॥
येऽर्चयन्ति सदा गेहे शास्त्रं भागवतं नराः ।
प्रीणितास्तैश्च विबुधा यावदाहूतसंप्लवम् ॥
श्लोकार्द्धं श्लोकमेकं वा वरं भागवतं गृहे ।
शतशोऽथ सहस्रैस्तु किमन्यैः शास्त्रसंग्रहैः ॥३५॥

अथासंग्रहे निन्दा स्कान्दे—
कथं स वैष्णवो ज्ञेयः शास्त्रं भागवतं कलौ ।
गृहे न तिष्ठते विप्र स्वपचादधिको हि सः ॥
न यस्य तिष्ठते शास्त्रं गेहे भागवतं कलौ ।
न तस्य पुनरावृत्तिर्याम्यात् पाशात्कथंचन ॥

प्रति-अक्षर में कपिला-दान-जात-फल मिलता है। जो व्यक्ति भक्ति के साथ भागवत-उत्पन्न श्लोक, श्लोकार्ध अथवा श्लोक का चतुर्थांश का नित्य-प्रति पाठ करता है अथवा श्रवण करता है वह हजार-गौदान का फल प्राप्त करता है। जो व्यक्ति नियमितरूप से नित्य-प्रति इस कलि-काल में भागवत का पाठ करता है उसके पिता एवं पितामहादिक प्रसन्न होकर बाहु उठाकर धन्यबाद देते हैं। जो मनुष्य अपने घर में भागवत की अर्चना करते हैं उनके प्रति महाप्रलय तक देवता-गण प्रसन्न रहते हैं। यदि घर में भागवत के श्लोकार्द्ध अथवा एक श्लोक भी विराजमान रहता है तो उसके लिये सौ हजार अन्य शास्त्र-संग्रह करना अनावश्यक है ॥३५॥

भागवत के असंग्रह में निन्दा-स्कन्दपुराण में कहते हैं कि-जिसके घर पर इस कलिकाल में भागवत-शास्त्र नहीं है वह किस प्रकार वैष्णव माना जासकता है ? हे बिप्र ! वह चाण्डाल से भी

यत्र यत्र भवेद्विप्र! शास्त्रं भागवतं कलौ ।
तत्र तत्र हरिर्याति त्रिदशैः सह नारद ! ॥
तत्र सर्वाणि तीर्थानि नदी-नद-सरांसि च ।
सा च सप्तपुरी नित्यं पुण्याः सर्वशिलोच्चयाः ॥३६॥

पाद्मे—
अम्बरीष ! शुकप्रोक्तं नित्यं भागवतं शृणु ।
पठस्व स्वमुखेनापि यदीच्छसि भवक्षयमिति ॥३७॥

अथ कथा स्कान्दे—
यत्र यत्र महीपाल वैष्णवी वर्त्तते कथा ।
तत्र तत्र हरिर्याति गौर्यथा सुतवत्सलेति ॥

विष्णुधर्मे भगवदुक्तिः—
मत्कथाबाचकं नित्यं मत्कथाश्रवणे रतम् ।
मत्कथाप्रीतिमनसं नाहं त्यजामि तं नरम् ॥

अधिक है। जिसके घर में इस कलिकाल में भागवतशास्त्र नहीं है उस व्यक्ति की यम-बन्धन से कभी पुनरावृत्ति नहीं है। हे विप्र! इस कलिकाल में जहाँ जहाँ भागवत- शास्त्र विद्यमान है वहीं पर हे नारद ! देवताओं के साथ श्रीहरि गमन करते हैं तथा समस्त तीर्थ, समस्त पवित्रकार नद, नदी, सरोवर विद्यमान हैं वही मानो सप्तपुरी है, वहीं समस्त-पुण्य-शील-पर्वत बिद्यमान हैं ॥३६॥ पद्मपुराण में कहा है-हे अम्बरीष ! यदि संसार-क्षय चाहते हो तो नित्य-प्रति शुक कथित भागबत का श्रबण करो, अपने मुख से पठन करो, ॥३७॥

अब कथा का विवेचन—स्कन्द-पुराण में कहा है कि-हे राजन् ! जहाँ जहाँ वैष्णवी कथा होती है बहाँ वहाँ श्रीहरि सुतवत्सला गौ की भाँति गमन करते हैं। विष्णुधर्म्म में भगवान

"यदुत्तमश्लोकयशोऽनुगीयते" अनुगीयत इत्यनेन-सुकंठतया गानमतीव प्रीतिजनकमिति "रागेनाकृष्यते चेतो गान्धर्वाभिमुखं यदि। मयि बुद्धिं समास्थाय गायथ मम सत्कथा"।

पाद्मे कार्त्तिके—

नाहं बसामि बैकुंठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद !॥

स्कान्दे—

श्लोकं भागवतं बापि श्लोकार्द्धं पादमेव च।
लिखितं तिष्ठते यस्य गृहे तस्य सदा हरिः॥३८॥

अथ प्रसादग्रहणं सादरेण तथोक्तं—

महाप्रसाद इत्युक्त्वा ग्राह्यमंजलिना बुधैः।

का बचन- मेरी कथा को नित्य कहने बाला, नित्य मेरी कथा में प्रीतमना उस मनुष्य को मैं नहीं त्याग करता हूँ। "जहाँ उत्तमश्लोक भगवान का यश अनुगान होता है" यहाँ "अनु-गान" इस शब्द से सुन्दर स्वर से गान अत्यन्त प्रीतिजनक वह स्पष्ट है। राग से चित्त आकृष्ट होता है यदि गन्धर्व्व विद्या के अभिमुख हो जाय। अतः मेरी में बुद्धि का नियोजन कर मेरी सत्कथा का गान करो। पद्मपुराण के कार्त्तिकमाहात्म्य में-हे नारद! मैं बैकुण्ठ में नहीं बैठता हूँ, योगियों के हृदय में भी नहीं ठहरता हूँ। जहाँ मेरे भक्त-गण मेरी कथा का गान करते हैं मैं वहाँ ही ठहरता हूँ। स्कन्दपुराण में-भागवत के एक श्लोक, अथवा अर्द्ध श्लोक, अथवा श्लोक-चतुर्थांश जिसके घर पर लिखे मौजूद हैं उसके वहाँ श्रीहरि बिद्यमान रहते हैं॥३८॥

सादर पूर्वक महाप्रसाद को ग्रहण करे। जैसा कहा है-"प्रभु का यह महाप्रसाद" ऐसा कह कर बुधगण अंजलि से ग्रहण करे,

पादोदकं च निर्माल्यं नैवेद्यं तु विशेषतः॥
श्रीकृष्णप्रसादं भुञ्जीयात्।

बिष्णुधर्मे—

प्राणेभ्यो जुहुयादन्नमन्निवेदितमुत्तमम्।
तृप्यन्ति सर्वदा प्राणाः मन्निवेदितभक्षणात्॥

श्रीभागवते—

त्वयोपभुक्तास्रग्गंधवासोऽलङ्कारचर्च्चिताः।
उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेमहि॥३९॥

अथ तुलसी-चरणामृतसिक्तं प्रसादं—

स्कान्दे—

नैवेद्यशेषं तुलसीविमिश्रितं विशेषतः पादजलेन सिक्तम्।
योऽश्नाति नित्यं पुरतो मुरारेः प्राप्नोति यज्ञायुतकोटिपुण्यम्॥
षड्भिर्मासोपवासैश्च यत्फलं परिकीर्त्तितम्।
विष्णोर्नैवेद्यसिक्तेन फलं तद्भजतां कलौ॥

बिशेष करके पादोदक, निर्म्माल्य एवं नैवेद्य के ग्रहण का बिधान है। श्रीकृष्ण-प्रसाद का भोजन करे। विष्णुधर्म्म में कहा है-मन्निवेदित उत्तम अन्न से प्राणों का हवन अर्थात् तृप्त करे। मन्निवेदित का भक्षण से सर्वदा प्राण-समूह तृप्त होते हैं। भागवत में-तुम से उपभुक्त माला, गन्ध-द्रव्य, वस्त्र, अलङ्कारों से चर्चित उच्छिष्ट भोजी दास-गण तुम्हारी माया को जीत लेते हैं॥३९॥

तुलसी-चरणामृत सिक्त प्रसाद—जो व्यक्ति, बिशेषकर के चरणामृत से सिक्त एवं तुलसी मिश्रित प्रभु के शेष नैवेद्य का उनके समक्ष प्रतिदिन भोजन करता है, वह कोटि-यज्ञों का फल प्राप्त करता है। छै महिने उपवास करने से कलिकाल में जो फल कहा जाता है वह फल बिष्णु के नैवेद्य-कण से प्राप्त हो जाता है।

गारुडे—

पादोदकं पिबेन्नित्यं नैवेद्यं भक्षयेद्धरेः ।
शेषाश्च मस्तके धार्य्या इति वेदानुशासनम् ॥

ब्रह्माण्डे—

मुकुन्दाशनशेषं तु यो हि भुंक्ते दिने दिने ।
सिक्थे सिक्थे भवेत्पुण्यं चान्द्रायणशताधिकम् ॥४०॥

पाद्मे गौतमः—

अम्बरीष नवं वस्त्रं फलमन्नं रसादिकम् ।
कृत्वा कृष्णोपभोग्यं हि सदा सेव्यं च वैष्णवैः ॥

पाद्मे शिववाक्यम्—

अग्निष्टोमसहस्रैश्च वाजपेयशतैरपि ।
यत्फलं लभते देवि विष्णोर्नैवेद्यभक्षणात् ॥

भविष्ये—

भक्तेक्षणक्षणो देवः स्मृतिः सेवा स्ववेश्मनि ।
स्वभोज्यस्यार्पणं दानं फलमिन्द्रादिदुर्लभम् ॥

गरुड़-पुराण में कहा जाता है-कि नित्य चरणामृत का पान करे और हरि के नैवेद्य का भक्षण करे, प्रभु के अवशेष मस्तक में धारण करे, यह वेद शास्त्र का शासन है । ब्रह्माण्ड- पुराण में कहा है कि जो व्यक्ति प्रतिदिन मुकुंद के भोजन शेष को ग्रहण करता है उसके ग्रास-ग्रास में शत-चांद्रायण-व्रत से अधिक फल मिलता है ॥४०॥

पद्मपुराण में गौतम ने कहा है—कि हे अम्बरीष ! नवीन-वस्त्र, फल, रसादिक श्रीकृष्ण को भोजन कराकर, वैष्णवगण शेष प्रसाद को ग्रहण करें । वहाँ शिवजी का वाक्य भी है-हजार अग्निष्टोम, सौ बाजिपेय यज्ञ से जो फल मिलता है, वह फल

श्रुतिश्च—"एक एव नारायण आसीत् न ब्रह्मा नेमे द्यावा-पृथिव्यौ सर्वे देवाः सर्वे मनुष्याः विष्णुनाश्नुतमश्नन्ति विष्णुना घ्रातं जिघ्रन्ति विष्णुना पीतं पिबन्ति तस्माद्विद्वांसो विष्णूपहृतं भक्षेयुः" ॥४१॥

अथानिवेदितभक्षणे निंदा, ब्रह्मांडे—

पत्रं पुष्पं फलं तोयमन्नपानाद्यमौषधम् ।
अनिवेद्य न भुंजीत यदाहाराय कल्पितम् ॥
अनिवेद्य प्रभुञ्जानः प्रायश्चित्ती भवेन्नरः ।
तस्मात्सर्वं निवेद्यैव विष्णोर्भुंजीत नान्यथा ॥

विष्णु के नैवेद्य-भक्षण से मिलता है । भविष्य-पुराण में कहा है कि भक्तों के दर्शन का समय, देवता का स्मरण, अपने गृह में भगवान की सेवा तथा अपनी भोज्य वस्तु का प्रभु हेतु अर्पण रूपी दान का फल इन्द्रादिक देवताओं को भी दुर्लभ है । श्रुति कहती है कि पहले एकमात्र नारायणदेव थे । आकाश पृथ्वी कुछ नहीं थे । समस्त देवता, समस्त पितर, समस्त मनुष्य, विष्णु के द्वारा भुक्त होने पर भोजन करते हैं, विष्णु के द्वारा सूंघे जाने पर सूंघते हैं, विष्णु के द्वारा पीये जाने पर फिर पीते हैं अतः विद्वान जन विष्णु शेष भक्षण करते हैं ॥४१॥

अनिवेदित-वस्तु-भक्षण की निन्दा-ब्रह्माण्डपुराण में कहा है-पत्र, पुष्प, फल, जल, अन्न, पान, औषधि, जो कुछ आहार हेतु संचित किया जाता है उनको प्रभु के लिए निवेदित किये बिना भोजन न करे । अनिवेदित-वस्तु का भोजन करने वाला प्रायश्चित्ती माना जाता है । अतः समस्त वस्तु विष्णु को निवेदित करके भोजन करे, अन्यथा न करे । पद्मपुराण में कहा है-पतितों

पाद्मे—

अवैष्णवानामन्नं च पतितानां तथैव च ।
अनर्पितं तथा विष्णोः श्वमांससदृशं भवेत् ॥

पाद्मे गौतमः—

अंबरीष गृहे पक्वं यदभीष्टं सदात्मनः ।
अनिवेद्य हरिं भुञ्जन्सप्त जन्मनि नारकी ॥

कूर्म्मे—

अनर्पयित्वा गोविन्दे यो भुंक्ते धर्मवर्जितः ।
शुनोविष्टासमं चान्नं नीरं तत्सुरया समम् ॥

पाद्मे--

अनिवेद्य च यो भुंक्ते हरये परमात्मने ।
मज्जन्ति पितरस्तस्य नरके शास्वतीं समाः ॥४२॥

अथ-भगवन्निवेदितेन देवतान्तरयजनम्—

शास्त्रे निवेदनं दानं ह्यर्पणं त्रिविधं श्रुतम् ।
निवेदनं तु स्वोद्दिश्य द्रव्यस्य ज्ञापनं मतम् ।

के अन्न, अवैष्णवों के अन्न एवं बिष्णु की अनर्पित वस्तु श्वान-मांस के समान होता है। पद्म-पुराण में गौतम ने कहा है कि-हे अम्बरीष! घर में अपने अभीष्ट भोजन जो पकाये जाते हैं, यदि उन्हें हरि को अर्पण किएबिना कोई भोजन करता है,वह सात जन्म तक नारकी माना जाता है। कूर्मपुराण में कहा है कि-धर्मरहित जो व्यक्ति गोविन्द में अर्पण के बिना भोजन, पान करता है, वह अन्न कुत्ते के विष्ठा के समान और जल सुरा के समान है। पद्म-पुराण में कहा-है जो व्यक्ति परमात्मा हरि को निवेदित किए बिना भोजन करता है उसके पितृ-गण अक्षय काल तक नरक में गिरते हैं ॥४२॥

दानं स्वकीयतां त्यागः परस्वापादनं विधिः ॥
अर्पणं स्वामिभोग्यस्य स्वामिने ज्ञापनं मतम् ॥
सूद-दृष्टांतदृष्टेन तदेवं त्रिविधं प्रमा ।
निवेदनं तु स्वोद्देश्यत्वेनानीतस्य वस्तुनः ।

श्रीकृष्णाय ज्ञापनं ततश्च तदाज्ञया स्वीकारः एवं च श्रीकृष्णं ज्ञापयित्वा वस्तुस्वीकारे वैष्णवस्य न दोषः "ये पचंत्यात्मकारणमि"ति तु स्मार्त्ते ।

तथोक्तं—

यद्यदिष्टतमं लोके यच्चातिप्रियमात्मनः ।
तत्तन्निवेदयेन्मह्यं तदानंत्याय कल्पते ॥
एवं नृणां क्रियायोगाः सर्वे संसृतिहेतवः ।
तदेवात्मबिनाशाय कल्प्यन्ते कल्पितापरे ।
दारान् गृहान् सुतान् प्राणान् यत्परस्मै निबेदयेत् ॥४३॥

भगवान की निवेदित वस्तु से अन्य देवता का यजन किया जाता है। शास्त्र में निवेदन, दान एवं अर्पण तीन प्रकार के कर्म बतलाये हैं। अपने उद्देश्य में द्रव्य का ज्ञापन निवेदन है, निज-त्व का त्याग तथा परस्व का संपादन दान है, स्वामीभोग्य बस्तु का स्वामी में ज्ञापन अर्पण है। इसी प्रकार सूद दृष्टांत से ३ प्रकार हैं। अपने उद्देश्य में आनीत वस्तु का पहले भगवान श्रीकृष्ण को ज्ञापन कराया जाता है, इसके बाद उनकी आज्ञा से स्वीकार किया जाता है। इसी प्रकार श्रीकृष्ण को जनाकर वस्तु का प्रयोग करने में कोई दोष नहीं है। जो अपने के लिए करता है वह नरक में गिरता है। भगवान ने कहा है कि इस लोक में अपने जो जो इष्टतम प्रिय-वस्तु हैं, उन सब को मेरे लिए निवे-दन करें तब वह सब अनन्तरूप हो जाती हैं। इस प्रकार मनुष्यों

"पुरेह भूमन्बहवोऽपि योगिनस्त्वदर्पितेहा निजकर्म्मलब्धया।
विबुध्य भक्त्यैव कथोपनीतया प्रपेदिरेऽञ्जोच्युत ? ते गतिं पराम्"
श्रीधराचार्य्येण व्याकृतं-त्वयि अर्पिता लौकिक्यपि इहा चेष्टायैस्ते, यद्वा-त्वयि अर्पिता ईहालौकिकी क्रिया निर्जानि स्वार्थानि कर्माणि तैरुत्पन्नया भक्त्येत्यर्थः। ब्रह्मचारीप्रकरणे-तथैव विद्यमानात्। "सायं प्रातरुपादाय भैक्ष्यं तस्मै निवेदयेत्" तथा-पत्रं पुष्पं फलं न्नपानाद्यमौषधम्। अनिवेद्य न भुंजीत। यदाहाराय कल्पितम्। निंबादिकमपि श्रीकृष्णं दर्शयित्वाभक्ष्यं स्वदेहरक्षार्थमिदं भक्ष्यतेति एवमन्यदपि ॥४४॥

के क्रिया-योग सब कहे गए हैं जो कि संसार के हित के लिए हैं अतः आत्म विनाश के लिए वह सब कल्पित किये गये हैं। बुद्धिमान-जन, दारा गृह, पुत्र, प्रान, समस्त परमेश्वर को निवेदन करें ॥४३॥

भागवत में कहा है-कि हे विशाल ! पहले बहुत से योगीजन अपने कर्म से प्राप्त भक्ति द्वारा विबुद्ध कथादि को प्राप्त कर परम गति को प्राप्त हुए। श्रीधर आचार्य ने इसकी व्याख्या की है कि तुम्ह में लौकिक-क्रिया को जिन्होंने निवेदन किया है अथवा तुममें जिन्होने अपनी अलौकिक-क्रिया का अर्पण किया है उन कर्मों से उत्पन्न भक्ति के द्वारा एसा अर्थ जानो। ब्रह्मचारी प्रकरण में इसी प्रकार जानना। संध्या, प्रातः दोनों समय भिक्षादिक जो कुछ हैं उन्हें निवेदन करे। क्योंकि पत्र, पुष्प, फल, जल, पान, औषधि जो कुछ संचित किया जाता है उसको बिना निवेदित किए भोजन न करे, ऐसा बचन है। और भीनिम्बादिक कटु-द्रव्य भी श्रीकृष्ण को दिखाकर भोजन करना

अथ महाप्रसादेनैव श्राद्धं तथोक्तम्—

विष्णोर्निवेदितान्नेन यष्टव्यं देबतान्तरम्।
पितृभ्यश्चापि तद्देयं तदानंत्याय कल्पते ॥

स्कान्दे--

देवान् पितॄन्समुद्दिश्य यद्विष्णोर्विनिवेदनम्।
तानुद्दिश्य पुनः कुर्यात् प्रदानं तस्य चैव हि ॥
प्रयान्ति तृप्तिमतुलां सोदकेन तु तेन वै।
मुकुन्दगात्रलग्नेन ब्राह्मणानां बिलेपनम् ॥
चंदनेन तु पिंडानां कर्तव्यं पितृतृप्तये ॥४५॥

नन्वन्यस्मै कृतं पाकं कथमन्यस्मै देयं-
तथोक्तं--

"गृहाग्नि-शिशु-देबानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम्।
श्राद्धपाको न दातव्यो याबत्पिंडान्ननिवेद्यद्"

इति चेन्न अवैष्णवविषयत्वात्।

चाहिए। भक्तगण अपनी देहरक्षा हेतु इन वस्तुओं का भक्षण करते हैं ॥४४॥

महाप्रसाद से ही श्राद्ध करने की विधि है जैसा कि कहा है-विष्णु-निवेदित अन्न से अन्य देवता का यजन करना चाहिये। पितृगण के लिए भी वह दान अनन्त रूप माना जाता है। स्कन्दपुराण में कहा है कि देवता, पितृगण को उद्देश्यकरके विष्णु के लिए जो निवेदन किया जाता है पुनः उस निवेदित वस्तु को उन्हीं को प्रदान करना चाहिये। जल युक्त उस नैवेद्य को प्राप्त कर वह सब अतुल-तृप्ति को प्राप्त होते हैं। मुकुन्द के शरीर-लग्न चंदनों के द्वारा ब्राह्मणों का लेपन करे तथा पितरों की तृप्ति के लिये पिंड प्रदान करे ॥४५॥

तथोक्तं भारते मोक्षधर्मे--

सात्वतं विधिमास्थाय प्राक् सूर्यमुखनिःसृतम्।
पूजयामास देवेशं तच्छेषेण पितामहान् ॥
विष्णोर्निवेदितान्नेनेत्यादिर्विधिबलात्तथैव ॥४६॥

अनिवेदितदाने निंदा च-विष्णुधर्मे—

भक्ष्यं भोज्यं च यत्किंचिदनिवेद्याग्रभोक्तरि।
न देयं पितृदेवेभ्यः प्रायश्चित्तं यतोभवेत् ॥
सर्गादौ कल्पितो देवैरग्रभुक् भगवान् हरिः।
यज्ञभागभुजो देवास्तपस्तेन प्रकल्पिताः ॥
तेनानिवेद्य तं विष्णोर्न गृह्णन्ति दिवौकसः।
व्यतिक्रमभयात्सर्वे स्वामिनो जगदीशस्य।

किं तु ब्रह्मादयस्तु सेवकाः भगवान् सेव्यो अत एव ते प्रसादमेव गृह्णन्ति।

अच्छा और के लिए किया गया पाक, अन्य को कैसे दिया जा सकता है ऐसा कहा है कि गृहाग्नि, शिशु, देवता, यती, ब्रह्मचारी इनको श्राद्ध-पाक नहीं दिया जाना चाहिए। तो कहते हैं कि-ये अवैष्णवविषय पर हैं। महाभारत के मुख्यधर्म्म में कहा है कि सात्विक-विधि का अवलंबन कर पहले सूर्य-मुख से निसृत देवता की पूजा करे। उनके शेष नैवेद्य से पितामह की पूजा करे। विष्णु के निवेदित अन्न से अन्य देवता की पूजा करे इस प्रकार का विधिवाक्य है ॥४६॥

अनिवेदित प्रदान से निन्दा होती है, विष्णुधर्म में कहा है-भक्ष, भोज्यादिक जो कुछ वस्तु हैं उनको अग्रिम-भोक्ता भगवान को निवेदित न कर, देवता पितरों को नहीं देना चाहिये, इससे प्रायश्चित्त होता है। पहले अग्रभोक्ता भगवान श्रीहरि ने,

तथोक्तं—

विश्वादयश्च पितरो भृत्या इंद्रादयः सुराः।
अतस्तद्भुक्तशेषं तु हरेः ब्रह्मादि-सद्गुरोः ॥४७॥

विपरीते निंदा नारदीये—

पितृशेषं च यो दद्याद्धरये परमात्मने।
रेतोदाः पितरस्तस्य भवन्ति क्लेशभागिनः ॥

किं च वैष्णवे श्राद्धं देयं वैष्णवे निवेदितमेव भक्ष्यम्।

प्रह्लाद-पंचरात्रे—

अभाष्यन् च कर्म जडान् वंचयेद्द्रविणादिभिः।
हरेर्नैवेद्यं संभाषन् वैष्णवेभ्यो समर्पयेत् ॥

निंदा च वैष्णवतंत्रे—

हरेर्निवेदितं किंचित्तद्दद्यात्कर्हिचिद्बुधः।
अभक्तेभ्यः सशल्येभ्यो यद्ददन्निरये पतेत् ॥

स्वर्गादिक में देवताओं की कल्पना की, ये सब देवता यज्ञभाग का भोजन करते हैं। इसी लिए व्यतिक्रम-आदि भय से देवतागण विष्णु को निवेदित किए बिना ग्रहण नहीं करते हैं। क्योंकि भगवान जगत के स्वामी हैं। परन्तु ब्रह्मादि सेवक हैं और भगवान् सेव्य हैं अतः देवतागण भगवत् प्रसाद को ग्रहण करते हैं। जैसा कि कहा है कि विश्वादिक पितरगण, इन्द्रादिक देवतागण येसब भगवान के भृत्य है अतः भगवान् का भुक्त-शेष ब्रह्मादि सद्गुरु में प्रदान करना चाहिए ॥४७॥

विपरीत से निंदा—यथा नारदपुराण में—जो परमात्मा हरि के लिए पितृशेष का अर्पण करता है उनके पितरगण फल रूप में रेत प्रदान करते हैं एवं क्लेशभागी होते हैं। और भी वैष्णव-जन में श्राद्ध देना चाहिए। वैष्णव के निवेदित का भक्षण करना

अन्यच्च गौडनिबंधे—

नैवेद्यं प्रतिपत्त्यर्थं सात्वतश्चेन्न लभ्यते ।
ग्रासमात्रं समुद्धृत्य शेषमप्सु विनिक्षिपेत् ॥

तथोक्तं मार्कण्डे—

यस्तु विद्याविनिर्मुक्तं मूर्खं मत्वा तु वैष्णवम् ।
वेदविद्भ्यो ददद्विप्र तच्छ्राद्धं राक्षसं भवेत् ॥४८॥

स्मृतिश्च—

सुराभांडस्थपीयूषं यथा नश्यति तत्क्षणात् ।
चक्रांकरहितं श्राद्धं तथा शांतातपोऽब्रवीत् ॥

पाद्मे—

शङ्खाङ्किततनुर्विप्रो भुंजते यस्य वेश्मनि ।
तदन्नं स्वयमश्नाति पितृभिः सह केशवः ॥

चाहिए। प्रह्लादपंचरात्र में कहा है-कि भक्तजन, कर्मजड़ों को द्रविणादिक के द्वारा वंचित कर वैष्णवों को बुलाकर हरि के नैवेद्य को समर्पण करे। अवैष्णव जन में प्रदान निंदा होती है। जैसा कि वैष्णवतंत्र में कहा है कि कोई पंडित यदि कहीं सेत्त युक्त अभक्त जन में हरि निवेदन का किंचित् प्रदान करता है, तो उसको वह दान नरक में गिराता है। गौड़निबंध में कहा है-कि नैवेद्य प्रदानकरने के लिए यदि सात्वत जन नहीं मिलते हैं, तो उससे ग्रास मात्र उठाकर अवशेष जल में निक्षेप करदें। मार्कंडपुराण में कहा है कि जो व्यक्ति विद्या-रहित वैष्णव को मूर्ख जानकर वेदवेत्ता ब्राह्मणों को दान करता है उसकी वह श्राद्ध राक्षस होता है ॥४८॥

स्मृति में शान्तातप ने कहा है-सुराभाण्ड स्थित अमृत जिस प्रकार उसी क्षण नाश हो जाता है ठीक उसी प्रकार चक्रादि-चिन्हधारी से रहित श्राद्ध नष्ट रूप माना जाता है। पद्मपुराण

विष्णुरहस्ये—

निवेशयेन्नरो मोहादन्यपंक्तौ हरेः प्रियम् ।
स पतेन्निरये घोरे पंक्तिभेदी नराधमः ॥४९॥

तथान्यदेबनिर्माल्ये निंदा-ब्रह्माण्डे—

भुंक्त्वान्यदेबनैवेद्यं द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ।
भुंक्त्वा केशबनैवेद्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्रीकृष्णप्रसादमेव भोज्यं नान्यत्। ये तु युक्त्याभासैः यज्जातीयं भक्ष्यमिति-कल्पयन्ति ते वै नास्तिकत्वेनोपेक्ष्याः। ननु तथापि कथं दानं पितृभ्यः सत्वाभावात न, उच्छिष्टस्य प्राप्तस्य सत्वसंभवात्। किं च-ननु पंच-हिंसाजनिता-

---

में कहा है-जिसके घर पर शंख-चिन्हित विप्र भोजन करता है उस व्यक्ति के अन्न को स्वयं केशब पितरों के साथ भोजन करते हैं। विष्णुरहस्य में कहा है- जो व्यक्ति मोह से भी अन्य-पंक्ति में हरिभक्त को बैठाता है वह पंक्ति-भेदी नराधम घोर-नरक में गिरता है ॥४९॥

अन्य-देवता के निर्म्माल्यग्रहण में निन्दा—ब्रह्माण्डपुराण में कहा है-ब्राह्मण अन्य देवता के नैवेद्य ग्रहण करने से पापी हो जाता है, अतः उसको चान्द्रायण व्रत करना चाहिये। यदि वह केशब-शेष का ग्रहण करता है तो समस्त पापों से मुक्त हो जाता है अतः सर्व-प्रयत्न से श्रीकृष्ण-प्रसाद का भोजन करना चाहिये, अन्य का नहीं। जो सब नाना प्रकार युक्त्याभास दिखा कर अन्य प्रकार कहते हैं, वे सब नास्तिक हैं उनकी उपेक्षा कर देना चाहिये। अच्छा ? जब एसा है तो अर्पित-बस्तु में सत्व का अभाव के कारण किस प्रकार पितरों में दान माना जा सकता है तो कहते है भगवत् उच्छिष्ट प्राप्त में भी सत्व की संभावना

शुभस्य वैश्यदेबता-शांतस्य चासंस्कारत्वा संस्कृत्य श्रीभगवते दत्वा तच्छेषेण सर्वं कुर्यात् ।

विष्णुधर्मोत्तरे—

भक्ष्यं भोज्यं च यत्किंचित् अनिवेद्याग्रभोक्तरि ।
न देयं पितृदेवेभ्यः प्रायश्चित्ती भवन्नरः ॥

अन्यानि वाक्यानि पूर्वमेवोदाहृतानि यस्मादत्र वैष्णवव्यवस्था पूजने सर्वेऽधिकर्तारः ॥५०॥

पाद्मे बैशाखे—

आगमोक्तेन मार्गेण स्त्रीशूद्रैश्चैव पूजनम् ।
शूद्राणां चैव भवति नाम्ना वै देवतार्चनम् ॥

गौतमीये—"भक्तिरष्टविधा ह्येषां" ॥५१॥

है। और भी नित्य-प्रति भगवदीय द्रव्यादि के आहरण में पंच हिंसा जात अशुभ उपस्थित होता है। अतः वैश्यदेवादि शान्ति के द्वारा उन शाक, मूल, फलादि द्रव्यों को संशोधित कर पश्चात भगवान को अर्पित करा कर उसका शेष ग्रहण करना चाहिये। बिष्णुधर्मोत्तार में कहा है—भक्ष, भोज्यादि जा भी कुछ है उसको अग्र-भोक्ता भगबान में समर्पित न कर पितर-देवताओं को नहीं देना चहिए। यदि दिया जावे तो प्रायश्चित्त होता है—पहले इस बिषय में बहु प्रमाण दिये गये हैं। यह सब व्यवस्था बैष्णव परक है, भगवद् पूजा में सब अधिकारी हैं ॥५०॥

पद्मपुराण के वैशाख-माहात्म्य में कहा है—आगम-मार्ग (तन्त्र) से स्त्री-शूद्र सब कोई पूजन कर सकता है, शूद्रों का भी नाम के द्वारा देवतार्चन किया जाता है। गौतमतन्त्र में कहा-यह आठ प्रकार की भक्ति जिसके हृदय में है वह पूजादि में अधिकारी है ॥५१॥

अथ केचित् चतुःषष्ट्युपचारैः पूजयन्ति—

तथोक्तं—वीणादिवेदघोषैः श्रीकृष्णस्य प्रबोधनं (१) जय-
जयादिशब्दः (२) प्रणतयः (३) मंगलारात्रिकं (४) दिव्यासनं
(५) दंतकाष्ठं (६) श्रीचरणप्रक्षालनं (७) अर्घं (८) सुगंध-द्रव्यै-
रभ्यंगो (९) सुगंधजलैः स्नपनं (१०) क्षीरेण ११ दध्ना १२ घृतेण
१३ मधुना १४ शर्करया १५ मंत्रपूतैः सुगंधजलैर्महाभिषेकः १६
अंगवस्त्रं १७ परिधानवाससी १८ आचमनीयं १९ उपनीतं २०
आचमनं २१ सुगंधानुलेपः २२ दिव्याभरणानि २३ पुष्पाणि २४
धूपो २५ दीपो २६ दृष्टिस्फारणं २७ महानैवेद्यं २८ मुखबासं च
२९ तांबूलं ३० दिव्यपर्यंके शयनं ३१ केशप्रसाधनं ३२ दिव्य-
वस्त्रार्पणं ३३ महाकिरीटं ३४ दिव्यचंदनं ३५ कौस्तुभादिदिव्या-
भरणानि ३६ दिव्यपुष्पाणि ३७ मंगलनीराजनं ३८ आदर्शं ३९
सुखयानेन मंडपगमनं ४० सिंहासने प्रवेशः ४१ पाद्यादिभिः पुन-

कोई कोई चौसठ उपचार से श्रीकृष्ण की पूजा करते हैं। वे यथा-वीणादि वेदघोषों से श्रीकृष्ण का प्रबोधन (१) जय जय शब्द (२) प्रणाम (३) मंगलनीराजन (४) दिव्यासन-प्रदान (५) दन्तकाष्ठ अर्पण (६) श्रीचरण-प्रक्षालन (७) अर्घ्य-प्रदान (८) सुगन्धि-द्रव्यों से मर्दन (९) तथा सुगन्धि-जल से स्नापन (१०) दुग्धस्नान (११) घृतस्नान, (१३) मधु-स्नान (१४) शर्करास्नान (१५) मन्त्र पूत सुगन्धिजलों से महाभिषेक (१६) अंगवस्त्र प्रदान (१७) परिधान वस्त्र प्रदान (१८) आचमन (१९) यज्ञोपवीतदान (२०) आचमन (२१) सुगंध का लेपन (२२) दिव्य-आभरण-प्रदान (२३) पुष्पदान (२४) धूपदान (२५) दीपदान (२६) नेत्र-उन्मीलन (२७) महा-नैवेद्यप्रदान (२८) मुखवास प्रदान (२९) ताम्बूल अर्पण (३०) मनोहर पलंग पर शयन (३१) केशप्रसाधन

रर्चनं ४२ पुनर्धूप-पूर्वनैवेद्यं ४३ दिव्यताम्बूलं ४४ महानीराजनं ४५ चामर-व्यजन-छत्रं ४६-४७-४८ गानं ४६ वाद्यं ५० नर्त्तनं ५१ प्रदक्षिणा ५२ प्रणतिः ५३ स्तुतिः ५४ श्रीचरणौ मस्तकस्थापनं ५५ श्रीचरणामृतमाल्यधारणं ५६ उच्छिष्टभोजनं ५७ अतिप्रीत्या दासभावेन कृष्णचरणोद्देशेनोपवेशनं ५८ रात्रौ दिव्यवस्त्रैः शय्यानिर्माणं ५६ कृष्णस्य रहस्य दानं ६० शय्यागमन-महोत्सवः ६१ शय्योपवेशने श्रीकृष्णचरणक्षालनं ६२ गंधपुष्पकर्पूरांजनोत्सवः ६३ सुप्तस्य श्रीकृष्णस्य पादसम्वाहनं ६४

एतैः क्रमेण संपूज्य देशिकोक्तैर्यथा विधिः ।
पश्चात्स्वदेहभोग्यं च कृत्वा सुप्यात्सुमित्रवत् ॥

त्रिकालसेवा चतुःकालसेवा-कमदीपिकाद्युक्तप्रकारेण वैष्णवेन कार्या ॥५२॥

---

(३२) दिव्यवस्त्र अर्पण (३३) महा-किरीटदान (३४) दिव्य चंदन-प्रदान (३५) कौस्तुभादि-दिव्याभरण प्रदान (३६) दिव्य-पुष्प-प्रदान (३७) मंगलानिराजन (३८) आदर्श (दर्पन) प्रदान (३६) मनोहर मवारी द्वारा मंडप प्रवेशन (४०) सिंहासन में प्रवेशन (४१) पाद्यादि वस्तु से पुनः आचमन (४२) धूपदान पूर्वक नैवेद्य अर्पण (४३) दिव्य ताम्बूल अर्पण (४४) महा-निराजन (४५) चँवर, व्यजन एवं छत्र प्रदान (४६-४७-४८) गान (४६) वाद्य (५०) नर्तन (५१) प्रदक्षिणा (५२) प्रणाम (५३) स्तुति (५४) श्री-चरणों में मस्तक स्थापन (५५) चरणामृत एवं प्रसादी माला का धारण (५६) उच्छिष्ट भोजन (५७) अति प्रीति पूर्वक दास भाव से श्रीकृष्ण-चरण स्पर्श उद्देश्य से उपवेशन (५८ रात्रि में दिव्य-वस्त्रों से सज्या सजाना (५६) रहस वस्तु का समर्पण (६०) सज्जा

अथ वैष्णवलक्षणम्—

वैष्णवाः पंचधा प्रोक्ता आप्तोऽनाप्तस्तथैव च ।
अंजलीकारको ह्यन्य आरंभी च प्रवर्त्तकः ॥

शल्यरहितश्रीभगवद्भाववानाप्तः, कर्माविरोधपूर्वकाप्तोपदिष्ट-भगवद्भजनवाननाप्तः, अर्थमोक्षार्थसेवकोऽञ्जली, कीर्त्तनादिना धनमुत्पाद्य यज्ञसंस्थापकः आरम्भी, अमार्गसेवकः संप्रवर्त्तकः । तथोक्तं नारदपंचरात्रे द्वाविंशे पटले—

इत्येतद्व्यतिरिक्तानां वैष्णवानां च लक्षणम् ।
कथितं मुनिशार्दूल आप्तादीनां मतं शृणु ॥
योजयन्ति क्रमेणैव पंचकालोदितेन च ।
द्विजातीनां चतुर्णां तु वषट्कारं ददात्यपि ॥

गमन महोत्सब (६१) शय्या में बैठाकर श्रीकृष्ण-चरण-प्रक्षालन (६२) गंध-पुष्प-कर्पूर आदि का प्रदान (६३) शयन-कारी श्रीकृष्ण के पाद संवाहन (६४) क्रम से आचार्य उक्त इन उपचारों से यथा विधि पूजा करने के पश्चात् अपने देह का समर्पण कर मित्र की भाँति शयन करावे । त्रिकालिक सेवा एवं चातुर्कालिक सेवा क्रमदीपिका में कही गयी है उसी प्रकार से बैष्णव सेवा करें ॥५२॥

अब बैष्णबलक्षण का विवेचन-बैष्णब ५ प्रकार के हैं-आप्त, अनाप्त, अंजलिकारक, आरंभी, प्रवर्त्तक । शल्य-रहित भगवद्भाव युक्त आप्त है । कर्म-अबिरोध पूर्वक आप्तउपदिष्ट-भगवद्-भजनवान अनाप्त है । अर्थ मोक्षादि के सेवन अंजलि कारक है । कीर्त्तनादिक से धन उत्पादन कर यज्ञादिक करने वाले आरंभी है । अमार्ग सेवन करने वाला संप्रवर्त्तक है । नारदपंचरात्रि के बाईसवें पटल में कहा है हे-मुनिश्रेष्ठ ! मैं ने व्यतिरिक्तरूप से वैष्णवों

विशुद्धेन भवन्मार्गे सत्वस्थाः सात्वताश्च ये ।
असंकीर्णा द्विजश्रेष्ठ ब्रह्मरुद्रेन्द्रपूर्वकैः ॥
विशेषदेवतायागैरमुख्यैरतिनिर्मलैः ।
बासुदेवं बिना नान्यं यजन्ति प्रणबादिना ।
संन्यासक्रमयोगेन फलसम्प्राप्तिमन्तरा ॥
वेदान्तादिविशेषज्ञाश्चतुर्णामुपरि स्थिता ।
भगवद्भाविनो विप्रा इत्याप्ताः समुदाहृताः ॥
वर्णकर्मान्यनुचिंत्य आप्तादिष्टेन कर्मणा ।
यजन्ते श्रद्धया देवं अनाप्तास्तेन ते स्मृताः ॥इत्यनाप्ताः॥
नानात्वेन च विश्वेशं ये यजंत्यर्थसिद्धये ।
मोक्षार्थमपि विप्रेन्द्र ! ज्ञेयास्तेऽञ्जलिकारिणः ॥

का लक्षण कहा अब आप्तादियों के लक्षण कहते हैं सुनो । जो व्यक्ति पंचकाल का अनुष्ठान करते हैं, ब्राह्मणादि चार वर्णों को बषट्कार प्रदान करते हैं, जो ब्रह्मा, रुद्र तथा इंद्रादि विशेष-देबताओं के गौण यज्ञादिक नहीं करते हैं, तथा प्रणवादि से केवल बासुदेव का पूजन करते हैं, और कोई फलाभिसंधि नहीं रखते हैं, जो वेदांतादि विशेष शास्त्रों के ज्ञाता हैं, जो चार वर्णों से ऊपर स्थित हैं, जो भगवद्भाव से भावित हैं, वे समस्त विप्र आप्त हैं । अनाप्त—जो व्यक्ति वर्ण, कर्मादिक की अपेक्षा करते हुए आप्त के द्वारा आदिष्ट कर्म से श्रद्धा पूर्वक देवता का यजन करते हैं वे अनाप्त कहे जाते हैं । अंजलिकारी-जो व्यक्ति भगवान विश्वेश्वर का नाना कहकर अर्थ सिद्धि हेतु याजन करते हैं एवं मोक्ष को भी चाहते हैं वे अंजलिकारी हैं । आरंभी-जिनके अत्यंत प्रतिभा है,जो हरि के यज्ञादिक संस्थापन करते हैं,एवं नाना प्रयत्न से धन का उपार्जन कर,प्रतिष्ठा-आचरण करते हैं मनमें

इत्यंजलीकारिणः—
प्रतिभात्यधिकं येषां यज्ञ-संस्थापनं हरेः ।
धनं संमार्ज्य यत्नेन प्रतिष्ठामाचरन्ति च ॥
वैष्णवी-भक्ति योगेन चेतसा कीर्त्तनेन च ।
आरम्भिणस्ते बोद्धव्या वैष्णवा ब्राह्मणादयः ।
श्रद्धया ये प्रवर्त्तते स्वयं संपूजने हरेः ।
अमार्गेणैव विप्रेन्द्र विद्धि तान् संप्रवर्त्तिनः ॥५३॥

अथ पंचकालम्-दिनमेव क्रियाभेदेन पंचत्वं यथा-ब्राह्ममुहूर्त्तोदुत्थाय ध्यानार्चनस्तवादिना भगवति सन्मुखादिभिः गमनं एको विभागः, पुष्पादि-पूजा-साधनसंपादनो द्वितीयो विभागः प्रहरपर्यंतः, पीठ-प्रधान-हरि-पूजा इत्यादयः तृतीयो विभागः, अर्थानुसंधानपूर्वको मंत्रजपः स्वाध्यायश्चतुर्थो विभागः, नामकीर्त्तनादि-भगवच्छास्त्राभ्यासयोगः पंचमो विभाग । एवं पंचपूजायाः पंच फलानि-सालोक्य (१) सारूप्य (२) सामीप्य (३) सार्ष्टि (४)सायोज्यम् (५) ॥५४॥

वैष्णबी भक्ति रखते हैं एवं कीर्त्तनादि करते हैं वे सब वैष्णव ब्राह्मण आरंभिक कहे जाते हैं । संप्रवर्त्ती-जो श्रद्धा पूर्वक स्वयं श्री हरि के पूजन में अबिधि से प्रवृत्त होते हैं वे संप्रवर्त्ती कहे जाते हैं ॥५३॥

अब पंचकाल सेवा का विवेचन—क्रिया भेद से एक दिवस के ५ भेद हैं । ब्राह्म-मुहूर्त्त से उठ कर ध्यान, अर्चन, स्तोत्रपाठ के द्वारा भगवान के सम्मुख में गमन एक विभाग है । पुष्पादिक पूजा साधन का संपादन दूसरा बिभाग है । यह प्रथम प्रहर पर्यंत हैं । पीठादिक प्रधानता से हरि की पूजा तीसरा विभाग है । अर्थानुसंधान पूर्वक मंत्रजप एवं स्वाध्याय चौथा विभाग है ।

अथ वैष्णवलक्षणम्—

"विष्णुरेव देवता सेव्यो यस्य स वैष्णव" इति तु शब्दव्युत्पत्तिः तथोक्तं लिंगपुराणे—

"विष्णुरेव हि यस्यैष देवता वैष्णवः स्मृतः"।

इति। अथवा विष्णोः सम्बन्धवान् वैष्णवः॥

तथोक्तं पाद्मे त्रिंशेऽध्याये—

द्विविधं वैष्णवं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा।
शंख-चक्रादिभिर्बाह्यमन्तरं बीतरागता॥
बाह्याभ्यन्तरसाम्यं यत् तद्वैष्णवमुद्राहृतम्॥

केचित् तु पंच संस्कारवान् यः वैष्णबः।

संस्काराः दीक्षाप्रकरणे उक्ता, अभिज्ञाः नारदोक्तागमोक्तदीक्षावान् वैष्णबः यत्रान्यदेवसम्बन्धे वैष्णवपदं तत्र किंचिद्भगवत्सम्बन्धमात्रेण वैष्णवत्वम्, अथबा-कृपालुत्वादि भगवद्भक्तगुणवत्वेन वैष्णवत्वम्।।५५॥

नाम कीर्त्तनादि से लेकर भगवद् शास्त्रोंका अभ्यास पंचम विभाग है। इन पाँच प्रकार की पूजा के सारूप्य, सालोक्य, सामीप्य, सार्ष्टि सायोज्य हैं॥५४॥

अब वैष्णवलक्षण का विवेचन—बिष्णु ही देबता अर्थात् सेव्य जिसके हैं वह वैष्णब है। वैष्णब शब्द की यह व्युत्पत्ति है। लिंगपुराण में कहा है–बिष्णु ही जिसके देबता हैं वह वैष्णव है। अथवा बिष्णु के संबन्धवान् वैष्णव है। पद्मपुराण के तीसवें अध्याय में कहा है कि वैष्णब २ प्रकार के कहे जाते हैं बाह्य एवं आभ्यन्तर। शंख-चक्रादियों से चिन्हित बाह्य है। बीतरागता आभ्यन्तर है। बाह्य तथा आभ्यान्तर में जो साम्य है वह वैष्णव है। कोई कोई कहते हैं कि–जो पंच संस्कार युक्त हैं वे

तथोक्तं स्कान्दे—

धर्मार्थं जीबनं येषां संतानार्थं च मैथुनम्।
पचनं विप्र-मुखार्थं ज्ञेयास्ते वैष्णवाः नराः॥

इत्यादौ उपकारित्वलक्षणं भगवद्गुणसम्बन्धेन।

तथा-"न चलति निजवर्णधर्मतो य इत्यादौ सशल्येऽपि वैष्णवपदप्रयोगः। तथोक्तं विष्णुतंत्रे—

आलिंगनं वरं मन्ये सिंहव्याघ्रजलौकसाम्।
न वरं शल्ययुक्तानां नानादेवैकसेबिनाम्॥५६॥

अथप्रपत्तिशरणागती–पाद्मे एक त्रिंशेऽध्याये—

न्यासद्वयं प्रपत्तिः स्यान पर्यायेन निबोध मे।
द्वयोपदेश-पूर्वेण सर्वकर्म समाचरेत।
द्वयाधिकारी न भवेत् सर्वमंत्रेषु नार्हति॥

वैष्णव हैं। दीक्षा प्रकरण में संस्कार कहे गये हैं। नारदोक्त तथा आगमोक्त दीक्षाबान व्यक्ति वैष्णव हैं। जहाँ अन्य देबता के संबन्ध में वैष्णब पद का प्रयोग है वहाँ किंचित् भगबत् सम्बन्ध मात्र से वैष्णवत्व जानना अथवा उनमें कृपालुत्बादिक भगबद्भक्ति के गुण समूह होने के कारण वैष्णबत्व जानना॥५५॥

स्कन्दपुराण में कहा है—जिनके जीवन धर्मार्थ के लिये हैं और जिनके मैथुन संतान के लिये हैं जिनके पचन विप्रमुख प्रदान के लिए है वे समस्त मनुष्य वैष्णव है। यहाँ पर उपकारत्व लक्षण जो दिखलाया गया है वह भगबद् गुण संबन्ध से जानना। और भी "जो निज वर्ण धर्म से चलायमान नहीं है" इत्यादि स्थल में, शल्य युक्त में भी वैष्णव-शब्द का प्रयोग है। विष्णुतंत्र में कहा है कि बरं सिंह, व्याघ्र, जल–जन्तुओं का आलिंगन किया जावे, परन्तु शल्य–युक्त नानादेवता सेवियों का संग न करें॥५६॥

द्वयाधिकारीत्वं द्वये लक्ष्मीनारायणेऽधिकारः, न लक्ष्मीं विना नारायणेन नारायणेन बिना लक्ष्म्यां, तथा—सीतारामे, रुक्मिणी-कृष्णे, श्रीराधाकृष्णे ॥५७॥

तथा पुराणान्तरे—

आनुकूलस्य संकल्पः प्रातिकूलस्य वर्जनम् ।
रक्षिस्यतीति विश्वासो गोप्तृत्वे बरणं तथा ।
आत्मनिःक्षेपकार्पण्यं षड्विधा शरणागतिः ॥

इति श्लोकार्थं प्रतिपत्तिमध्ये प्रक्षिपन्ति साम्प्रदायिकाः

श्रीगीतावाक्यमपि—

मन्मनाभव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥५८॥

प्रपत्ति-शरणागति का विवेचन—पद्मपुराण के इकत्तीसवें अध्याय में कहा कि तुम संक्षिप्त रूप से यह जानो कि दोनों का न्यास शरणागति है । दोनों का उपदेश से समस्त कर्म का आचरण करे । दोनों का अधिकारी न होवे । समस्त मन्त्रों में दोनों का अधिकार नहीं है । यहाँ द्वय शब्द का अर्थ लक्ष्मीनारायण है । उनमें पृथक् रूप से अधिकारी न हों, अर्थात् बिना लक्ष्मी के नारायण में एवं बिना नारायण के लक्ष्मी में अधिकारी न हों। इसी प्रकार सीताराम, राधा कृष्ण आदि में जानना ॥५७॥

पुराणान्तर में कहा है कि—अनुकूल का संकल्प, प्रतिकूल का बर्जन, वे प्रभु अवश्य रक्षा करेंगे ऐसा विश्वास, वेही हमारे रक्षक हैं इस प्रकार वरण, उनमें आत्म—निक्षेप एवं अपने का अर्पण, ये ६ प्रकार की शरणागति हैं । सांप्रदायिक वैष्णव इन श्लोकों के अर्थों को प्रतिपत्ति मध्य में क्षेपण करते हैं, इस विषय में गीता-बाक्य भी है, हे अर्जुन ! तुम मेरे मना हो, मेरे भक्त हो, मेरा

अथ शरणागतिः—

आज्ञायैवं गुणान् दोषान् मया दृष्टानपि स्वकान् ।
धर्मान्संत्यज्य यः सर्वान् मां भजेत स सत्तमः ॥

त्रिशल्लक्षणहीनोऽपि एतादृशः शरणागतः ।

तथोक्तं—

सर्व-धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच ॥

एकादशे—

तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनां प्रतिचोदनाम् ।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च श्रोतव्यं श्रुतमेव च ॥
मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदेहिनाम् ॥५९॥

याजन करो, मेरा नमस्कार करो, इस प्रकार करने से तुम मुझे प्राप्त करोगे । तुम मेरे प्रिय हो यह सत्य है ऐसा जानो ॥५८॥

शरणागति-गुण, दोष समूह मेरी आज्ञा से हैं ऐसा जानकर जो समस्त धर्म का त्याग कर मेरा भजन करताहै वह सत्तम है तीस लक्षण से हीन होकर भी शरणागत हो सकता है । गीता में कहा है कि हे अर्जुन ! तुम समस्त धर्म का परित्याग कर केवल मेरी शरण में आओ, यदि कहो कि समस्त धर्म परित्याग से पाप हो सकता है उससे प्रत्यवाय हो सकता है, तो कहता हूँ सुनो मैं तुमको समस्त पापों से मुक्त करदूंगा, तुम शोक मत करो । एकादश स्कंध में कहा है कि हे उद्धव ! अतः तुम विधि, निषेध, प्रवृत्ति, निवृत्ति, सुनने का विषय, जो सुना है उन सबका परित्याग कर समस्त देहधारियों की आत्मास्वरूप मेरी शरण में आओ ॥५९॥

अथ वैष्णवमहिमा गारुडे--

कलौ भागवतं नाम यस्य पुंसः प्रजायते ।
जननी पुत्रिणी तेन पितॄणां तु धुरंधरः ॥

नारदीये—

श्वपचोऽपि महीपाल विष्णुभक्तो द्विजाधिकः ।
विष्णुभक्ति-विहीनो यो यतिश्च श्वपचाधिकः ॥

गारुड़े—

विष्णुभक्ति-समायुक्तो मिथ्याचारोऽप्यनाश्रमी ।
पुनाति सकलान् लोकान सहस्रांशुरिवोदितः ॥

स्कान्दे—

सकर्त्ता सर्वधर्माणां भक्तो यस्तव केशव ! ।
स कर्त्ता सर्वपापानां यो न भक्तस्तवाच्युत ! ॥
धर्मो भवत्यधर्मोऽपि कृतो भक्तैस्तवाच्युत ।
पापं भवति धर्मोऽपि तवाभक्तैः कृतो हरे ! ॥
निशेष धर्म कर्त्ता वाप्यभक्तो नरके हरे ! ।
सदा निष्ठति भक्तस्ते ब्रह्महापि विमुच्यते ॥६०॥

अब वैष्णवमहिमा-गरुड़पुराण में कहा है कि-कलिकाल में जिस पुरुष के "भागवत" यह नाम उत्पन्न होगया है उसकी माता वास्तविक पुत्रवती है, पितरों में वह धुरंधर है। नारदपुराण में कहा है हे महीपाल ! विष्णुभक्त श्वपच, ब्राह्मण से अधिक है, विष्णु-भक्ति-रहित यति भी चाण्डाल से अधिक है। गरुडपुराण में कहा है-मिथ्यापरायण, अनाश्रमी होकर भी यदि विष्णु-भक्ति युक्त होता है तो वह सूर्य्य की भाँति उदय होकर समस्त लोगों को पवित्र करता है। स्कन्दपुराण में कहा है-हे केशव ! जो तुम्हारे भक्त है वह समस्त धर्म्मों को करने वाला है

स्कान्दे—

तावद्भ्रमन्ति संसारे पितरः पिंडतत्पराः ।
यावत्कुले भक्तियुक्तः सुतो नैव प्रजायते ॥

ध्रुवचरित्रे काशीखंडे—

ब्राह्मणः क्षत्रियः वैश्यः शूद्रो वा यदि चेतरः ।
विष्णुभक्तिसमायुक्तो ज्ञेयः सर्वोत्तमोत्तमः ॥

ब्राह्मवाक्यम्—

सभर्तृका वा विधवा विष्णुभक्ति करोति या ।
समुद्धरति चात्मानं कुलमेकोत्तरं शतम् ॥

और जो तुम्हारे भक्त नहीं हैं वह समस्त पापों को करने वाला है। तुम्हारी अभक्ति से धर्म अधर्म्म हो जाता है एवं तुम्हारी भक्ति से पाप भी धर्म्म हो जाता है। हे हरे ! तुम्हारी अभक्ति में समस्त अधर्म्म व नरक होता है। तुम्हारा भक्त ब्रह्मघाती होने पर भी मुक्त हो जाता है ॥६०॥

स्कन्दपुराण में कहा है-जब तक अपने वंश में भक्ति युक्त सन्तान नहीं उत्पन्न होती है तब तक उसके पिंड चाहने वाले पितर गण संसार में भ्रमण करते रहते हैं। ब्रह्म वाक्य-स्त्री सधवा हो अथवा बिधवा हो यदि विष्णुभक्ति करती है तो वह अपने १०१ कुल का उद्धार करती है। भगवान् का भी बाक्य है-चार वेदों के वेत्ता होकर भी अभक्त मेरा प्रिय नहीं है। यदि चाण्डाल है अथच मेरा भक्त है तो वह मेरा प्रिय है। उसको दिया जावे, उससे लिया जाबे एवं वह मेरी भाँति पूज्य माना जाता है। इतिहाससमुच्चय में कहा है-यदि भगवद्भक्त शूद्र हों, व्याध हों, अथवा चाण्डाल हों उनमें कोई जातिबुद्धि व सामान्य भाव रखता है तो वह निश्चय नरक में गिरेगा। यदि नृशंस हैं,

भगवद्वाक्यम्—

न मे प्रियश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचः प्रियः।
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यहम्॥

इतिहाससमुच्चये—

शूद्रं वा भगवद्भक्तं निषादं श्वपचं तथा।
वीक्ष्यते जातिसामान्यात् स याति नरकं ध्रुवम्॥
ये नृशंसाः दुरात्मानो पापाचाररतास्तदा।
ते यान्ति परमं धाम नारायणपराश्रयाः॥
लिप्यन्ते न च पापेन वैष्णवाः विष्णुतत्पराः॥६१॥

स्कान्दे मार्कण्डभगीरथसंवादे—

दृष्ट्वा भागवतं दूरात्सम्मुखे नोपयाति हि।
न गृह्णाति हरिस्तस्य पूजां द्वादशवार्षिकीम्॥६२॥

आदित्यपुराणे भगवदर्जुनसंवादे—

वैष्णवान भज कौन्तेय मा भजस्वान्यदेवता।
पुनन्ति वैष्णवा सर्वे सर्वदेवमयं जगत्॥

दुरात्मा हैं, सदा पापाचार में रत हैं तो भी वे नारायण का आश्रय कर परम धाम को गमन करेंगे इसमें संशय नहीं है। विष्णु-परायण वैष्णव पाप से नहीं लिप्त होते हैं॥६१॥

स्कन्दपुराण के मार्कण्डेय-भगीरथ संवाद में—जो व्यक्ति दूर से भागवत को देख कर अभ्यर्थन के लिये निकट में नहीं जाता है तो श्रीहरि उसकी बारह वर्ष की पूजा को भी नहीं ग्रहण करते हैं॥६२॥

आदित्यपुराण में भगवदर्जुन संवाद में—हे कौन्तेय! वैष्णवों का भजन करो, अन्य-देवता का भजन मत करो, वैष्णव गण समस्त पवित्र करते हैं तथा सर्व्वदेवमय माने जाते हैं।

बृहन्नारदीये सूतवाक्यम्—

हरिभक्तिरसास्वादमुदिता ये नरोत्तमाः।
दुर्वृत्ता वा सुवृत्ता वा तेषां नित्यं नमो नमः॥
घोरे कलियुगे प्राप्ते सर्वधर्म-वहिष्कृते।
वासुदेवपरा मर्त्या ते कृतार्था न संशयः॥६३॥

पाद्मे—

श्वपचकमिवेक्षेत लोके विप्रमवैष्णवम्।
वैष्णवो वर्णवाह्योऽपि पुनाति भुवनत्रयम्॥
न शूद्रा भगवद्भक्तास्ते तु भागवता मताः।
सर्ववर्णेषु ते शूद्राः ये न भक्ता जनार्दने॥

पाद्मे—

न कर्म बन्धनं जन्म वैष्णवानां च विद्यते।
विष्णोरनुचरत्वं हि मोक्षमाहुर्मनीषिणः॥

जो श्रेष्ठ मनुष्य हरिभक्ति-रसास्वाद में मुदित हैं वे दुर्वृत्त हों अथवा शान्त हों उनको नित्य नमस्कार नमस्कार। समस्त धर्म्म से रहित इस भयङ्कर कलि युग के प्राप्त होने पर जो व्यक्ति बासुदेव परायण हैं वे संसार में कृतार्थ हैं इसमें कोई संशय नहीं है॥६३॥

पद्मपुराण में कहा है-अवैष्णव विप्र को चाण्डाल बराबर समझे। वैष्णव वर्णशून्य होकर भी तीन भुवन को पवित्र करता है। भगवद्भक्त शूद्र नहीं माने जाते हैं, वे सब भागवत हैं। जो जनार्दन के भक्त नहीं हैं वे ही सर्ववर्णों में शूद्र हैं। पद्मपुराण में कहा है-वैष्णवों का कर्म्म-बन्धन जन्म नहीं है, पण्डित-गण विष्णु के अनुचरत्व को ही मोक्ष कहते हैं। ब्रह्माण्डपुराण में कहा है-यदि समस्त कुलाचार को छोड दिया हो, महान् पातकवान

ब्रह्मांडे—

त्यक्तसर्वकुलाचारो महापातकवानपि ।
विष्णोर्भक्तं समाश्रित्य नरो नार्हति यातनाम् ॥

श्रीरुद्रवाक्यम्—"स्वधर्मनिष्ठः शत जन्मभिः पुनान् विरंचिता-मेति ततः परं हि माम्" । ब्रह्मणा सह मुक्तः स्यादित्यर्थः" ॥६४॥

अथ वैष्णवानां यमानधिकारता—

हस्तामलके प्रह्लादवाक्यं—

वको जलचरानभक्षन् मण्डुकादीन् च बर्जयेत् ।
तथा यमः सर्वहंता वर्जयेत्कृष्णसेवकान् ॥

विष्णुपुराणे—

यम-नियम-विधूत-कल्मषाणामनुदिनमच्युतासक्तमानसानाम् ।
अपगतमदमानमत्सराणां ब्रज भट ! दूरतरेण मानवानाम ॥

हो तो भी मनुष्य विष्णु-भक्ति का आश्रय कर यातना प्राप्त नहीं होता है । श्रीरुद्र जी का बचन है-यदि मनुष्य शत जन्म पर्य्यन्त स्वधर्म्म-निष्ठ हो तो वह ब्रह्मपदवी को प्राप्त करता है, उसके बाद मुक्तको प्राप्त होता है । ब्रह्माजी के साथ वह मुक्त होता है एसा अर्थ है ॥६४॥

अब वैष्णवों का यमाधिकार नहीं है उसका बिवेचन—हस्तामलक में प्रह्लाद जी ने कहा है-बगुला जलचरों का भक्षण करता है परन्तु मेंडकादिओं को छोड़ देता है, ठीक उसी प्रकार सर्व संहारक यम कृष्ण-सेवकों को परित्याग करता है । बिष्णुपुराण में कहा है-यमराज अपने दूत को आदेश कर रहा है कि-हे दूत! तुम उन मनुष्यों से दूर में रहिओ कि जिनके यम-नियमादि साधन से कलमष धौत हो गया है, जो निरन्तर अच्युत्त मानस हैं एवं जिनके मद-मान-मत्सर अपगत हो गये हैं, जिनके मन

बसति मनसि यस्य सोऽव्ययात्मा पुरुषपरस्य न तस्य दृष्टि-पाते ।
तव गतिरथबा ममास्ति चक्र-प्रतिहतवीर्यबलस्य सोऽन्यलोक्यः॥६५

स्कान्दे कार्तिके—

बैवस्वतसुतभयं नास्ति मरणजन्मनोः ।
यः कथां कुरुते विष्णोः शालग्रामशिलाग्रतः ॥

नारसिंहे—

अहममरगणार्च्चितेन धात्रा,
यम इति-लोकहिताहिते नियुक्तः ।
हरि-गुरु-बिमुखान् प्रशास्मि मर्त्यान्,
हरिचरणप्रणतान् नमस्करोमि ॥
न हि शश-कलुषच्छविः कदाचित्
तिमिरपराभवतामुपैति चन्द्रः ।
भगवति नृहरावनन्यचेता
भृशं मलिनोऽपि विराजते मनुष्यः ॥६६॥

में वह अव्ययात्म परम पुरुष निबास करते हैं वहाँ तुम्हारा गमन व मेरा गमन नहीं है ॥६५॥

स्कन्दपुराण के कार्त्तिकमाहात्म्य में—जो व्यक्ति शालिग्राम शिला के समक्ष विष्णु की कथा कहता है उसका यम-भय नहीं है। नृसिंहपुराण में—मैं देव-गण से अर्चित बिधाता के द्वारा "यम" इस नाम से नियुक्त हूँ । लोक हित के लिये मेरी स्थिति है। हरि-गुरु विमुख जनों को शासन तथा हरिचरण परायणव्यक्तियों कोनमस्कार करता हूँ । भगवान् नृसिंह देब में अनन्य चित्त वाला मनुष्य मलिन होने पर भी पवित्रतया विराजमान है । शश चिन्ह से कलुषित छवि वाला चन्द्र कभी अन्धकार के द्वारा पराभव नहीं होता है ॥६६॥

श्रीभागवते—

जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं
चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम् ।
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदाऽपि
तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णु-कृत्यान् ॥

पाद्मे देवदूतविष्णुदूतसंवादे यमः—

दुराचारो दुष्कुलोऽपि सदा पापरतोऽपि वा ।
भवद्भिः सर्वथा त्याज्यो विष्णुं चेद्भजते नरः ॥६७॥

स्कान्दे—

न ब्रह्मा शिवाग्निरुद्रा नाहं नान्ये दिवौकसः ।
शक्ता न निग्रहं कर्त्तुं वैष्णवानां महात्मनाम् ॥
वैष्णवाः विष्णुवत्पूज्या मम मान्या विशेषतः ।
येषां कृतेऽपमाने तु विनाशो जायते ध्रुवम् ॥

भागबत में कहा है-जिसकी जिह्वा ने भगवान के गुण-नाम का कीर्त्तन नही किया, जिसके चित्त ने उनके चरणारविन्द का स्मरण नहीं किया, जिसके मस्तक ने श्री कृष्ण के लिये एक बार भी नमन नहीं किया उन बिष्णु-क्रिया को न करने वाले असत् व्यक्तियों को ले आना। पद्मपुराण के देवदूत-बिष्णुदूत संवाद में यम ने कहा है—हे दूतगण ! दुराचारी हो, हीन जाति के हो, निरन्तर पाप-परायण हो यदि कोई मनुष्य बिष्णु का भजन करता है तो तुम लोग उसको छोड़ देना ॥६७॥

स्कन्दपुराण में कहा है-वैष्णब महात्माओं को निग्रह (शासन) करने में न ब्रह्मा जी समर्थ हैं, न शिवजी, न अग्नि, न रुद्रजी, न मैं, न कोई देवता समर्थ हैं । वैष्णव महापुरुष गण बिष्णु की भाँति पूज्य हैं, विशेष रूप में मेरे माननीय हैं, जिनके अप-

ब्रह्मलोके न मे वासो न मे वासो हरालये ।
नालये लोकपालानां वैष्णवानां पराभवे ।
न देवा न च गर्धवा न यक्षोरगराक्षसाः ।
त्रातुं समर्था ऋषयो वैष्णवानां पराभवे ॥६८॥

इति श्रीनारायणभट्टविरचितायां साधनदीपिकायां
तृतीयः प्रकाशः ॥

चतुर्थः प्रकाशः

श्रीकृष्णं प्रियलोकस्य सरूपं सख्यसंमतम् ।
श्रीरूपं ब्रजदेव्यास्य नत्वा ग्रन्थं समारभे ॥१॥

अथ पक्षपूजा-तत्र दशमीकृत्यम्—

प्रातः स्नानं कृत्वा संकल्पं कुर्यात् ।

मान से मनुष्य अबश्य विनाश हो जाता है। वैष्णबों के पराभव से मेरा निबास ब्रह्मलोक में नहीं है न शिब-लोक में न लोकपालों के आलय में। वैष्णबों के पराभब में न देबता, न गन्धर्व, न यक्ष, न राक्षस न ऋषीगण त्राण करने में समर्थ होते हैं ॥६८॥

श्रीकृष्ण, उनके सख्य सम्मत प्रियजन के स्वरूप, ब्रजदेवि के श्रीरूप इन तथ्यों को नमस्कार कर ग्रन्थारम्भ करते हैं ॥१॥

अब पक्षपूजा में दशमीकृत्य का वर्णन करते हैं-प्रातःस्नान पूर्वक संकल्प करे । संकल्पमन्त्र यह है-"दशमी दिवस से आरम्भ कर मैं तुम्हारा ब्रत करूँगा, हे देवदेवेश ! हे केशव ! इन

तथा मंत्र—

"दशमीदिनमारभ्य करिष्येऽहं व्रतं तव ।

त्रिदिनं देवदेवेश निर्विघ्नं कुरु केशव" इति ।

ततः सेवां कृत्वा पुनर्मध्याह्निकं कृत्वा महाप्रसादं सकृद्भुक्त्वा संध्यासमये वैष्णवानाहूय महोत्सवं कुर्यात् । तत्र महोत्सवे स्पर्शास्पर्शयोरपि न दोषः ।

तदुक्तम्—

विष्णवालयसमीपस्थान् विष्णुसेवार्थमागतान् ।

चांडालान् पतितान् वापि स्पृष्ट्वा न स्नानमाचरेत् ॥

विष्णुस्मृतौ—

उत्सवे वासुदेवस्य स्नायाद्योऽशुचिशंकया ।

तादृशं कश्मलं दृष्ट्वा सवासा जलमाविशेत् ॥२॥

अथ व्रतनित्यता-मात्स्ये—

दशम्यां नियताहारो संग-मैथुनवर्जितः ।

एकादश्यां न भुंजीत पक्षयोरुभयोरपि ॥

तीन दिनों का अर्थात् दशमी, एकादशी तथा द्वादशी के व्रत समाधान में कोई विघ्न न आवें"। तनदन्तर सेवा कर पुनः मध्याह्न-कृत्यादि कर एकबार महाप्रसाद ग्रहण करके उस दिन सन्ध्या समय में वैष्णवों को बुलावे एवं महोत्सव करे। महोत्सव में स्पर्श अस्पर्श का कोई दोष नहीं है । जैसा कि कहा है-देवमन्दिर के समीप विष्णु-सेवा के लिये आगत चाण्डाल, पतितों का स्पर्श कर स्नान नहीं करे। वासुदेव के उत्सवादि में जो व्यक्ति अपवित्र-भय से स्नानादि करता है वह स्वयं अपवित्र है उसका दर्शन कर उसी वस्त्र से जल में प्रवेश करना चाहिये ॥२॥

व्रत की नित्यता-मत्स्यपुराण में—दशमी के दिवस संयत

किं च-सभर्तृकानामपि नित्यतान्यथा प्रतिनिधि-विधानं न स्यात् तदुक्तं पैठीनसिना—

भार्या पत्युर्व्रतं कुर्याद्भार्यायाश्च पतिर्व्रतम् ।

असामर्थ्ये परं ताभ्यां व्रतभंगो न जायते ॥

पुत्रं वा विनयोपेतं भगिनीं भ्रातरं तथा ।

एषामभाव एवान्यं ब्राह्मणं वा नियोजयेत् ॥३॥

यत्तु मनुः—

"नास्ति स्त्रीणां पृथक् यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम्" ।

विष्णुश्च—

पत्यौ जीवति या नारी उपवासं व्रतं चरेत् ।

आयुः सा हरति भर्त्तुः नरकं चैव गच्छति ॥

तत्तु भर्तुराज्ञां विना कुर्वन्ति—इति प्रतीतिः ।

रूप से भोजन करे, मैथुनादि का त्याग कर दें, दोनों पक्ष की एकादशी में भोजन न करे। पति के साथ स्त्री का भी नित्य एकादशी करने का विधान है। वहाँ प्रतिनिधि की व्यवस्था भी है। पैण्डीनसि ने कहा है-भार्य्या पति के द्वारा एवं पति भार्य्या के द्वारा व्रत करे। यदि एक के असामर्थ्य में दूसरा प्रतिनिधि बन कर व्रत करता है तो उनमें व्रतभंग नहीं होता है। विनययुक्त पुत्र, वहीन, भ्राता इनसे व्रत करावे । यदि इनका अभाव है तो किसी ब्राह्मण को इस विषय में नियोजित करे ॥३॥

स्त्रियों का कोई पृथक् यज्ञ नहीं है, न व्रत है न उपवास है। विष्णु ने कहा-पति के जीवित रहते जो स्त्री उपवास-व्रतादि करती है वह पति के आयु का हरण कर लेती है एवंशेष में नरकगामिनी ही होती है। पति की आज्ञा के बिना यदि करती है यहाँ एसी प्रतीति हो रही है। मार्कण्डेय में कहा है-जो नारी

तथा मार्कण्डेये—

नारी या अननुज्ञाता भर्त्राऽपि त्रासते न बा।
निष्फलं तु भवेत्तस्य यत्करोति ब्रतादिकम् ॥

कि च-पत्यौ जीवतीति प्राज्ञवाक्यैः स्त्रीणां स्वातंत्र्यनिबारणे तात्पर्य्य मन्यथोपबासस्य सर्वथा लोपे मनोरुक्तिः न स्यात्तथा हि। "पुष्पालंकार-बस्त्राणि गंध-धूपानुलेपनम्। उपबासे न दुष्यन्ति दन्तधाबनमञ्जनम्" ॥ अन्यच्च यदि प्राप्तिरेव न स्यात्तर्हि निषेधो न स्यात्। तथा हि पुलस्त्यः-"एकादश्यां न भुंजीत नारी दृष्टे रजस्यपी" ति-शुचिना कर्म्म कर्त्तव्यमिति तु साक्षाद्बिधिनातिरिक्ते भविष्यतीति-अत एव व्यवहारकार्य्यादिधर्मे सर्वथाज्ञां गृहीत्वा कर्म कुर्यात् न तु निवृत्तिधर्मे॥४॥

पति की आज्ञा के बिना ब्रतादिक कुछ करना चाहती है वह ब्रतादिक उसका निष्फल हो जाता है। "पति के जीवित रहते" इन प्राज्ञ वाक्यों से स्त्रियों का स्वातन्त्र्य निवारण में तात्पर्य्य है नहीं तो "उपबास के सर्वथा लोप में" यह मनु का बचन नहीं प्रयोजित होता। मनुने कहा-पुष्प, अलङ्कार, बस्त्रों, गन्ध, धूप, अनुलेपन तथा दन्तधापन, अंजन ये सब उपबास में दूषित नहीं होते हैं। नहीं तो यदि प्राप्ति नहीं होती तो निषेध न होता। पुलस्त्य ने कहा-रजस्वला-नारी भी एकादशी के दिन भोजन न करे। पवित्र अवस्था में कर्म्म करना चाहिये यह साक्षात विधि-के अतिरिक्त में है। अतः व्यवहारिक कार्य्यादि धर्म्म में सर्व-प्रकार से आज्ञा लेकर कर्म्म करे परन्तु निवृत्तिधर्म्म में आज्ञा की कोई आवश्यकता नहीं है ॥४॥

नारदीये—

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्या-समानि च।
अन्नमाश्रित्य तिष्ठन्ति संप्राप्ते हरिवासरे ॥
प्रतिग्रासं स भुक्तेऽन्नं किल्बिषं श्वविड्भवम्।
एकादश्यां द्विजश्रेष्ठ यो भुंक्तेऽन्नं द्विजो मनाक् ॥

स्कान्दे—

मातृहा पितृहा चैव भ्रातृहा गुरुहा तथा।
एकादश्यां तु यो भुंक्ते पक्षयोरुभयोरपि ।५॥

न चेतद्बचनं यतिबानप्रस्थबिषयम्।

तथा कूर्म्मे—

एकादश्यां न भुंजीत पक्षयोरुभयोरपि।
बानप्रस्थो यतिश्चैव शुक्लामेव सदा गृही ॥

इति चेन्न बहुबाक्यबिरोधात् तथोक्तं—

नारदपुराण में कहा है-ब्रह्म-हत्या के समान जितने पाप सब हैं वे समस्त पाप हरिबासर के प्राप्त होने पर अन्न का आश्रय कर ठहरते हैं। हे द्विजश्रेष्ठ! जो एकादशी के दिन अन्न भोजन करता है वह प्रति-ग्रास में श्वान की बिष्ठा की भाँति उत्पन्न पाप राशि का भोजन करता है ॥५॥

स्कन्दपुराण में कहा है कि—जो व्यक्ति दोनों पक्ष की एकादशी में-भोजन करता है वह मातृघाती, पितृघाती, भ्रातृघाती, तथा गुरुघाती है। यति एवं बानप्रस्थी कोलेकर यहबचन है ऐसा नहीं है। कूर्मपुराण में कहा है-कि दोनों पक्ष की एकादशी में बानप्रस्थी एवं यति उपवास करे, एवं गृही केबल शुक्लपक्ष की एकादशी में उपवास करें। इस प्रकार कहोगे तो बहु वाक्य का बिरोध आ पड़ेगा। बिष्णुधर्मोत्तर में कहा है कि-मित्र के साथ,

विष्णुधर्मोत्तरे—

सपुत्रश्च सभार्यश्च स्वजनैर्भक्तिसंयुतः ।
एकादश्यामुपवसेत्पक्षयोरुभयोरपि ॥
स ब्रह्महा सुरापश्च कृतघ्नो गुरुतल्पगः ।
विवेचयति यो मोहादेकादश्यौ सितासिते ॥६॥

गारुडे—

शुक्ला वा यदि वा कृष्णा विशेषो नास्ति कश्चन ।
बिशेषं कुरुते यस्तु पितृहा संप्रकीर्त्तितः ।

सनत्कुमारे—

एकादश्योर्द्वयोर्यस्तु बिशेषं कुरुते नरः ।
तस्योद्धारं न पश्यामि यावदाहूतसंप्लवम् ॥७॥

ननु तर्हि कथं कौर्म्यवचनं संगच्छते—शुक्लामेव सदा गृहीति सत्यं—अवैष्णवविषयत्वेन ।

भार्या के साथ, अपने जनों के साथ भक्तिरत होकर उभय पक्ष की एकादशी में उपबास करे। जो व्यक्ति एकादशी के दिन मोह से भी शुक्ल कृष्ण का बिचार करता है वह ब्रह्मघाती, सुरापायी, कृतघ्न तथा गुरुतल्पगामी है ॥६॥

गरुड़पुराण में कहा है कि-एकादशी-विधि में शुक्ला व कृष्णा का कोई विशेष भेद नहीं है । जो विशेष (भेद) करता है वह पितृघाती समझा जाता है। सनत्कुमारतन्त्र में कहा है-दोनों एकादशी के जो विशेष (भेद) करता है उसका उद्धार महाप्रलय तक नहीं देखता हूँ ॥७॥

अच्छा ? तब कौर्म्यवचन का संगत किसप्रकार हो सकता है? तो कहते हैं—"गृही केवल शुक्लपक्ष की एकादशी का ब्रत करे" यह तुम्हारी वितण्डा सत्य है परन्तु वह अवैष्णवपरक है। तत्व-

तथोक्तं तत्वसागरे—

यथा शुक्ला तथा कृष्णा यथा कृष्णा तथेतरा।
तुल्ये ते मनुते यस्तु स वै वैष्णव उच्यते ॥

बराहपुराणे—

"परचक्रागमे रोगे हर्षे वा समुपस्थिते" ।
"परचक्रागमे रोगे न त्याज्यं द्वादशीब्रतम्"॥
तथान्यदपि-अवैष्णवस्य तु ॥८॥

कात्यायनिस्मृतौ—

संक्रान्तौ रविवारे वा यदा चैकादशी भवेत् ।
उपोष्या सा महापुण्या सर्वपापहरा तिथिः ॥

नारदः—

भानुवारसमोपेता तथा संक्रान्तिसंयुता ।
एकादशी सदोपोष्या पुत्रपौत्रबिवर्द्धिनी ॥९॥

किं च-"शयनी-बोधनी-मध्ये या कृष्णैकादशी भवेत्। सैवो-

सागर में कहा है-जैसी शुक्ला है वैसी कृष्णा है एवं जैसी कृष्णा है वैसी शुक्ला है । इस प्रकार तुलना में जो समान भाव रखता है वह बैष्णब कहा जाता है। वाराहपुराण में कहा है-दूसरे के चक्र में रहने पर, व हर्ष के समुपस्थित में द्वादशी ब्रत का त्याग न करे ॥८॥

कात्यायनिस्मृति में-संक्रान्ति में, रविवार में जब एकादशी उपस्थित होती है तो उसमें उपवास करे, वह समस्त पाप का हरण करने बाली तिथी है। नारद जी ने कहा है-रविवार एवं सक्रान्ति से संयुक्त एकादशी सर्वदा उपोष्या है जो कि पुत्र-पौत्र को बढ़ाने बाली है ॥९॥

और भी-"शयनी एवं बोधनी में जो कृष्णा एकादशी आती

पोष्या गृहस्थेन नान्या कृष्णा कदाचने"ति "संक्रान्ताद्युपबासेन पारणेन युधिष्ठिर । एकादश्यां च कृष्णायां ज्येष्ठः पुत्रो बिनश्यती" ति च वचनमेव प्राप्तिमानयन्यप्राप्ते निषेधाभावात् । कामोद्देशेन कृष्णैकादशी न कर्त्तव्या-यद्वा वैष्णवावैष्णवाभ्यां व्यवस्था भवतु यथान्नभक्षणं तु नायति ।

तदुक्तं वायुपुराणे—

उपवासनिषेधे तु भक्ष्यं किंचित्प्रकल्पयेत् ।
न दुष्यत्युपवासेन उपवासफलं लभेदिति ॥

भक्ष्यकल्पनापि तत्रैव शक्ताशक्तबिषयत्वेन-"नक्तं हविष्यान्न-

है गृहस्थ उसका उपबास करे, शयनी-बोधनी के अतिरिक्त अन्य कृष्णा एकाकशो का उपवास कभी न करे । हे युधिष्ठिर! संक्रान्ति युक्त कृष्णा एकादशी में उपबास करने पर ज्येष्ठ पुत्र विनाश होता है" यह सब बचन प्राप्ति को लेकर है, अप्राप्ति में कोई निषेध नही है, कामना-उद्देश में कृष्णा एकादशी नहीं करनी है, किम्बा बैष्णव-अवैष्णव विषय को लेकर यह व्यबस्था कही गई है। व्यवस्था यह है कि-वैष्णव दोनों पक्ष में ब्रत करे । कृष्ण-पक्ष में जो निषेध है वह अवैष्णव परक है । वायुपुराण में कहा है-जहाँ उपबास का निषेध है वहाँ किञ्चित् भक्ष्य-ग्रहण को-विधि है। उससे उपबास दूषित नहीं होता है अर्थात् उपवास फल मिलता है । परन्तु यह भक्ष्य कल्पना-अशक्त पक्ष मे है जानना, जैसा कि कहा है-अशक्तजन रात्रि में हबिष्यान्न, अन्न, पिठा, फल, तिल, क्षीर, जल, घृत, पञ्चगव्य का तथा वायु का ग्रहण कर सकता है। यदि सर्वदा ब्रत की कर्त्तव्यता न होती तो "बायु-भक्षण करे" इसप्रकार आग्रह न किया जात। इनमें पूर्वपूर्व से उत्तर उत्तर का प्रशस्त है अर्थात् हविष्यान्न से अन्न, अन्न से ओदन इस प्रकार । अत्य-

मन्नोदनं वा फलं तिलं क्षीरमथाम्बु चाज्यम् । यत्पंचगव्यं यदि वापि वायुः प्रसस्तमत्रोत्तरमुत्तरं चे" त्यादिना । यदि सर्वथा व्रतं कर्त्तव्यमेव न स्यात्तर्हि वायु-भक्षणपर्यन्तमाग्रहो न स्यात् । तथा चात्यन्तमशक्तं हविष्यान्नं ततोऽपि तारतम्येन ज्ञेयम् । तथा शिष्टाचारोऽपि दृश्यते शुक्लायां जलमपि न गृह्णंति कृष्णायां दुग्धादिकमिति तु स्मार्तरीत्या वैष्णवरीत्या तु न ॥१०॥

बिष्णुरहस्ये—

परमापदमापन्ने हर्षे वा समुपस्थिते ।
सूतके मृतके चैव न त्याज्यं द्वादशीव्रतम् ॥

स्कान्दे—

दशमीशेषसंयुक्तं दिनं वैष्णववल्लभम् ।
नोपासते महीपाल ते वै भागवता नराः ॥११॥

अथ श्राद्धदिनेऽपि न त्याज्या-ब्रह्मवैवर्त्ते--

ये कुर्वन्ति महीपाल श्राद्धं त्वेकादशीदिने ।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दाता भोक्ता च प्रेरकः ॥

न्त अशक्त पक्ष में हविष्यान्न, उससे कम अशक्त पक्ष में अन्न, इस प्रकार तारतम्य से जानना । और ऐसा शिष्टाचार देखा जाता है कि-कोई कोई शुक्ला एकादशी में जल तक ग्रहण नहीं करते तथा कृष्णा में दुग्धादि ग्रहण करते हैं। यह सब स्मार्त्त रीति से है परन्तु वैष्णबरीति से नहीं ॥१०॥

बिष्णुरहस्य में कहा है हे मुने ! अत्यन्त आपद के उपस्थित होने पर किम्बा परम-हर्ष की उपस्थिति में, सूतकादि में भी द्वादशी का त्याग न करे। स्कन्दपुराण में कहा है-दशमी-शेष से संयुक्त एकादशी वैष्णव के बल्लभ है, हे राजन् ! उस दिन जो उपबास न करें वे सब भागवत हैं ॥११॥

तहि श्राद्धलोपो नेत्याह--

एकादश्यां यदा राम श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत्।
तद्दिनं तु परित्यज्य द्वादश्यां श्राद्धमाचरेत् ॥१२॥

पाद्मे उत्तरखंडे—

एकादश्यां तु प्राप्तायां मातृपित्रोर्मृतेऽहनि।
द्वादश्यां तत्प्रदातव्यं नोपवासदिने क्वचित् ॥
गर्हितान्नं न चाश्नन्ति पितरश्च दिवौकसः ॥१३॥

स्कान्दे—

एकादशी यदा नित्या श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत्।
उपवासं तदा कुर्यात् द्वादश्यां श्राद्धमाचरेत्।

यत्राघ्रातान्नपूर्वं श्राद्धं तत्त्ववैष्णवपरिमिति ॥

अथ श्राद्धदिबस में भी एकादशी का त्याग न करे, ब्रह्म-वैवर्त्त में कहा है-हे राजन! एकादशी के दिन जो श्राद्ध करते हैं वे दाता, भोक्ता एवं प्रेरक तीनों नरक में जाते हैं। पद्मपुराण के पुष्करखण्ड में कहा है-हे राम! यदि एकादशी के दिन नैमित्तिक श्राद्ध उपस्थित होता है तो उस दिन को बाद देकर द्वादशी में श्राद्ध करे ॥१२॥

पद्मपुराण के उत्तरखण्ड में-यदि एकादशी में माता-पिता का मृत्यु दिवस उपस्थित होता है तो द्वादशी के दिन श्राद्ध प्रदान करे परन्तु उपवास दिन में नहीं। पितृगण, देवतागण उस गर्हित अन्न का भोजन नहीं करते हैं ॥१३॥

स्कन्दपुराण में कहा है-यदि एकादशी नित्य आ पड़ती है, तथा उसमें नैमित्तिक श्राद्ध आ जाता है तो एकादशी में उपबास कर द्वादशी में श्राद्ध करे। जहाँ अन्नादि वस्तु का आघ्राण मात्र से श्राद्ध करना कहा गया है वह अवैष्णव परक है जानना।

तथोक्तं वाराहे-

उपवासे यदा नित्यं श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत्।
उपवासं तदा कुर्यादाघ्राय-पितृसेवितम् ॥
एकादश्यां यदा राम! पितुः सांवत्सरदिनम्।
ऋतुकालो बरस्त्रीणां कथं धर्मः प्रबर्त्तते ॥
श्राद्धं कुर्यात् व्रतं कुर्यात पिंडमाघ्राय निःक्षिपेत्।
अर्द्धरात्रे ऋतुं दद्यात् तेषु धर्मः प्रबर्त्तते ॥

पाद्मे पुष्करखंडे—

एकादश्यां यदा राम श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत्।
तद्दिनं तु परित्यज्य द्वादश्यां श्राद्धमाचरेत् ॥१४॥

अथाधिकारी तत्र नारदः—

अष्टाब्दादधिको मर्त्यो ह्यपूर्णाशीतिवत्सरः।
भुंक्ते यो मानवो मोहादेकादश्यां स पापकृदिति ॥१५॥

वराहपुराण में कहा है-उपवास के दिन यदि नैमित्तिक श्राद्ध आ जावे तो पितरगण के समर्पित वस्तु का आघ्राण कर उपबास करें। हे राम! यदि एकादशी के दिन पिता के वात्सरिक दिन आ पड़ता है तथा श्रेष्ठ स्त्रियों का ऋतु समय आ जाता है-तो उसका पालन किस प्रकार हो सकता है तो कहते हैं पिण्ड का आघ्राण कर फेंक दे एवं श्राद्ध व ब्रत करे। अर्द्ध रात्र में ऋत का दान करे। एसा करने से धर्म्म होता है। पद्मपुराण के पुष्कर-खण्ड में कहा-हे राम! याद एकादशी के दिन नैमित्तिक श्राद्ध आ जाता है तो उस दिन का त्याग कर द्वादशी में श्राद्ध करे ॥१४॥

अधिकारी-वहाँ नारदजी ने कहा-आठ बर्ष से लेकर अस्सी वर्ष पर्य्यन्त जो मनुष्य मोह से भी एकादशी के दिन भोजन

अथ व्रतघ्नानि—महाभारते उद्यमपर्व णि—

अष्टौ तानि व्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः ।
हवि-ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम् ॥१६॥

अथोपाष्या तिथि-तत्र शुद्धा भविष्ये—

आदित्योदयवेलायां प्राक् मुहूर्त्त द्वयान्बिता ।
एकादशी तु संपूर्णा बिद्धान्या परिकीर्त्तिता ॥

गारुडे—

उदयात्प्राक् यदा बिप्र मुहूर्त्तद्वयसंयुता ।
संपूर्णैकादशी नामा तत्रैबोपवसेद्गृही ॥
वेधशुन्यैकादशी बैष्णवेन ग्राह्या ।

भविष्ये—

अरुणोदयकाले तु दशमी यदि दृश्यते ।
सा बिद्धैकादशी तत्र पापमूलमुपोषणम् ॥

करता है वह पाप करने वाला है ॥१५॥

महाभारत के उद्यपर्व्व में व्रत को स्थिर करने वालाआठबस्तू बतलाया है-जल, मूल, फल, दुग्ध, हवि, ब्राह्मण, गुरुबचन तथा औषध ॥१६॥

अनन्तर उपोष्या तिथी का विवेचन—पहले शुद्धा का विचार। भविष्यपुराण में-सूर्य्योदय के पहले मुहूर्त्त दोनों से संयुक्त एकादशी सम्पूर्णा है अन्य विद्धा है। गरुडपुराण में कहा-हे विप्र ! सूर्य्योदय के पहले जो मुहूर्त्त दोनों हैं उसमें एकादशी का संचार सम्पूर्णा है, उस दिन गृही उपबास करे। वेधरहित एकादशी वैष्णव के द्वारा ग्राह्य है। भविष्य में कहा-यदि अरुणोदय के समय दशमी दिख पड़ती है तो वह बिद्धा एकादशी है। उस दिन उपवास पाप-मूलक है। यदि अरुणोदय केसमय दशमी-गन्ध है तो हे राजन् ! वह दूषित है, उसका बर्ज्ज न करे। गोभिल

अरुणोदयवेलायां दशागंधो भवेद्यदि ।
दुष्टं तत्र प्रयत्नेन बर्जनीयं नराधिप ! ॥

गोभिलोक्तौ—

अरुणोदयवेलायां दशमी यदि संगता ।
संयुक्तैकादशी तां तु मोहिन्यै दत्तवान् प्रभुः ॥

गरुडपुराणे—

दशमीशेषसंयुक्तो यदि स्यादरुणोदयः ।
नैवोपोष्या वैष्णवेन तद्दिनैकादशीव्रतमिति ॥

स्कान्दे-स्कन्दनारदाभ्यामुक्ते—

उदयात्प्राक्चतस्रस्तु नाडिका अरुणोदयेति ।

नारदीये—

लबवेधेऽपि विप्रेन्द्र दशम्येकादशीं त्यजेत् ।
सुराया विन्दुना स्पृष्टं गङ्गाम्भ इव निर्मलम् ॥१७॥

"ननु विद्धाप्यविद्धा विज्ञेया परतो द्वादशी न चेदि"त्यादि वाक्यानां का गतिरिति चेत् न अबैष्णवविषयत्वात् ।

की उक्ति में--अरुणोदय के समय यदि दशमी संगत होतो है तो वह संयुक्त एकादशी है, प्रभुने मोहिनो के लिये उसका प्रदान किया है। गरुड़पुराण में--यदि अरुणोदय दशमी से संयुक्त है तो वैष्णव उस दिन एकादशी का उपबास न करे। स्कन्दपुराण में स्कन्दनारदजी के वचन में-उदय के पहले चार घड़ी समय अरुणोदय काल है। नारदीय में कहा-हे विप्रश्रेष्ठ ! यदि दशमी लब मात्र से वेध प्राप्त है तो एकादशी का त्याग करे। जिस प्रकार पवित्र गंगाजल सुराविन्दु से स्पृष्ठ (स्पर्श) होकर दूषित हो जाताहै ठीक उसी प्रकार है ॥१७॥

अच्छा ? "यदि पश्चात् द्वादशी न हो तो विद्धा भी अविद्धा

तथोक्तं गारुडे—
दशमीशेषसंयुक्तो यदि स्यादरुणोदयः ।
नैवोपोष्यं वैष्णवेन तद्दिनैकादशी व्रतम् ॥
वैष्णवस्तु वैखानस-पञ्चरात्रवैष्णवागमदीक्षां प्राप्तो वैष्णवः
यथा स्कान्दे—
परमापदमापन्ने हर्षे वा समुपस्थिते ।
नैकादशीं त्यजेद्यस्तु तस्य दीक्षा च वैष्णवी ॥
पाद्मे—
सदीक्षाविधिसन्यासं सयन्त्रं द्वादशाक्षरम् ।
अष्टाक्षरमथान्यं वा ये मन्त्रं समुपासते ।
ज्ञेयास्ते वैष्णवा लोके विष्ण्वर्च्चनरतास्तथा ।
वेधस्तु सर्व्वात्मना वैष्णवेन त्याज्यः ॥१८॥

होती है" इत्यादि वाक्यों की क्या गति होगी एसा कहोगे तो सुनो एसा नहीं है, वह तो अवैष्णव विषयक है ! गरुड़पुराण में कहा-"यदि दशमी शेष संयुक्त अरुणोदय है तो वैष्णव उपवास न करे क्योंकि उस दिन एकादशीव्रत नहीं माना जावेगा "। पंचरात्र-वैष्णवागम रीति से दीक्षा-प्राप्त वैष्णव माना जाता है। स्कन्दपुराण में कहा है- परम आपद उपस्थिति में अथवा परम हर्ष की उपस्थिति में जो एकादशी का नहीं त्यागकरताहैउस की वैष्णवी-दीक्षा मानी जाती है। पद्मपुराण में कहा- जो दीक्षित हो विधि पूर्वक, न्यास के साथ, यन्त्र के साथ, द्वादशाक्षर अथवा अष्टाक्षर मंत्र की उपासना करते हैं वे संसार में वैष्णव हैं, विष्णु-पूजा में निरत हैं अतः वैष्णव के द्वारा सर्व्वप्रकार से वेध का त्याग कर देना चाहिये ॥१८॥

महावेधोऽतिवेधो वेधस्त्रिधा मता—
अर्कोदये दशागंधो महावेधः प्रकीर्त्तितः ।
उदयात्प्राक्मुहूर्त्ते तु दशागंधोऽतिवेधगः ॥
मुहूर्त्तद्वितये श्लेषा दशायां वेध इत्यगः ।
दशागन्धे महावेध, उदयात्प्राक् मुहूर्त्तमध्येऽतिवेधः, उदयाग्रात्तुर्ये दशापूर्ण संवध वेध एतत्त्रितयवेधहीना शुद्धेत्यर्थः। शुद्धापि द्विविधा आधिक्येन युक्ता तद्रहिता च, आधिक्यं च त्रिविधं एकादश्याधिक्यं द्वादश्याधिक्यं उभयाधिक्यं चेति त्रिष्वपि भेदेषु शुद्धामप्येकादशीं परित्यज्य द्वादशीमुपवसेत् ॥१९
एकादश्याधिक्येन नारदः—
"संपूर्णैकादशी यत्र द्वादशी वृद्धिगामिनी ।
द्वादश्यां लङ्घनं कार्यं त्रयोदश्यां तु पारणमि" ति ।

वेध तीन प्रकार का है महावेध, अतिवेध तथा वेध से। सूर्योदय के समय यदि दशमी-गन्ध रहता है तो महावेध, उदय से पहले मुहूर्त्त में दशमी-गन्ध से अतिवेध, दो मुहूर्त्त में दशमी के संश्लेष होने पर वेध माना जाता है। दशमी-गन्ध सम्पर्क से महावेध, उदय के पहले मुहूर्त्त में दशमी गन्ध-से अतिवेध, उदय के पहले दशमी का पूर्ण संवन्ध वेध है। इन तीन प्रकार के वेध से रहित एकादशी शुद्धा मानी जाती है। शुद्धा भी दो प्रकार है, अधिक से युक्त उससे रहित। आधिक्य भी तीन प्रकार है, एकादशी के आधिक्य, द्वादशी के आधिक्य तथा एकादशी-द्वादशी दोनों के आधिक्य। तीनों भेद की उपस्थिति में शुद्धा एकादशी का त्यागकर द्वादशी में उपवास करे ॥१९॥
एकादशीके आधिक्य में नारदजी कहते हैं-जहाँ एकादशी सम्पूर्ण है

स्मृत्यन्तरे—

एकादशी यदा पूर्णा परतः पुनरेव सा।
पुण्यं क्रतुशतस्योक्तं त्रयोदश्यां तु पारणम्॥

नारदः—

संपूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा।
तत्रोपोष्या द्वितीयांतु परतो द्वादशो यदा॥

द्वादश्याधिक्ये व्यासः--

एकादशी यदा लुप्ता परतो द्वादशी भवेत्।
उपोष्या द्वादशी तत्र यदीच्छेत्परमां गतिम्॥२०॥

ब्रह्मपुराणे--

एक लिप्ता समायुक्ता यदि वृद्धिपरा तिथिः।
अथवैकादशी नास्ति दशम्यां चाथ संगता॥

अथच द्वादशी वृद्धिप्राप्त है वहाँ द्वादशी में लङ्घन कर त्रयोदशी में पारण करना चाहिये। अन्यस्मृति में कहा है-जिस दिन एकादशी पूर्ण है, दूसरे दिन द्वादशी है वह शत यज्ञ के पुन्य को देने वाली है। त्रयोदशी के दिन पारण विधि है। नारद जी कहते हैं-सम्पूर्णा एकादशी पुण्यरूपा है, त्रयोदशी में पारण है। द्वादशी के आधिक्य में व्यासजी कहते हैं-जिस दिन एकादशी लुप्त है, पश्चात द्वादशी रहती है तो परम गति की इच्छा करने वाले द्वादशी में उपबास करे॥२०॥

ब्रह्मपुराण में यथा-तिथी वृद्धि परा है, एकादशी से लिप्त है. अथवा एकादशी नहीं है अथच दशमी में संगता है, यदि वा दूसरे दिन कला काष्ठा रूप में द्वादशी है तो पहले पारण करने से बारह द्वादशी नष्ट होती हैं। इसका अर्थ-तिथी के बृद्धि परत्व में पर दिवस में एकादशी एकलिप्त रूप में है अथवा नहीं है, उभय

द्वादशी तु कलाकाष्ठा यदि स्यादपरेऽहनि।
द्वादशं द्वादशीं हन्ति पूर्वरूयां पारणकृतम्॥

अस्यार्थः--

तिथिबृद्धिपरत्वे एकादशी परदिने एकलिप्ता वास्ति अथवा परदिने नास्ति तत्रोभयत्रापि शुद्धद्वादशीमेबोपवासोंदत्यर्थः॥२१॥

उभयाधिक्ये भृगुः--

"संपूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा।
तत्रोपोष्या द्वितीया तु परतो द्वादशी यदेति"॥

नारदः--

संपूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा।
सर्वैरेवोत्तरा कार्या परतो द्वादशी यदा॥

अर्द्धरात्रवेधस्तु-अरुणोदयवेधे विप्रतिपन्नं प्रति कैमुत्य-न्यायेनोक्ता-अरुणोदये का शंका अर्द्धरात्रेऽपि माननीय इति प्रौढ्या।

ब्रह्मवैवर्त्ते--

अर्द्धरात्रे तु केषाञ्चिद्दशम्या वेध इष्यते।
अरुणोदयवेलायां नावकाशो विचारणे॥

स्थल में शुद्ध-द्वादशी में उपबास करें॥२१॥

दोनों के आधिक्य में भृगु कहते हैं--जहाँ सम्पूर्णरूप में एकादशी है, पुनः प्रभातकाल में भी वह ठहरती है, पर दिन भी द्वादशी रहती है तो दूसरे दिन उपबास करें। नारदजी कहते हैं—जिस दिन एकादशी संपूर्ण रुप में है, पुनः प्रभात में भी उसकी स्थिति है, पर दिबस में भी द्वादशी है, तो दूसरे दिन में सब लोगों को व्रत करना चाहिये। अर्द्धरात्र-वेध अरुणोदय-वेध में विप्रतिपन्न है-ब्रह्मवैवर्त्त में कहा है--किसी आचार्यों

कपालवेध इत्याहुराचार्या ये हरिप्रियाः ।
न तन्मम मतं यस्मात्त्रियामा रात्रिरिष्यते ॥
यद्वा पक्षवर्द्धनीविषयत्वेनार्द्ध रात्रवेधनिषेधः ॥
तथा पाद्मे--
अर्द्ध रात्रं स्पृशेत्पूर्णा पक्षवृद्धिर्यदाव्रतः ।
कपालवेधिनी सा च शुद्धां भद्रामुपोषयेत् ॥
इति स्पष्टमभिधानात् संदेहेऽयुत्तरैव ॥२२॥
नारदीये--
वहुवाक्यबिरोधेन संदेहो जायते यदा ।
उपोष्या द्वादशी तत्र त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥
मार्कंडेये भगवद्वाक्यम्--
विवादेषु च सर्वेषु द्वादश्यां समुपोषणम ।

के मत में अर्द्धरात्र में वेध माना जाता है, परन्तु बिचार करने पर अरुणोदय वेला में उसका अबकाश नहीं रहता है, हरिप्रिय-आचार्य्य उसे कपालवेध कहते हैं, परन्तु वह हमारा मत नहीं है, क्योंकि तीन प्रहर की रात्रि मानी जाती है। अथवा पक्षवर्द्धनी विषय के कारण अर्द्धरात्रवेध निषेध होता है। पद्मपुराण में कहा है-जिस समय पूर्णा तिथी अर्द्धरात्र का स्पर्श करती है आगे पक्ष की पौर्णमासी व अमावास्या के साठ दण्ड प्राप्त होने से वृद्धि होती है वह कपाल-बेधिनी मानी जाती है। अतः उसे छोड़ भद्रा में शुद्ध द्वादशी में उपवास करे। यहाँ स्पष्ट है। सन्देह में उत्तर दिबस माना जाता है ॥२२॥

नारदपुराण में--नाना बाक्यों के बिरोध होने पर जहाँ सन्देह उत्पन्न होता है तब द्वादशी में उपवास करके त्रयोदशी में पारण करे। मार्कण्डेयपुराण में भगवान ने कहा है--नाना वि-

स्कान्दे--
यो दद्याज्जागरे विष्णोर्हविष्यान्नसमुद्भवम
नैवेद्यं लभते पुण्यं शालिशैलसमुद्भवम ॥
पक्वान्नानि च यो दद्यात्फलानि विविधानि च ।
जागरे पद्मनाभस्य लभते गोऽयुतं फलम् ॥२३॥
अथ द्वादशीकृत्यम—
तत्राल्पापि द्वादशी नोल्लंघनीया ।
तदुक्तं—
महाहानिकरी ह्येषा द्वादशी लंघिता नरैः ।
करोति धर्महरणमश्नातेव सरस्वतीति ॥
देवलोऽपि—
संकटे विषमे प्राप्त द्वादश्यां पारणं कथम ।
अद्भिस्तु पारणं कुर्यात पुनर्भुक्तं न दोषकृत ॥

वाद में अर्थात् सब विषय के विवाद में द्वादशी में उपवास की विधि है। स्कन्दपुराण में कहा है-जो व्यक्ति विष्णु के जागरण में हविष्यान्न--समुद्भव नैवेद्य प्रदान करता है वह शालिशैल समुद्भव अर्थात् शत शालि तण्डुल पर्वत समुद्भव पुण्य लाभ करता है। जो व्यक्ति पद्मनाभ के जागरण में पक्वान्न तथा बिविध फल प्रदान करता है तो वह अयुत गोदान फल प्राप्त करता है ॥२३॥

अब द्वादशीकृत्य का विचार--अल्प-मात्रा से द्वादशी हो तो भी उसका उल्लंघन न करे, जैसे कि कहा है यह द्वादशी मनुष्यों से लङ्घित हो कर महान् हानि-प्रद होती है तथा अस्नातसरस्वती की भाँति धर्म्म-हरण करती है। देवल कहते हैं-विषम संकट के उपस्थित में द्वादशी पारण किस प्रकार हो सकता है ? तो कहते हैं सुनो जल से पारण कर ले, पश्चात् भोजन में दोष

उपवासस्वरूपं देबलः—

सायमाद्यन्तयोरह्नो सायं प्रातश्च मध्यमे ।
उपवासफलं प्रेप्सुर्जह्यात् भुक्तचतुष्टयमिति ॥

केचित्फलं प्रेप्सुरित्यनेन काम्यविषयं स्वपारणं तु ॥२४॥

विष्णुधर्मोत्तरे—

द्वादश्याः प्रथमः पादो हरिवासरसंज्ञकः ।
तमतिक्रम्य कुर्वीत पारणं विष्णुतत्परः ॥

इति तत्र द्वादश्यां प्रातस्नानं कृत्वा श्रीकृष्णं पूजयेत् महापूजां च कुर्यात् तत्र दिवास्नानं न दद्यात् ।

तथोक्तं पाद्मे-व्रतखंडे—

जन्मप्रभृति यत्किंचित् सुकृतं समुपार्जितम् ।
नश्यति द्वादशीदिने हरेर्निर्माल्यलंघनात् ॥२५॥

नहीं है । उपवास स्वरूप को देवल कहते हैं—उपबास के फलेच्छु पूर्वदिन तथा परदिन का सायंभोजन एवं मध्यदिन का रात्रि भोजन तथा प्रातः भोजन यह चार त्याग देवे । कोई कोई "फलं प्रेप्सुः" इस बचन से पारण काम्य विषय को लेकर है इस प्रकार कहना चाहते हैं ॥२४॥

विष्णुधर्मोत्तर में कहा है—द्वादशी के पहिला पाद हरिवासर माना जाता है, उसका अतिक्रमण कर विष्णुपरायण-जन पारण करे । द्वादशी के दिन प्रातःकाल में स्नान कर श्रीकृष्ण की पूजा करे । उस दिन महापूजा की विधि है, उस दिन भगवान को दिवा-स्नान न दें । पद्मपुराण के व्रतखण्ड में कहा है-मनुष्यों ने जन्म से लेकर जो कुछ सुकृत किया है वे समस्त द्वादशी दिन में भगवान् के निर्म्माल्य का लंघन से नाश हो जाते हैं ॥२५॥

तथा त्रैलोक्यसंमोहनतंत्रे—

"स्नानं न हरये दद्याद् द्वादश्यां वैष्णवो दिबा ।
पद्मपूजाफलं सर्व्वं वास्कलायोपगच्छति" ॥

दिवाग्रहणाद्रात्रौ कुर्वन्ति साम्प्रदायिकाः । केचित्तु जागरणविषयत्वेन कल्पयन्ति तन्न जानीमः किमनुरोधादिति ।

किं च स्कान्दे—

क्षौद्रं मांसं सुरां तैलं व्यायामं क्रोधमैथुने ।
परान्नं कांस्यताम्बूले लोभं निर्माल्यलंघनम् ।
द्वादश्यां द्वादशैतानि वैष्णवः परिवर्जयेत् ॥२६॥

ब्राह्मणस्यावश्यकता—

पाद्मे—

नृत्यमानस्य बिप्रस्य उपहासं करोति यः ।
जागरे याति निरयं याबदिन्द्राश्चतुर्दश ॥

त्रैलोक्यसम्मोहन तन्त्र में—वैष्णव द्वादशी के दिवस हरि के लिये दिवा स्नान न दें, देवें तो उस के उस पद्म की समस्त-पूजा वास्कलदेबता के लिये चली जाती है । कोई कोई साम्प्रदायिक वैष्णव दिबा ग्रहण से रात्रि में स्नान कराते हैं, कोई कोई जागरण विषयत्व से करते हैं, किस अनुरोध से वे करते हम नहीं जानते हैं । वैष्णव द्वादशी के दिन मधु, मांस, मद्य, तैल, व्यायाम, क्रोध, मैथुन, परान्न, ताम्बूल, लोभ तथा निर्म्माल्य इस बारह वस्तु का त्याग करे ॥२६॥

पद्मपुराण में कहा है—हरिवासर के दिन नृत्यपरायण विप्र का जो उपहास करता है वह जब तक चौदह इन्द्र रहेंगे तब तक अर्थात् चौदह मन्वन्तर पर्य्यन्त नरक में गिरता है । श्रीहरि के जागरण में जो गान-नृत्य का निवारण करता है वह साठ हजार

निवारयति यो गीतं नृत्यं जागरणे हरेः ।
षष्टियुग-सहस्राणि पच्यते रौरवादिषु ॥२७॥

स्कान्दे—
प्रभाते कौशिकीं यस्तु प्रगायेज्जागरे हरे : ।
स समुद्धरते सर्वान् श्वपचान् ब्राह्मणो यथा ॥२८॥

अथ महाद्वादश्यष्टौ—

अथ नित्यता पाद्मे—
न करिष्यन्ति ये लोके द्वादश्यष्टौ ममाज्ञया ।
तेषां यमपुरे वासो यावदाहूतसंप्लवम् ॥

ब्रह्मवैवर्त्ते—
उन्मीलिनी वंजुली च त्रिस्पृशा पक्षवर्द्धनी ।
जया च विजया चैव जयन्ती पापनाशिनी ॥
द्वादश्यष्टौ महापुण्याः सर्वपापहरा द्विज ! ।
इति शौनकं प्रति सूतवचनम् ॥२९॥

वर्ष तक रौरव नरक में गिरता है ॥२७॥

जो श्रीहरि के जागरण में शृंगार रस-मय गीति का गान करता है वह ब्राह्मण की भाँति चाण्डालों को भी उद्धार करता है ॥२८॥

अब अष्ट महाद्वादशी का विचार-पद्मपुराण में उनकी नित्यता बारे में कहा है- जो व्यक्ति इस लोक में मेरी आज्ञा रूप अष्ट-द्वादशी नहीं करते हैं, उनका महाप्रलय पर्य्यन्त यमालय में निवास होता है । ब्रह्मवैवर्त्त में-हे द्विज ! उन्मीलिनी, त्रिस्पर्शा, पक्षवर्द्धिनी, जया, बिजया, जयन्ती तथा पापनाशिनी ये महापुण्य वाली, समस्त पाप-हारिणी आठ महाद्वादशी हैं। यह शौनक के प्रति सूतजी का बचन है ॥२९॥

अथोन्मीलिनीलक्षणं—

पाद्मे—
एकादशी तु संपूर्णा वर्द्धते पुनरेव सा ।
द्वादशी न च वर्द्धेत कथितोन्मीलिनीति सा ॥

दशमीवेधराहित्येनैकादशी यदा बर्द्धते न द्वादशी उन्मीलिनी सा शुद्धामप्येकाकर्शीं परित्यज्य द्वादशीमुपवसेत् । अस्मिन्नर्थे माधवीकारेणोक्तम्—

एकादश्या वाक्ये-बिष्णुरहस्ये—
एकादशी कला प्राप्ता न द्वादश्युपोषिता ।
तुल्यं क्रतुशतेन स्यात् त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥

स्मृत्यन्तरे—
एकादशी यदा पूर्णा परतः पुनरेव सा ।
पुण्यं क्रतु-शतस्योक्तं त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥

उन्मीलिनी का लक्षण—पद्मपुराण में कहा है-एकादशी संपूर्णा हो, वह पुनः द्वादशी के दिन बढ़ती रहे, परन्तु द्वादशी नहीं बढ़े तो वह उन्मीलिनी कही जाती है । दशमी-वेध के राहित्य में यदि एकादशी बढ़ती है वह उन्मीलिनी नहीं है, शुद्धा एकादशी है। उसका परित्याग कर द्वादशी में उपवास करे। इस बिषय में माधवीकार ने कहा है—यदि एकादशी कला रूप से प्राप्त नहीं है तो द्वादशी में उपवास तथा त्रयोदशी में पारण करे, जो कि शतक्रतु के समान है । अन्यस्मृति में कहा—जिस दिवस एकादशी पूर्ण है वह पुनः पर दिवस में भी है वह शत यज्ञ के पुण्य को देने वाला है उस पर त्रयोदशी में पारण करना चाहिये । नारदपुराण में कहा है—जिस दिन एकादशी सम्पूर्ण है पुनः

नारदीये—

संपूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा ।
अत्रोपोष्या द्वितीया तु पुत्रपौत्रविवर्द्धिनी ॥३०॥

अथ वंजुली; पाद्मे—

संपूर्णैकादशी यत्र द्वादशी च तथा भवेत् ।
त्रयोदश्यां मुहूर्त्तार्द्धं वंजुली सा हरिप्रिया ॥
शुक्लपक्षेऽथवा कृष्णे यदा भवति वञ्जुली ।
एकादशोदिने भुंक्ता द्वादश्यां कारयेद्व्रतम् ॥
पारणं द्वादशी-मध्ये त्रयोदश्यां न कारयेत् ।

ब्रह्मवैवर्त्ते—

द्वादश्येव विवर्द्धेत न चैवैकादशी यदा ।
वञ्जुलीति भृगुश्रेष्ठ ! कथिता पापनाशिनी ॥
द्वादशीमात्रवृद्धौ वञ्जुली ॥३१॥

प्रभात काल में उसकी स्थिति है तो यहाँ दूसरे दिन उपबास करे जो कि पुत्र-पौत्र की बढ़ाने वाली है ॥३०॥

वञ्जुली का लक्षण—पद्मपुराण में यथा-यदि एकादशी सम्पूर्ण है द्वादशी भी सम्पूर्ण रहती है, त्रयोदशी में भी मुहूर्त्तार्द्ध द्वादशी वीतती है तो वह वञ्जुली कही जाती है जो कि श्रीहरि को अतिप्रिया होती है। शुक्लपक्ष में हो अथवा कृष्णपक्ष में हो यदि वञ्जुली आ जाती है तो एकादशी दिन में भोजन कर द्वादशी में व्रत करे परन्तु द्वादशी बीच में पारण करे, त्रयोदशी में न करे। ब्रह्मवैवर्त्त में कहा है—द्वादशी ही वृद्धिप्राप्त हो परन्तु एकादशी न बढ़े वह वञ्जुली है जो पाप का नाश करने वाली है। द्वादशी-मात्र की वृद्धि से वञ्जुली है ॥३१॥

अथ त्रिस्पृशा माधवीकारेण—नारदवचनम्—

एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी ।
तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥

अन्यत्र—

एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी ।
त्रिस्पृशा नाम सा प्रोक्ता ब्रह्महत्या व्यपोहति ॥

पाद्मे—गंगां प्रति प्राचीमाधवः—

एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशा ।
त्रिस्पृशा सा तु विज्ञेया दशमीसंयुता न हि ॥

अन्यत्र—

अरुणोदय आद्या स्यात् द्वादशी सकलं दिनम् ।
अन्ते त्रयोदशी प्रातस्त्रिस्पृशा सा हरेः प्रिया ॥

एकादशी-द्वादशी-त्रयोदशीयोगे त्रिस्पृशा ॥३२॥

त्रिस्पृशा का लक्षण-माधवीकार ने नारदजी के बचन के उद्धृत कर कहा है-एकादशी है, द्वादशी भी है अथच रात्रिशेष में त्रयोदशी है वह त्रिस्पृशा है जो शत यज्ञ के पुण्य को देने वाली है। वहाँ त्रयोदशी में पारण की बिधि है। अन्यत्र कहा है-एकादशी है, द्वादशी भी है अथच रात्रिशेष में त्रयोदशी है उसका नाम त्रिस्पृशा है जो ब्रह्महत्या को दूर करने वाली है। पद्मपुराण में गंगा के प्रति प्राचीमाधव कहते हैं,—एकादशी है, द्वादशी भी है अथच रात्रिशेष में त्रयोदशी हो वह त्रिस्पृशा है परन्तु दशमी-संयोग से नहीं है। अन्यत्र भी कहा है-अरुणोदय में एकादशी हो, समस्त दिन में द्वादशी हो अथच अन्त में त्रयोदशी प्रातः पर्य्यन्त हो तो वह त्रिस्पृशा है जो हरि की अत्यन्त प्रिय है। एकादशी-द्वादशी तथा त्रयोदशी का संयोग में त्रिस्पृशा है ॥३२॥

अथपक्षवर्द्धिनी—पाद्मे—

अमावास्या यदि पूर्णा संपूर्णा दृश्यते यदा।
भूत्वा तु षष्टिघटिका दृश्यते प्रतिपद्दिने।
अश्वमेधायुतैस्तुल्या सा भवेत्पक्षवर्द्धिनी॥
महती सा समाख्याता द्वादशी पक्षवर्द्धिनी।
भुंक्त्वा चैकादशीं विद्वान् द्वादशीं समुपोषयेत्॥
विशल्यापि न कर्त्तव्या पक्षवृद्धिः यदा भवेत्।
पक्षवृद्धौ बिशेषेण संदेहे समुपस्थिते॥
ममाख्या या प्रकर्त्तव्या बल्लभा पक्षवर्द्धिनी।

ब्रह्मवैवर्ते—

कुहूराके यदा वृद्धि प्रयाते पक्षवर्द्धिनी।
विहायैकादशीं तत्र द्वादशीं समुपोषयेत्।

अमावास्या पूर्णा षष्ठि-घटि भूत्वा परदिने कियन्मात्रा बर्द्धते सा पक्षवर्द्धिनी—॥३३॥

पक्षबर्द्धिनी—पद्मपुराण में कहा है-यदि अमाबास्या पूर्ण है वह साठ घड़ी बीतकर कुछ अंश से प्रतिपदा में रहती है तो उसकी पूर्ववर्त्ति द्वादशी का नाम पक्षवर्द्धिनी है। वह अयुत-अश्वमेध-फल को देने वाली है। वह पक्षवर्द्धिनी-द्वादशी महती कही जाती है। बिद्वान् एकादशी में भोजन कर द्वादशी में उपबास करे। यदि पक्षवृद्धि हो अथच शल्य-रहित एकादशी है तो भी एकादशी में उपवास न करे। विशेष करके पक्षवृद्धि में सन्देह उपस्थित होने पर ममाख्या प्रिया पक्षवर्द्धिनी करे। ब्रह्म-बैवर्त्त में कहा है-जिस समय अमावास्या व पूर्णिमा बृद्धि को प्राप्त होती है वह पक्षवर्द्धिनी है। उसमें एकादशी का त्याग कर द्वादशी में उपवास करे। अमावास्या साठ घड़ी होकर दूसरे दिन किञ्चिन्मात्रा से बृद्धि प्राप्त हो तो वह पक्षबर्द्धिनी है॥३३॥

अयमभिसंधिः—

यद्यपि दशमीवेधो नास्ति तथापि पक्षवेधस्य विद्यमानत्वात् एकादशी त्याज्या, यद्वा—वाचनिकव्यवस्थायां न युक्त्यपेक्षा! पुनर्वसुयोगे जया, श्रवणायोगे विजया, रोहिणीयोगे जयन्ती, पुष्ययोगे पापनाशिनी।

जया च विजया चैव जयन्ती पापनाशिनी।
सर्वपापहरा ह्येता कर्त्तव्या फलकांक्षिभिः॥
द्वादश्यां तु सिते पक्षे यदा ऋक्षं पुनर्बसु।
नामा सा तु जयाख्याता तिथीनामुत्तमा तिथिः॥
यदा तु शुक्ले द्वादश्यां नक्षत्रं श्रवणं भवेत्।
विजया सा तिथिः प्रोक्ता तिथीनामुत्तमा तिथिः॥
यदा तु शुक्लद्वादश्यां प्राजापत्यं प्रजायते।
जयन्ती नाम सा ज्ञेया सर्वपापहरा तिथिः॥

इसकी अभिसंधि यह है—यद्यपि दशमीबेध नहीं है तो भी पक्षवेध की बिद्यमानता के कारण एकादशी त्याज्य की जाती है। किम्बा बाचनिक--व्यबस्था में युक्ति की अपेक्षा नहीं की जाती है। पुनर्वसु नक्षत्र के संयोग में जया, श्रवणा के संयोग से विजया, रोहणी-योग से जयन्ती, पुष्य-नक्षत्र संयोग से पापनाशिनी द्वादशी होती है। जया, बिजया, जयन्ती तथा पापनाशिनी ये चार महाद्वादशी समस्त पापों का नाश करने वाली हैं। फलेच्छु व्यक्ति के लिये बिशेष तया करना चाहिये। शुक्लपक्ष की द्वादशी में यदि पुनर्वसु नक्षत्र मौजूद रहता है तो वह जया-तिथि है जो समस्त तिथियों में उत्तमा है। यदि शुक्लपक्ष की द्वादशी में श्रवणानक्षत्र मौजूद है तो वह तिथी विजया है जो तिथियों में उत्तम है। यदि शुक्लद्वादशी में प्राजापत्य (रोहिणी) है वह जयन्ती तिथी

यदास्य शुक्लद्वादश्यां पुष्यं भवति कर्हिचित् ।
तदा सा तु महापुण्या कथिता पापनाशिनी ॥३४॥

अथ जागरणनित्यता—

संप्राप्ते वासरे ये न कुर्व्वन्ति जागरं हरेः ।
भ्रंश्यते सुकृतं तेषां वैष्णवानां च निंदया ॥३५॥

अथ मासकृत्यम्—

मार्गशीर्षाद्यारभ्य द्वादश-देवता केशवाद्याः ।
मार्गशीर्षे केशव-कीर्त्ती पोषे नारायण-कान्ती ॥
माघे माधव-तुष्टी फाल्गुणे गोविन्द-पुष्टी ।
चैत्रे विष्णु-धृती वैशाखे मधुसूदन-शांती ॥
ज्येष्ठे त्रिविक्रम-क्रिये आषाढ़े वामने-दये ।
श्रावणे श्रीधर-मेधे भाद्रपदे हृशीकेश-हर्षे ॥

है जो समस्त-पाप का हरण करने वाली है। यदि कहीं शुक्ला-द्वादशी में पुष्य-नक्षत्र का संचार होता है तब वह तिथी महा-पुण्यवाली पापनाशिनी कही जाती है ॥३४॥

अब-जागरण की नित्यता—हरिबासर के उपस्थित होने पर जो हरि का जागरण नहीं करते हैं, उनके सुकृत-समूह भ्रंशित होते हैं। जो वैष्णवों की निन्दा से नाश प्राप्त होते हैं ॥३५॥

अब मासकृत्य का निर्णय—मार्गशीर्ष से प्रारम्भ कर कार्त्तिक शेष पर्य्यन्त वारहमास हैं। उनके क्रम से केशवादि वारह देवता अधिष्ठाता माने जाते हैं। मार्गशीर्ष में कीर्त्ति के साथ केशव, पौष में कान्ति के साथ नारायण, माघ में तुष्टि के साथ माधव, फाल्गुन में पुष्टि के साथ गोबिन्द, चैत्र में धृति के साथ बिष्णु, वैशाख में शान्ति के साथ मधुसूदन, ज्येष्ठ मे क्रिया के साथ त्रिबिक्रम, आषाढ़ में दया के साथ बामन, श्रावण में मेधा के

आश्विने पद्मनाभ-श्रद्धे कार्तिके दामोदर-लज्जे ॥

बर्णागमे-कृष्ण १ कनक २ श्याम ३ कर्वुर ४ रक्त ५ धूम्र ६ हरित, ७ पिङ्गल ८ अभ्र ९ चित्र १० पाण्डु ११ अंजनाः १२ ॥

देवीपुराणे—

मार्गशीर्षमारभ्य केशवादीन् दामोदरान्तान् पूजयेत् पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्यैरित्युक्तम् ॥३६॥

अथ मार्गशीर्षे—

तत्र प्रातःस्नानपूर्वकं श्रीकेशवं पूजयेत् "मासानां मार्गशीर्षोऽस्मी" ति भगवदुक्ते विभूतिविषयत्वेन फलाधिक्यात्। तत्र श्रीकृष्णाय नवीनबस्त्र-तूलिकादिकं च दद्यात् । शुक्लद्वादश्यां तु विशेष- सेवां कुर्यात्—

तथोक्तं वाराहे-दुर्वासा उवाच—

मार्गशीर्षे शुक्लपक्षे द्वादश्यां नियतात्मवान् ।
स्नात्वा देवार्चनं कृत्वा चाग्निकार्यं यथा विधिः ॥

साथ श्रीधर, भाद्रपद में हर्षा के साथ हृषीकेश, आश्विन में श्रद्धा के साथ पद्मनाभ एवं कार्त्तिक में लज्जा के साथ दामोदर मासाधिष्ठाता देवता हैं। इनके बर्ण-आगम शास्त्र में यथा—क्रम से-कनक, श्याम, कर्व्वुर, रक्त, धूम्र, हरित, पिंगल, अभ्र, चित्र, पाण्डर एवं अंजन बर्ण हैं। देवीपुराण में कहा है-मार्गशीर्ष से प्रारम्भ कर कार्त्तिक पर्य्यन्त केशवादि-दामोदर पर्य्यन्त देवता का पुष्प, धूप, दीप एवं नैवेद्यों से पूजन करे ॥३६॥

मार्गशीर्ष का विधान—प्रातःस्नान कर केशब का पूजन करे। गीता में भगबान ने "मासों में मैं मार्गशीर्ष हूँ" ऐसा कहा। अतः वह विभूति रूप से गिना गया है। अतः उस मास में फल की आधिक्यता है ! उस मास में श्रीकृष्ण के लिये नवीन-वस्त्र

शंख-चक्र-गदापाणिं पीतवाससं किरीटिनम् ।
ध्यात्वा जलं गृहीत्वा तु भानुरूपं जनार्दनम् ॥
नत्वा दीपमये पश्चात्करतोयेन माधवम् ॥

ततः पूजनप्रकारस्तु—

तत्रैव—

केशवाय नमः पादौ कटिं दामोदराय च ।
जानुभ्यां नरसिंहाय उरू श्रीवत्सधारिणे ॥
कण्ठं कौस्तुभनाथाय वक्षः श्रीपतये तथा ।
त्रैलोक्यविजयायेति बाहुं सर्वात्मने शिरः ॥

इत्यादि-धूपदीपादिभिः श्रीकृष्णं पूजयेत् । फलं च तत्रैव-

ब्रह्महत्यादि-पापानि इहलोके कृतानि वै ।
अकामतः कामतो वा विनश्यन्ति हि तत्क्षणात् ॥

तथा तूलिकादि (रजाई आदि) प्रदान करे । द्वादशी में विशेष सेवा करे । बाराहपुराण में कहा है-(दुर्वासा जी का बचन) मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष की द्वादशी में मनुष्य संयत्त आत्मा हो स्नान तथा देवार्चन कर यथा विधि से अग्नि कार्य्य करे । शंख-चक्र-गदा-पाणिवाले, पीतवस्त्र-धारी, किरीट-धारी श्रीहरि का ध्यान कर हाथ में जल लेकर भानुरूप उनका नमन कर दीपमय-अर्घ्य से पश्चात करस्थ जल से उन की पूजा करे । पूजनप्रकार यथा-वराहपुराण में—चरणों में "केशवाय नमः", कटि में "दामोदराय नम", जानु में "नरसिंहाय नमः", कंठ में "कौस्तुभनाथाय नमः" वक्षः में "श्रीपतये नमः" बाहु में "त्रैलोक्यविजयाय नमः" मस्तक में "सर्व्वात्मने नमः" इस प्रकार धूप-दीपादिश्रों से श्रीकृष्ण के उन उन अंगों का पूजन करे । इस प्रकार पूजन का फल उस बराहपुराण में कहा है-इस लोक में किये हुए अकाम

या च वंध्या भवेन्नारी अनेन विधिना शुभा ।
उपोष्य तु भवेत्तस्याः पुत्रः परमवैष्णव : ॥३७॥

अथ पौषकृत्यम्—

दुर्वासा उवाच—

पौषमासस्य या पुण्या द्वादशी शुक्लपक्षतः ।
तदाऽऽराधयेद्रात्रौ देवदेवं जनार्दनम् ॥
कूर्माय पादौ-प्रथमं नारायणायेति ।
कटिं हरिश्च संकर्षणायेत्युदरं हरेस्तु ।
उदरो बिशोकाय भवाय कण्ठं सुबाहवश्चेति ॥
भुजौ शिरश्चेति तत्तादुपचारैः श्रीकृष्णं पूजयेत् ॥३८॥

अथ माघे-गारुड़े इन्द्रं प्रति नारदः-

दुर्लभो माघमासस्तु वैष्णवानामतिप्रियः ।
देवतानामृषीणां च मुनीनां सुरनायक ! ॥

से हो व सकाम से हो ब्रह्महत्यादि पाप समूह उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं । यदि बंध्या नारी इस विधि से उपबास कर पूजन करती है तो उसका परमवैष्णव पुत्र होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥३७॥

पौषमास कृत्य-दुर्वासा जी ने कहा है-पौषमास के शुक्लपक्ष में जो द्वादशी है वह पुण्यमयी है उस दिन रात्रि में देवदेव जनार्दन की आराधना करे । पादों में-"कूर्माय नमः", कटि में "नारायणाय नमः", इत्यादि रूप से ॥३८॥

अथ माघकृत्य-गरुडपुराण में इन्द्र के प्रति नारदजी कहते है हे सुरश्रेष्ठ ! माघ मास परम दुर्ल्लभ है तथा देवता, ऋषि, मुनि एवं वैष्णवों का अत्यन्त प्रिय है । पौषमास के अतीत होने पर जब तक पूर्णिमा नहीं आती है तब तक माघमास माना जाता

पौष्यां तु समतीतायां यावद्भवति पूर्णिमा ।
माघमासस्य देवेन्द्र ! पूजा विष्णोर्विधियते ॥
स्नानं विलेपनं धूपं नैवेद्यादि-समुद्भवम् ॥

तत्र माघे श्रीकृष्णाय नवीनवस्त्रं तूलिकां च दद्यात्, प्रातःकाले मासमात्रं घृतलुतां द्विज्ञेत्रीं समर्पयेन । अति-प्रीत्या तत्प्रसादं समानोपासकेभ्यो वैष्णवेभ्यो दद्यात् नान्येभ्यः, वैष्णवेऽविद्यमाने स्वयमेव गृह्णीयात् । नावैष्णवेभ्यश्च तुर्वेदविद्भ्योऽपि, वहुत्वे नैवेद्यभारे जलाधिष्ठात्-देवतायै दद्यात् ॥३६॥

तथोक्तं प्रह्लादपंचरात्रे—

"अनाभाष्य कर्मजड़ान् वंचयेद् द्रविणादिभिः ।
हरेर्नैवेद्यसंभारान् वैष्णवेभ्यः समर्पयेत् "॥

स्मार्त्तारपि पठन्ति—

नैवेद्यप्रतिपत्यर्थं सात्वतश्चेन्न लभ्यते ।
ग्रासमात्रं समुद्धृत्य शेषमप्सु विनिःक्षिपेत् ॥

है । हे देवेन्द्र ? उसमें स्नान, बिलेपन, धूप तथा नैवेद्यादि के द्वारा पूजा का बिधान किया गया है । माघमास में श्रीकृष्ण के लिये नबीन-वस्त्र तथा रुई का प्रदान करे । एक मास पर्य्यन्त प्रातःकाल में घृतलुत तिलभुगादि समर्पण करे एवं अति प्रीति के साथ समान-उपासक वैष्णवों को देवें । अन्य किसी को न दें। चतुर्वेदी अवैष्णव के अविद्यमान् में स्वयं ही ग्रहण करे । चतुर्व्वेदी अवैष्णव को भी न दें । नैवेद्य के भार अधिक होने पर जलाधिष्ठात् देवता को दें अर्थात् जल में समर्पण कर दें ॥३६॥

प्रह्लादपञ्चरात्र में कहा है—कर्म्मी जड़ादि को धनादि देकर वंचित कर दे परन्तु महाप्रसाद को न दें । नैवेद्य भारों को वैष्णवगणों के लिये समर्पित करें । स्मार्त्तगण भी कहते हैं-नैवेद्य ग्रहण

तत्र स्नान-सेवा तु यथाशक्त्या तथोक्तम्—

"मासार्द्धं वा समग्रं वा दशाहं वा तदर्द्धकम् ।
यथा शक्त्या हरेर्पूजां कुर्वन्नाप्नोति तत्पदम् "॥४०॥

अथ वसन्तपञ्चमी—

श्रीकृष्णमन्दिरं गन्धधूपादिभिः संस्कृत्य वैष्णवान् आहूय श्रीकृष्णाय महास्नानं महानैवेद्यं च दद्यात् नवीनवस्त्रादयैरलं कुर्यात्-उक्तं च—

श्रीपञ्चमीं समारभ्य यावत्स्याच्छयनं हरेः ।
वसन्तरागः कर्त्तव्यो नान्यदा तु कदाचनेति ॥४१॥

शिवव्रतं-कौर्म्मे—

परात्परतरं यांति नारायणपरायणाः ।
न ते तत्र गमिष्यन्ति ये द्विषन्ति महेश्वरम् ॥

के लिये यदि वैष्णव जन न मिले तो उनमें से एक ग्रास उठा कर अवशिष्ट जल में दे दें । माघमहीना में यथा शक्ति स्नान तथा सेबादि करे । जैसे कि कहा है—अर्द्ध मास तक, अथवा समस्त मास, अथवा दश दिन पर्य्यन्त, अथवा पांच दिन तक यथा-शक्ति हरि की पूजा करने से उनके पद प्राप्त करता है ॥४०॥

बसन्तपंचमी—गन्ध, धूपादि से श्रीकृष्ण-मन्दिर का संस्कार कर, वैष्णवों को बुला कर श्रीकृष्ण के लिये महास्नान तथा महा-नैवेद्य का अर्पण करे और नवीन वस्त्रादिओं से अलङ्कृत करे । और भी कहा है—श्रीपञ्चमी से आरम्भ कर श्री-हरि के शयन दिवस तक वसन्तराग का गान कर्त्तव्य है, इससे अन्यथा न करे ॥४१॥

शिबव्रत—कूर्म्मपूराण में कहा है—नारायण परायण जन परात्पर पद को गमन करते हैं परन्तु जो महादेव जी का द्वेष

पाद्मे—

द्रव्यमन्नं फलं तोयं शिवस्थं न स्पृशेत्कचित् ।
निर्माल्यं नैव लंघयेत् कूपे सर्वं विनिःक्षिपेत् ॥४२॥

अथ फाल्गुणे कृत्यम्--

शुक्लद्वादश्यां श्रीकृष्णं विशेषतः पूजयेत् । सैवामर्दकीति पठन्ति चामर्दकी यतो जातेत्यादि ।

प्रभासखंडे—

क्षीरोदे मथ्यमाने तु यदा वृक्षः समुत्थितः ।
आमर्दाद्देवदैत्यानां तेन सामर्दकी स्मृता ॥
शिवा लक्ष्मीः स्मृतो वृक्षः सेव्यते सुरसत्तमैः ।
देवैर्ब्रह्मादिभिः सर्वैर्वृक्षोऽसौ वैष्णवः स्मृतः ॥

अत एव वृक्षमूले भगवत्सेवां प्रदक्षिणां च शिष्टाः कुर्वन्ति ।

करते हैं वे वहाँ नहीं जा सकते हैं । पद्मपुराण में कहा-शिव जी में स्थित द्रव्य, अन्न, फल तथा जल का स्पर्श कहीं भी न करें, शिवजी के निर्म्माल्य का उल्लंघन न करे, उन सब निर्म्माल्य को जल में विराजमान करादें ॥४२॥

अथ फाल्गुनकृत्य—फाल्गुन की शुक्ला द्वादशी में विशेष रूप से श्रीकृष्ण का पूजन करे । उस दिन आमर्दकी की सेवा करनी चाहिये । उस दिन आमर्दकी का उत्पन्न हुआ है । प्रभास-खण्ड में कहा है-देवता-दैत्यों के संमर्द रूप क्षीरसागर के मथन में यह वृक्ष उत्पन्न हुआ था अतः उसको आमर्दकी(आँवला)कहते हैं । वृक्ष पार्वतीजी को व लक्ष्मीजी को स्मरण कराता है, ब्रह्मादि-देवताओं से वह सेवित है तथा वैष्णव रूप माना जाता है । इस लिये शिष्टगण इस वृक्षमूल में भगवान की सेवा एवं प्रदक्षिणा करते हैं । भविष्योत्तर में कहा है—फाल्गुनमास की शुक्ला एका-

तथोक्तं भविष्योत्तरे--

फाल्गुने मासि शुक्लायामेकादश्यां जनार्दनः ।
वसत्यामलकीवृक्षे लक्ष्म्या सह जगत्पतिः ॥ ४३ ॥

अथ वसन्ते दोलोत्सवः —

फाल्गुनस्य च राकायां मंडयेत् दोलमंडलम् ।
पश्चात्सिंहासनं पुष्पैः नूतनैर्वस्त्रचित्रकैः ॥

तत्रायं क्रमः—उपवने मंडप-संस्कारं कृत्वा चूत-पल्लवादि-कदली-स्तंभैर्तन्मध्ये वेदिकां कृत्वा तत्र दिव्यस्तम्भादिकं च कारयित्वा छत्र-ध्वजापताकादिभिः चिह्नितं कृत्वा वैष्णवैः सह गीतनृत्यादिभिः श्री-कृष्णं तत्रानयेत् । तत्रान्दोलनत्रयं कारयेत्—स्नेहेन महाभोगादिभिः संप्रीणयेत् । यादृशो भावस्तादृशो व्यवहरेत् ।

तथोक्तं भविष्ये—

"व्रते तुषारसमये सितपंचदश्यां प्रातर्वसन्तसमये समुपस्थिते

दशी में जगत्स्वामी भगवान जनार्दन लक्ष्मी के साथ आमलकी वृक्ष में निवास करते हैं ॥४३॥

वसन्त में दोलोत्सव का विधान है । जैसा कि कहा है—फाल्गुन की पूर्णिमा में दोलमण्डप का मण्डन कर पश्चात् पुष्प, नवीन-वस्त्र-नानाचित्रों से सिंहासन को भूषित करे । इसका क्रम यह है कि—बगीचा में मण्डप का संस्कार कर आम्रपल्लव तथा कदली खम्भों से उसके मध्य भाग में वेदी बना कर उस पर--मनोहर खम्भों की रचना कर, ध्वजा-पताकादिओं से उन खम्भों को चिन्हित कर वैष्णवों के साथ गीत-नृत्यादि करते हुए वहाँ श्रीकृष्ण का आनयन कर, तीन बार डुलावे । प्रीति के साथ महा-भोग-रागों से श्रीकृष्ण को प्रसन्न करे । जैसा भाव है वैसा व्यहार है । भविष्यपुराण में कहा है-शीतकाल के अतीत हो जाने पर

च। संप्राप्य चूतकुसुमं सह चन्दनेन सत्यं हि पार्थ पुरुषोऽब्दशतं सुखी स्यात् "॥ ४४ ॥

चैत्रकृत्यम्

अगस्त्यसंहितायाम्—

चैत्रमासे नवम्यां तु शुक्लपक्षे रघूद्वहः ।
प्रादुरासीत्पुरा ब्रह्मन् परंब्रह्मैव केवलम् ॥
तस्मिन् दिने तु कर्त्तव्यमुपवासव्रतादिकम् ।

किञ्च—

प्राप्ते श्रीरामनवमीदिने मर्त्यो विमूढ़धीः ।
उपोषणं न कुरुते कुम्भीपाकेषु पच्यते ॥

केचित्तु तदुपासकान्प्रति नित्यत्वं बदन्ति ॥४५॥

अथ निर्णयः—

नवमी विद्धा शुद्धा च तत्र शुद्धैवोपोष्या ।

एवं वसन्त समय के उपस्थित होने पर जो शुक्ल पंचदशी तिथी आती है उस दिन चन्दन के द्वारा आम्रवकूल का लिप्त कर भगवान को समर्पित करे तो सौ वर्ष पर्य्यन्त सुखी होता है ॥४४॥

चैत्रकृत्य—अगस्त्यसंहिता में कहा है-हे ब्रह्मन् चैत्रमास की शुक्ला नवमी में पर-ब्रह्म भगवान् रघुनाथजी प्रादुर्भूत हुए हैं। उस दिन उपवास-व्रतादि करना चाहिये। और श्री-रामनवमी दिन उपस्थित होने पर जो मनुष्य विमूढ़ बुद्धि होकर उपवास नहीं करता है वह कुम्भीपाक नरकों में पचता है कोई कोई उनके उपासकों के लिये यह बिधि नित्य है एसा कहते हैं ॥४५॥

निर्णय:—नबमी शुद्धा एवं विद्धा दो प्रकार है, शुद्धा नवमी में उपवास की विधि है। अगस्त्यसंहिता में कहा है-विष्णु-परा

तदुक्तं अगस्त्यसंहितायाम्—

नवमी चाष्टमी विद्धा त्याज्या विष्णुपरायणैः ।
उपोषणं नवम्यां वै दशम्यामेव पारणम् ॥

यदा तु नवमीक्षयस्तदा बिद्धापि ग्राह्या दशमीपारणानुज्ञानात्।

चैत्रे मासि नवम्यां तु जातो रामः स्वयं हरिः ।
पुनर्व्वस्वृक्षसंयुक्ता सा तिथिः सर्वकामदा ॥ ४६ ॥

अथ विधिः—

अष्टम्यां दन्तधावनपूर्वकं हविष्यान्नभोजनभूमिशय्यादिना श्रीरामस्मरणपूर्वकं तिष्ठन् नवम्यां मध्यान्हे सर्वान् वैष्णबानाहूय सूतिकागृहादिं कारयित्वा श्रीरामं प्रादुर्भावयेत्ततः महास्नानं महानैवेद्यं समर्प्य महोत्सवं कारयेत् । तत्र वैभवे श्रीराम-प्रतिमां कारयित्वा सजानकीं तत्र सम्यक् तया पूजां कृत्वा गोदानादिपूर्वं वैष्णवब्राह्मणाय सुबर्णप्रतिमां दद्यात् ॥ ४७ ॥

यण जन अष्टमी-विद्धा-नवमी का त्याग करे। शुद्ध नवमी में उपवास तथा दशमी के दिन पारायण करें। यदि नवमी का क्षय है तब विद्धा भी ग्रहणीया है, दशमी में पारण का आदेश है। चैत्रमास की नवमी में स्वयं भगवान् रामजी प्रादुर्भूत हुए हैं। पुनर्वसु नक्षत्र से युक्त वह तिथि समस्त कामना को देने बाली है ॥४६॥

विधान—अष्टमी के दिन दन्तधापन पूर्वक हविष्यान्न-भोजन, भूमिशयनादि कर श्रीराम का स्मरण कर ठहरे। नवमी के दिवस मध्यान्ह में समस्त वैष्णवों को बुला कर सूतिका-गृहादिक की रचना कर श्रीरामचन्द्र को प्रादुर्भूत करावे। नदनन्तर महास्नान करा कर महानैवेद्य का समर्पण कर महोत्सव करें। वैभव हो तो श्रीराम जी की सुबर्ण प्रतिमा कराकर श्रीजानकी जी की पूजा

अथैकादश्यां दोलोत्सवः—

तत्र दोलामंडपं कृत्वा श्रीकृष्णं स्थापयेत् । तत्रैव महाराज-भोगैरनुसरेत् ।

तथा गारुडे—

चैत्रे मासि सिते पक्षे दक्षिणाभिमुखं हरिम् ।
दोलारूढं समभ्यर्च्य मासमान्दोलयेत् कलौ ॥

तथा लक्ष्मीसंयुक्तमान्दोलयेत् ॥

तथा ब्रह्मपुराणे—

चैत्रमासस्य शुक्लायामेकादश्यां तु वैष्णवैः ।
आन्दोलनीयः देवेशः सलक्ष्मीको महोत्सवैः ॥

सलक्ष्मीत्युपलक्षणं , रघुनाथे जानकी, श्रीकृष्णे श्रीराधा ॥४८॥

अथ माहात्म्यं गारुड़े—

दक्षिणाभिमुखं देवं दोलारूढं सुरेश्वरम् ।
सकृद्दृष्ट्वा तु गोविन्दं मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥

कर गोदान के साथ वैष्णव-ब्राह्मण को प्रदान करें ॥४७॥

एकादशी में दोलोत्सव-उस दिन दोल-मण्डप कर श्रीकृष्ण की स्थापना कर महाराजभोगों से अनुसरण करे। गरुड़पुराण में कहा है-चैत्रमास के शुक्लपक्ष में दक्षिणाभिमुख श्रीहरि को दोला में चढ़ा कर एक मास पर्य्यन्त दुलावें। कलियुग में यह विधि बतलाई गई है। लक्ष्मी के साथ दुलाने की विधि है। ब्रह्मपुराण में कहा है-चैत्रमास की शुक्ला एकादशी में वैष्णबों के द्वारा देवेश श्रीहरि लक्ष्मी के साथ महोत्सव में डुले जाते हैं। सलक्ष्मी शब्द यहाँ उपलक्षण मात्र है। श्रीरघुनाथ में जानकी एवं श्रीकृष्ण में श्रीराधा को जानना ॥४८॥

गरुड़पुराण में इसका महात्म्य-दक्षिणाभिमुख, दोलारूढ़,

दोलारूढं प्रपश्यन्ति कृष्णं कलिमलापहम् ।
अपराधसहस्रैस्तु मुक्तास्ते घूर्णने कृते ॥
तावत्तिष्ठन्ति पापानि जन्म-कोटिकृतान्यपि ।
यावन्नान्दोलयेद्भूप ! कृष्णं कंसविनाशनम् ॥

अथ नित्यता पाद्मे—

ऊर्ज्जे रथं मधौ दोलां श्रावणे तन्तुपर्व्वं च ।
चैत्रे दमनकारोपमकुर्वाणो व्रजत्यधः ॥ ४६ ॥

अथ दमनकोत्सवः —

मधुमासे सिते पक्षे द्वादश्यां दमनोत्सवम् ।
आगमोक्तेन मार्गेण कुर्याद्भक्तो ह्यतंद्रितः ॥

प्रार्थना-"उपवासेन त्वां देव तोषयामि जगत्पते ! ।
कामक्रोधादयो ये ते न मेऽस्तु व्रतघातकाः " ॥

सुरेश्वर गोविन्ददेव का एक बार दर्शन से ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है। कलिमलापहारी दोलारूढ़ श्रीकृष्ण का जो दर्शन करते हैं, वे अपराध सहस्रों से मुक्त हो जाते हैं। हे राजन् ! जब तक कंसनाशन श्रीकृष्ण को दोला में चढ़ा कर नहीं डुलावें तब तक कोटि जन्म किये हुए पाप समूह ठहरते हैं। उसकी नित्यता-पद्म-पुराण में कहा है-कार्त्तिक में व्रत, चैत्र में दोल, श्रावण में तन्तु-पर्व, चैत्र में दमनक-आरोपण न करने पर मनुष्य अधःपात में जाता है ॥४६॥

दमनक उत्सव-मधुमास की शुक्ला द्वादशी में भक्तगण आगम-विधि के अनुसार अनलस हो कर दमनक उत्सव करें। प्रार्थना-"हे जगत्पति ! हे देव ! उपवास से मैं तुम्हें प्रसन्न करना चाँहता हूँ। काम-क्रोधादिक जो समस्त ब्रह्मघातक हैं वे मेरे लिये न हों।" इस प्रकार विज्ञापन कर, श्रीगुरु से आज्ञा लेकर प्रणाम

इति विज्ञाप्य श्रीगुरोराज्ञां गृहीत्वा प्रणम्य ततः प्रातः स्नानं कृत्वा महापूजया श्रीकृष्णं संपूज्य संध्या-समये दमनकस्थाने गत्वा प्रार्थनां कुर्यात् । श्रीकृष्णपूजार्थं त्वां गृह्णामिति संप्रार्थ्य अवचयं कुर्यात् । ततः प्रोक्षणादिना संस्कृत्य अशोकमूले नयेत् । अशोकवृक्षाभावे समीचीनं स्थलं कृत्वा तत्र तं स्मरेत् ।

तत्र मंत्रः बौधायने —

"अशोकाय नमस्तुभ्यं कामस्त्री-शोकनाशनः ।
शोकार्त्तिं हर मे नित्यमानन्दं जनयस्व मे ॥

इति गन्धपुष्पादिभिः अशोकं संपूज्य कालं संपूजयेत् ॥

ततो वसन्तं—

ओं--वसन्ताय नमस्तुभ्यं वृक्षगुल्मलताप्रियः ।
सहस्रसुखसंवाह ! कालरूप ! नमोऽस्तु ते ॥

ततः दमनं संपूज्य श्रीकामं संपूजयेत् ॥

कर प्रातः स्नान पूर्वक महापूजा से श्रीकृष्ण का पूजन कर सन्ध्या समय दमनक स्थान पर जाकर प्रार्थना करें । "श्रीकृष्ण -पूजनार्थ तुम को ग्रहण करता हूँ" ऐसा कह कर चयन करें । तदनन्तर प्रोक्षणादि के द्वारा संस्कार कर अशोक के मूल पर लावे । अशोकवृक्ष के अभाव में समीचीन स्थान पर उसका स्मरण करे । बौधायन में मन्त्र—"हे अशोक तुमको नमस्कार , तुम कामना, स्त्री-शोक के नाशक हो, मेरा शोकार्त्ति का हरण करो, नित्य प्रति आनन्द प्रदान करो "। इस मन्त्र से गन्ध-पुष्पों के द्वारा अशोक की पूजाकर काल-देवता का पूजन करें। "हे बसन्त ! तुमको नमस्कार, तुम बृक्ष-गुल्म-लता के प्रिय हो, हजार सुखका बहन करने वाले हो, हे कालरूप तुमको नमस्कार "। दमनक की पूजा कर काम का पूजन करे। मन्त्रः-"हे जगत् के आल्हादकारी

तत्र मंत्रः—

"ओं नमोऽस्तु पुष्पबाणाय जगदाह्लादकारिणे ।
मन्मथाय जगन्नेत्रे रतिप्रीतिप्रदायिने " ॥

इति श्रीकामदेवं संपूज्य दमनकं गृहमानयेत् ॥

अथाधिवासनम्—

रात्रौ श्रीकृष्णाग्रे सर्वतो-भद्रमंडलं कृत्वोपरि बितानमावध्य तत्र कलशं संस्थाप्य तत्र दमनकं गंधधूपदीपनैवेद्यादिभिः तन्मत्रेण तत्र मंत्रः—"पूजायां देवदेवस्य विष्णोर्लक्ष्मीपतेः प्रभोः । दमन त्वमिहागच्छ सांनिध्यं कुरु ते नम" इति । आवाह्य पूजयेत् । तदनन्तरं महोत्सहेन "क्लीँ कामाय नमः", "रत्यै नमः, " कामगायत्र्या च बिधिना धूपदीपादिभिः संपूजयेन । ततः श्रीकृष्णं बिशेषतः पूजयित्वा प्रार्थनं कुर्यात् । तत्र मंत्रः निबेदयाम्यहं

पुष्प-बाण वाले कामदेव ! तुमको नमस्कार, तुम मनको मथित करने वाले हो, जगत् के नेत्र रूप हो, रति के प्रीति को दान करने वाले हो". इस मन्त्र से कामदेब का पूजन कर गृह पर दमनक को लावें अधिवास-रात्रि में श्रीकृष्ण के समक्ष सर्वतोभद्रमडल बनाकर ऊपर में चन्दोवादि बाँध कर उसमें कलश की स्थापना कर उसमें गन्ध-धूप-दीप-नैवेद्यादि से " हे दमनक ! लक्ष्मीपति, प्रभु, देव-देव विष्णु की पूजा के लिये यहाँ आओ विराजमान हो, तुमको नमस्कार" इस मन्त्र से आवाहन कर पूजा करे । "क्लीं कामाय नमः," "रत्यै नमः" इन मन्त्रों से तथा कामगायत्री से यथा विधि धूप दीपादिओं से पूजा करे । तदनन्तर विशेष रूप से श्रीकृष्ण का पूजन कर प्रार्थना करे । प्रार्थनामन्त्र-"हे विष्णु ! मैं प्रातःकाल तुमको पवित्र दमनक का निवेदन करता हूँ । सर्वप्रकार से सब समय मेरे प्रति प्रसन्न हो तुमको नमस्कार" इस प्रकार प्रार्थना

तुभ्यं प्रातर्दमनकं शुभम्। सर्वथा सर्वदा विष्णो! नमस्तेऽस्तु प्रसीद मे॥ इति संप्रार्थ्य कुम्भोपरिस्थितं दमनकं अस्त्रेणावगुण्ठनेन चक्रेण चरक्षा कुर्यात्। नृसिंहैकाक्षरेण च, ततः गुर्वादिं संपूज्य जागरणं कुर्यात्—

अथ प्रातः कृत्यं-श्रीकृष्णं नत्वा यथा बिधि स्नानं कृत्वा ततो दमनकोत्सवांगतया पूजां कुर्यात्। ततो हस्ताभ्यां दमनकं गृहीत्वा घंटादिघोषेण श्रीकृष्णाय समर्पयेत ॥

तत्र मंत्रः—

"देवदेव! जगन्नाथ! वाञ्छितार्थप्रदायक!।
कृत्स्नान् पूरय मे कृष्ण! कामान् कामेश्वरीप्रिय!॥
इदं दमनकं देव! गृहाण मदनुग्रहात।
इमां सांवत्सरीं पूजां भगवन्परिपूरय"॥ इति

कामपुटितेन पूजयेत्। ततः नानामण्यादिभिः संपूज्य ततः गुरुं ततः सर्वान् वैष्णवान्। ततः स्वयं च प्रसादशेषं दमनकं

कर कुम्भ के ऊपर दमनक को अस्त्र-मंत्र, अवगुंठन मुद्रा तथा चक्रमुद्रा से रक्षा करे। तत्पश्चात् नृसिंह एकाक्षर में उसकी पुनः रक्षा करे। तदनन्तर गुर्वादिक की पूजा कर जागरण करे। प्रातःकृत्य—श्रीकृष्ण को नमस्कार कर, यथाबिधि स्नानकर दमनक-उत्सवांगरूप से पूजा करे। पुनः हस्तों से दमनक धारण कर घंटादिनाद-पूर्बक श्रीकृष्ण को समर्पण करे। मंत्र यथा-हे देव! हे जगन्नाथ! हे समस्त वाञ्छितार्थ को प्रदान करने वाले! हे कामेश्वरीप्रिय! मेरे हृदय-स्थित कामों को पूर्ण करो। हे दमनक! हे देव! मुझ पर कृपा कर इस दमनक को ग्रहण करो! हे भगवान्! इस सांवत्सरिक पूजा को परिपूर्णकरो" इस मंत्र से कामबीज के पुट के साथ पूजा करे। तदनन्तर नाना-मणियों

गृहीत्वा वैष्णवैः सह भुंजीत ॥५०॥

अथ वैशाखे—

वैशाखे पौर्णमास्यां तु जलस्थं जगदीश्वरम्।
शुक्लस्यैकादशीं यावत पूजयेत्सुप्रहर्षितः॥

तथा गारुड़े—

शुचिशुक्रगते काले येऽर्चयिष्यन्ति केशवम्।
जलस्थं विविधैर्पुष्पैः मुच्यते यमयातनात्॥
घनागमे प्रकुर्वन्ति जलस्थं वै जनार्दनम्।
ये जना नृपतिश्रेष्ठ! तेषां वै नरको ध्रुवः॥
निक्षिप्य जलपात्रे तु मासे माधवसंज्ञके।
माधवं येऽर्चयिष्यन्ति देवतास्ते नरा भुवि॥
स्वर्णपात्रे तथा रौप्ये ताम्रे वा मृन्मयेऽपि बा।
तोयस्थं चार्चयेद्देवं शालग्रामसमुद्भवम्॥
प्रतिमां वा महाभाग तस्य पुण्यमनन्तकम्॥

से पूजा कर गुरु एवं उसके पश्चात् समस्त वैष्णवजनों की पूजा करे। इसके बाद स्वयं प्रसाद शेष दमनक का ग्रहण कर, वैष्णवों के साथ भोजन करे ॥५०॥

वैशाख कृत्य—वैशाख की पूर्णमासी में जल-स्थित जगदीश्वर का पूजन करे। शुल्का-एकादशी तक पूजा करने की विधि है। गरुड़पुराण में कहा है- शुक्र-गत ग्रीष्मकाल में जो जल-स्थित केशब की बिविध-पुष्पों से अर्चना करते हैं वे यम-यातना से मुक्त होते हैं। हे राजश्रेष्ठ? मेघ के आगमन हो जाने पर जलस्थित-जनार्दन की जो पूजा करते हैं, उनका नरक अवश्य होता है। माधब (वैशाख) नामक मास में जलपात्र में माधव को रख कर जो उनकी अर्चना करते हैं वे पृथ्वी में देवता हैं। सुवर्ण-पात्र में, रौप्य एवं ताम्र-पात्र में, मृण्मय पात्र में शालिग्राम-समुद्भव

उष्णस्य तारतम्येन वैशाखे ज्येष्ठे वा-गंधोदकेन प्रीणयेत् । जलमध्य एव महाभोगं समर्प्पयेत । जलविहारार्थं च तदुपयोगिनीं सर्वां सामग्रीं संपाद्य जलविहारं कारयेत ॥ ५१ ॥

अथ नृसिंहचतुर्दशी—

"विज्ञाय मद्दिनं यस्तु लंघयेत् स तु पापभाक् ।
एवं ज्ञात्वा प्रकर्त्तव्यं मद्दिने व्रतमुत्तमम् ॥
अन्यथा नरकं याति यावच्चन्द्र-दिवाकरौ ।
सर्वेषामेव लोकानामधिकारोऽस्ति मद्व्रते ॥
मद्भक्तैस्तु विशेषेण प्रणेयं मत्परायणैः ॥

बृहन्नारसिंहे—

वैशाखशुक्लपक्षस्य चतुर्दश्यां समाचरेत् ।
मज्जन्मसम्भवं पुण्यं व्रतं पापप्रनाशनम् ॥
किञ्च-स्वातिनक्षत्र-योगे तु शनिवारे च मद्व्रतम् ।
केवलं च प्रकर्त्तव्यं मद्दिनं फलकांक्षिभिः ॥
वैष्णवैस्तु न कर्त्तव्या स्मरविद्धा चतुर्द्दशी ।

देवता को जल में रख कर पूजा करें । अथवा देवता की प्रतिमा को रख कर पूजा करें । इसका अनन्त फल होता है । उष्ण के तारतम्य से वैशाख अथवा ज्येष्ठ में यह विधि है । गंधोदक से प्रथम पूजा करे, जलमध्य में ही केशव को महाभोग धरे, जलविहार के लिये श्रीकृष्ण की उपयोगी समस्त-सामग्री संग्रह कर जलबिहार करावें ॥५१॥

नृसिंह चतुर्दशी—मेरे दिन को जानकर जो लंघन करता है वह पापी है । मेरे दिबस में उत्तम व्रत करे, नहीं तो जब तक चन्द्र-सूर्य हैं तब तक नरक में जायेगा । मेरे इस व्रत में समस्त लोगों का अधिकार है विशेषकर मत्परायण मेरे भक्त इसको करें । बृहन्नारसिंहपुराण में कहा है—वैशाख शुक्लपक्ष की चतु-

तत्र प्रकारः-प्रातः स्नानादिकं कृत्वा मन्दिरसंस्कारं कृत्वा वैष्णवानाहूय,मध्याह्नसमये श्रीहरेर्जन्म संभाव्य पंचामृतस्नानादिं महानैवेद्यं कारयेत ॥ ५२ ॥

अथ ज्यैष्ठकृत्यम् —

संपूर्णे मासे श्रीकृष्णं जलमध्य एव सेवयोपचरेत् ॥

अथनिर्जला—पाद्मे-भीमप्रश्नानन्तरं व्यासः—

वृषस्थे मिथुनस्थेऽर्के शुक्ला ह्येकादशी हि या ।
ज्यैष्ठे मासि प्रयत्नेन सोपोष्या जलवर्जिता ॥
"स्नाने वाचमने चैव वर्जयित्वोदकं बुधः" ।
"स्वप्रयत्नादवाप्नोति द्वादश-द्वादशीव्रतम्" ॥ ५३ ॥

आषाढे कृत्यं—

आषाढे शुक्लद्वादश्यां तप्तमुद्राधारणं कुर्यात् ॥

र्दशी में मेरे जन्म से उत्पन्न पाप-नाशक पुन्य-व्रत का प्रारंभ करें । स्वाति-नक्षत्र के संयोग में तथा शनिबार में यह मेरा व्रत फलकामीजन करें । त्रयोदशी-बिद्धा चतुर्दशी में वैष्णवजन व्रत न करें । व्रत का प्रकार—प्रातः स्नान पूर्वक मन्दिर संस्कार कर, वैष्णवों को बुलाकर मध्याह्न—समय में श्रीहरि की जन्म-भावना कर पंचामृत स्नान करावें एवं महानैवेद्य अर्पण करें ॥५२॥

ज्येष्ठ कृत्य—संपूर्ण मास में जलमध्य में हीं श्रीकृष्ण की सेवा का उपचार करें । निर्जला व्रत—पद्मपुराण में भीम जी के प्रश्न के अनन्तर व्यास जी कहते हैं-वृष एवं मिथुन राशि में सूर्य के आने पर जो शुक्ला एकादशी है वह निर्जला है, उसमें जल तक वर्जित है । स्नान में, आचमन में पंडित जल को बाद देकर इस व्रत को करता है तो वह बिना प्रयत्न के द्वादश द्वादशी व्रत के फल को प्राप्त करता है ॥५३॥

आषाढ़ कृत्य—आषाढ़ की शुक्ला-द्वादशी को तप्त मुद्रा

तथोक्तं—

शयन्यां चैव वोधिन्यां चक्रतीर्थे तथैव च ।
शंखचक्रविधानेन बहिपूतो भवेन्नरः ॥

अथ धारणप्रकारः—

पूर्वं तदंगत्वेन षोड़शोपचारैः श्रीकृष्णं संपूज्य शंखचक्रे च संपूज्य ! नैवेद्यादिकं दत्वा नतिं कुर्यादनेन मंत्रेण ।

"सुदर्शन नमस्तेऽस्तु पांञ्चजन्य ! नमोऽस्तु ते ।"

इति । दीक्षाप्रकरणोक्तविधिनाग्निं संस्थाप्य मूलमंत्रेण अष्टोत्तरशतमष्टाविंशं वा हुत्वा चक्रमादाय कामगायत्र्या प्रोक्ष्य "कामदेवाय विद्महे पुष्पवाणाय धीमहि तन्नोऽनंगः प्रचोदयादि"ति !

ततोऽग्नौ चक्रं संस्थाप्य—

सुदर्शन ! महाज्वाल ! सूर्यकोटिसमप्रभ ! ।
अज्ञानान्धस्य मे नित्यं विष्णोर्मार्गं प्रदर्शय ॥

इति-आवाह्य "सुदर्शनाय विद्महे महाज्वालाय धीमहि तन्नश्चक्रं प्रचोदयात्" इति पठित्वा

धारण करे । जैसा कि कहा है—शयनी अथवा बोधिनी दोनों द्वादशी में विशेष कर चक्रतीर्थ में मनुष्य यथा विधि से तप्त शंखचक्र को धारण करे । धारण करने का प्रकार-पहले द्वादशी को अंगरूप षोडशोपचारों से श्रीकृष्ण की पूजा कर शंख-चक्र की भी पूजाकर नैवेद्यादिक प्रदान कर—"हे सुदर्शन ! हे पाञ्चजन्य ! तुमको नमस्कार, नमस्कार !" इस मंत्र से नमस्कार करे। पहले दीक्षा-प्रकरण की बतलायी गयी बिधि से अग्नि स्थापित कर मूलमंत्र से एक सौ आठ बार अथवा अठ्ठाईस वार हवन करे, पश्चात चक्र को लेकर, काम-गायत्री से उसका प्रोक्षण कर, अग्नि में चक्र को रखकर "हे सुदर्शन महाज्वालारूप ! हे कोटि-सूर्य्य के समान प्रभा वाले ! अज्ञानान्ध मेरे लिये विष्णु-मार्ग का

श्रीकृष्णं नत्वा सर्ववैष्णवांश्च गुरोः सकाशाद्दक्षिणबाहुमूले चक्रं गृह्णीयात् ॥

यद्वा सांप्रदायिकवैष्णवान् स्वतो वा, नावैष्णवाः । ततः शंखं प्रक्षाल्य कामगायत्र्या संप्रोक्ष्याग्नौ शंखं संस्थाप्य-"पांचजन्य ! निजध्वानध्वस्तपातकसंचय !। पाहि मां पापिनं घोरं संसारार्णवपातिनम्" ।

"पांचजन्याय विद्महे पांचजन्याय धीमहि तन्नः शंखः प्रचोदयात्"

इति शंखं बामबाहुमूले विदध्यात् । एवं गदापद्मादीनि ततः स्वसम्बन्धिषु भगवदीयत्वमापादयेत् ॥ पश्वादिष्वपि दद्यात् ॥

तथोक्तं बाराहे—

अंकयेत्तप्तचक्राद्यै रात्मनो बाहुमूलयोः ।
कलत्रापत्यभृत्येषु पश्वादिषु च संपदि ॥ ५४ ॥

दर्शन कराओ" इस मन्त्र से उसको उठा कर "सुदर्शनाय विद्महे महाज्वालाय धीमहि तन्नश्चक्रं प्रचोदयात" इस मन्त्र का पाठ कर श्रीकृष्ण तथा समस्त वैष्णवों को नमस्कार कर गुरु के द्वारा दक्षिण बाहुमूल में ग्रहण करे । किम्बा साम्प्रदायिक वैष्णवों के द्वारा अथवा अभाव में स्वयं ग्रहण करे। अवैष्णवजन न हों ! तदनन्तर शंख का प्रक्षालन कर कामगायत्रीमन्त्र से प्रोक्षण कर, अग्नि में शंख रख कर—"पांचजन्य ! निजध्वानध्वस्तपातक-संचय ! पहि मां पापिनं घोरं संसारार्णवपातिनम्" इस मन्त्र का तथा "पांचजन्याय विद्महे पांचजन्याय धीमहि तन्नः शंखः प्रचोदयात्" इस पांचजन्य-गायत्रीमन्त्र से वाम-वाहुमूल में धारण करे। इस प्रकार गदा-पद्मादि का भी धारण करना चाहिये । तदनन्तर अपने सम्बन्धिजनों में भगवदीयत्व का स्थापन करे, अपने अधीनस्थ पश्वादि को भी चिन्हित कर दे । बराहपुराण

अथ द्वादश्यामेव क्षीराब्धिशयनमहोत्सवः—
अथ शयनमहोत्सवनित्यता-भविष्ये—
"मिथुनस्थे सहस्रांशौ स्वापयेन्मधुसूदनम् ।
तुलाराशिगते तस्मिन् पुनरुत्थापयेत्प्रभुमि"ति-
गारुड़े—
मिथुनस्थे सहस्रांशौ न स्वापयति यो हरिम् ।
वैष्णवैः सह संभूय ह्यनावृष्टिस्तथा भवेत् ॥ ५५ ॥
तत्र शयनद्वादश्यामेव यद्यपि,
ब्रह्मपुराणे—
एकादश्यां तु शुक्लायामाषाढे भगवान् हरिः ।
भुजंगशयने शेते यदा क्षीरार्णवे सदा ॥
पुराणसमुच्चये—
आषाढस्य सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः ।
स्थापयेत्प्रतिमां विष्णोः शंखचक्रगदाधरम् ॥

में कहा है-अपने बाहुमूल में तप्त-चक्रादि का अंकन करे; कलत्र, अपत्य, भृत्य, पश्वादि को भी चिन्हित करे ॥५४॥
द्वादशी में क्षिराब्धिशयन महोत्सव—उसकी नित्यता यथा भविष्यपुराण में—जिस समय सूर्य मिथुन राशि पर स्थित हों उस समय भगवान मधुसूदन को शयन कराना चाहिये तथा सूर्यदेव के तुलराशि पर आने पर श्रीहरि को पुनः उत्थापित कराना (जगाना) चाहिए। एवं गरुड़पुराण में है कि-जो वैष्णवों के साथ मिलकर सूर्य के मिथुन राशिपर आने के समय श्रीहरि को शयन नहीं कराता है उसके देश में वर्षा नहीं होती है ॥५५॥
अब द्वादशी तिथि के लिए प्रमाण देते हैं-ब्रह्मपुराण में कहा गयाहै—आषाढ़ मास की शुक्लपक्ष गत एकादशी को भगवान

पीताम्बरधरां सौम्यां पर्यंके शशिनि शुभे ।
शुक्लवस्त्रसमाच्छन्ने सोपधाने युधिष्ठिर ! ॥
इतिहासपुराणज्ञो विष्णुभक्तो यथा पुमान् ।
स्नापयित्वा दधि-क्षीर-घृत-क्षौद्रजलैस्तथेति ॥
तथापि एकादश्यामुपोषित इति लिंगानुगृहीतशिष्टवैष्णवदृढतरसमाचारबलाद्द्वादश्यामेव महोत्सवः ॥ ५६ ॥
रामार्चनचन्द्रिकायाम्—
आषाढशुक्लद्वादश्यां क्षीराब्धिशयनोत्सवः ।
कार्योऽन्यथा ह्यनावृष्टिः स्याच्च स्पुराणवाक्यतः ॥
तत्र श्रीकृष्णं सम्यक्तया संपूज्य वैष्णवानाहूय वस्त्रचन्दनादिभिः संपूज्य छत्रचामरध्वजापताका-सहितं श्रीकृष्णं नरयानैः नृत्यपूर्वकं जलसमीपे नयेत् । दधि च तत्र बहु स्थापयेत् । जला-

---

हरि क्षीरसागर में शेषनाग की शय्या पर सदा शयन करते हैं। पुराणसमुच्चय में आता है—आषाढ़ के शुक्ल पक्ष की एकादशी को उपवास करके भगवान् विष्णु की शंख-चक्र एवं गदाधारी मूर्ति की स्थापना करे। हे युधिष्ठिर ! वह मूर्ति सौम्य हो, उसको इतिहास पुराणों का जानने वाला विष्णुभक्त दूध, दही, घी एवं शर्करा युक्त जल से स्नान करा कर पीताम्बर धारण करावे। तत्पश्चात् सुन्दर पर्यंक पर चन्द्रमा के समान शुक्ल वस्त्र एवं तकिया लगा कर श्रीहरि को शयन करावे। यहाँ एकादशी का उपवास करे। इस प्रमाण को मानने वाले शिष्ट वैष्णव जन के सुदृढ़ व्यवहार से द्वादशी को ही महोत्सव करना चाहिए ॥५६॥
रामार्चनचन्द्रिका में आया है-आषाढ़ की शुक्ल-द्वादशी को श्रीहरि का "क्षीराब्धिशयनोत्सव" करना चाहिए, यदि यह उत्सव न कराया जायगा तो इसके फल स्वरूप अनावृष्टि होगी

भावे गृह एव भावयेत। तत्र सर्वोपचारपूर्वकं पुष्पाञ्जलिं दत्वा नीरे सिंहासनोपरि उपवेश्य ततः धूपादिनैवेद्यान्तं दत्वा प्रार्थयेत।

"सुप्ते त्वयि जगन्नाथ ! जगत्सुप्तं भवेदिदम् !
विबुद्धे तु विबुध्येत प्रसन्नो मे भवाच्युत ! ।
इति प्रार्थनामन्त्रम् ॥

तत्र चातुर्मास्यान्नियमान् गृह्णीयात् ।

"चतुरो बार्षिकान्मासान्देवस्योत्थापनावधि ॥
इमं करिष्ये नियमं निर्विघ्नं कुरु मेऽच्युत !"

इति, मंत्रेण नियमान्नवश्यं कुर्यात् ।

भविष्ये—

यो बिना नियमं मर्त्यो व्रतं बा जप्यमेव वा ।
चातुर्मास्यं नयेन्मूर्खो जीवन्नपि मृतो हि सः ॥

ऐसा पौराणिक बचन है । अतः आषाढ़ शुक्ल द्वादशी के दिन वैष्णबों को बुलाकर चन्दन-वस्त्रादिक सामग्री से श्रीकृष्ण की बिधान पूर्वक अर्चन करे और छत्र-चँवर-ध्बजा-पताका के साथ नृत्यादि करते हुए श्रीकृष्ण को जल के समीप ले जाय तथा वहाँ बहुत सा दधि रखे, जहाँ जलाशय न हो वहाँ घर में ही भावना करे और बहीं समस्त मनोहर उपचारों के साथ पुष्पाञ्जलि देकर जल में सिंहासन के ऊपर विराजमान करा कर धूपादि नैवेद्यान्त उपचार देकर प्रार्थना करे-हे जगन्नाथ ? आपके सो जाने पर सम्पूर्ण जगत सो जाता है और आप के जागने पर ही जागता है, हे अच्युत ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों । इस प्रकार चातुर्मास्य के नियमों को ग्रहण करे । मन्त्र—हे अच्युत ! मैं देबोत्थापन पर्यन्त वर्षा के चातुर्मास्य नियमों को पालन करूँगा आप मेरे इस व्रत को निर्विध्न करें । इस मन्त्र से संकल्प कर नियमों

तत्र श्रावणे शाकं, भाद्रपदे दधि, आश्विने दुग्धं त्यजेत । कार्त्तिके विशेषं बदयामि, अन्यच्च भक्तिकामनया त्यजेत् । निष्पावानादि राजमाषादिकं निषिद्धमेव चातुर्मास्ये । ततो गृहीतनियमः श्रीकृष्णं तथैव नीरान्मन्दिरमानयेत् ततः बैष्णवान् बस्त्रालंकारादिभिः संतोषयेत ॥ ५७ ॥

अथ श्रावणे कृत्यं—प्रतापमार्त्तण्डे स्कान्दवचनम्—

तृतीयायां यजेद्देवीं शंकरेण समन्विताम् ।
कुंकुमागुरु-कर्पूर-मणि-बस्त्र-सुधूपकैः ॥
स्रगंधधूपदीपैश्च दमनेन विशेषतः ।
आन्दोलयेत्ततो विप्र शिवोमा तुष्टते सदेति ॥
द्वादश्यां श्राबणे मासि सिते पक्षे पवित्रकम् ।
श्रीकृष्णायैव दातव्यं सवैष्णवांश्च बैष्णवैः ॥

को पालन करे । भविष्यपुराण बचन—जो मर्त्य (मनुष्य) व्रत, जप एवं नियम के बिना चातुर्मास्य बिता देता है वह मूर्ख जीता हुआ भी मृतक के समान है । उस चातुर्मास्य में श्रावण में शाक, भाद्र में दही, आश्विन में दूध का त्याग करना चाहिए । कातिक के विशेष आगे कहे जायँगे । भक्ति की कामना से अन्य बस्तुओं का भी त्याग करे । चातुर्मास्य नियम के करने वालों को निष्पाबादि तथा राजमाषादि भी निषेध हैं । इस प्रकार नियमी श्रीकृष्ण को जल से पुनः मन्दिर में ले आवे और वस्त्रालंकारों से वैष्णवों का पूजन करे ॥५७॥

अब श्रावण मास के कृत्यों का बर्णन करते हैं-प्रतापमार्त्तण्ड में स्कान्द बचन है-तृतीया का दिन शंकरदिवस है । उस दिन शंकरके सहित देवी की कुंकुम-अगुरु-कर्पूर-मणि-वस्त्र-धूप-माल्य-गंध-दीप द्वारा पूजा करे । दमनक पुष्प पूजन में विशेष फल दायक कहा गया है । तत्पश्चात् शिव पार्वती को झूले पर विराजमान करके

तथोक्तं बिष्णुरहस्ये—

पवित्रारोपणं बिष्णोर्भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
स्त्रीपुंकीर्त्तिप्रदं पुण्यं सुखसंपद्धनावहम ॥५८॥

अथ नित्यता वह्वृच परिशिष्टे—

बिधिना शास्त्रदृष्टेन यो न कुर्यात्पबित्रकम् ।
हरन्ति राक्षसास्तस्य बर्षपूजादिकं फलम् ॥

असंभवे कार्त्तिकाबधि शुक्लार्के कर्तव्यानीति नारदः ।

अथ बिधानम्—

"हेमैः रूप्यैस्ताम्रैः क्षौमैः सूत्रैः पद्मजतन्तुभिः ।
पवित्राणि कार्पासैस्तु कारयेत् काश-कुशकैः ॥"

बैष्णवीभिः पबित्रकं कुर्यात् । ततस्त्रिगुणितं सूत्रं त्रिगुणीकृत्य संस्कुर्यात्, कवचमंत्रेण पंचगव्यैरद्भिः प्रक्षालयेत, ततः श्रीकृष्णमंत्रेणाष्टोत्तारशतं सूत्रं प्रजप्य श्रीकृष्णगायत्र्या शंखोदकेन प्रोक्षयेत । ततः शुष्कं कृत्वा पबित्रकं कुर्यात । ततः

झुलावे, इससे गौरीशंकर सदा प्रसन्न होते हैं । श्रावण मास की शुक्ल-पक्षीय द्वादशी में भगवान् कृष्ण के लिए अन्य बैष्णवों के साथ मिलकर वैष्णव जन पवित्रक अर्पण करें । बिष्णुरहस्य में कहा है—भगवान विष्णु के लिए किया गया पवित्रारोपण समस्त स्त्रीपुरुषों को कीर्ति, पुण्य, सुख, संपत्ति, भक्ति एवं मोक्ष का देने वाला है ॥५८॥

अथ नित्यता-बह्वृच परिशिष्ट में-जो जन शास्त्र विधि के अनुसार पवित्रक नहीं अर्पण करता है उसके वर्ष भरके पूजादि के फलों को राक्षस हरण कर लेते हैं । यदि उक्त दिन पवित्रक न हो सके तो कातिक शुक्ल पक्ष तक अवश्य करना चाहिए यह नारदजी का कथन है । अब पबित्रक का विधान कहते हैं-स्वर्ण, चाँदी, ताँबा, क्षोम, रेशम, कमलतन्तु अथवा कपास के प्रसिद्ध बैष्णवी तागों

श्रीकृष्णस्य जानूरुनाभि-प्रमाणकानि त्रीणि क्रमेण साष्टशतेन प्रथमं, चतुः पंचाशतेन मध्यमं, सप्तविंशत्या कनिष्ठं कुर्यात् । आद्ये षट् त्रिंशद्ग्रंथय मध्ये चतुर्विंशद् ग्रंथयः कनिष्ठे द्वादशग्रंथयः । चतुर्थं च वनमालाख्यं श्रीकृष्णमुकुटमारभ्य पादपर्यन्तं अष्टोत्तारसहस्रसूत्रकेण कुर्यात् ग्रंथयस्तु अष्टोत्तारशतम् ॥ ५९ ॥

रामार्च्चनचन्द्रिकायाम्—

तत्रोत्तामं च पत्रं तु षष्टया सह शतैस्त्रिभिः ।
सप्तत्या सहितं द्वाभ्यां पवित्रं मध्यमं स्मृतम् ॥
साशीतिना शतेनैव कनिष्ठं तत्समाचरेत् ।

यद्वा—तत्रैवाष्टोत्तारशत-तदर्द्धार्द्धं नवसूत्री--कृतेन च ।

तत्रैव—

आरभ्य मुकुटं यावत्सूत्रैर्विरचिता शुभा ।
आपादलम्बिनी माला बनमाला प्रकीर्त्तिता ॥

से पबित्रक का निर्माण करावे । तत्पश्चात् उसको त्रिगुण बनाकर पुनः त्रिगुण करे अर्थात् ९ तारों का वना कर कवच मन्त्र से संस्कार करे और पञ्चगव्य तथा शुद्ध जल से प्रक्षालन करे । पुनः श्रीकृष्ण-मन्त्र के १०८ मंत्र जप कर श्रीकृष्ण-गायत्री के द्वारा शंख जल से प्रोक्षण करे फिर उसे सुखाकर पवित्र करे फिर श्रीकृष्ण के घुटने, जंघा और नाभि के प्रमाण से ३ सूत्रों को क्रमशः १०८ प्रथम, ५४ मध्यम, एवं २७ का लघु बनावे । प्रथम में ३६ ग्रन्थि, मध्यम में २४ ग्रन्थि तथा लघु में १२ ग्रन्थि का निर्माण करे । इसी प्रकार बनमाला नामक चतुर्थ सूत्र निर्माण करे जो श्रीकृष्ण के मुकुट से लेकर चरण-पर्यन्त नापे, पुनः उसे १०८ बृत्ति बाला बना उसमें १०८ ही ग्रन्थि लगावे ॥५९॥

रामार्चनचन्द्रिका में आया है-वत्रोत्तमं च पत्रं तु षष्ट्य सह शतै-

गुरोः पवित्रं वैष्णवानां स्वस्य च यथा संभवं कार्यं, साधारणं पबित्रकं तु त्रिभिः सूत्रैः समाना ग्रन्थयः कुर्यात् ।

तथोक्तं—

ग्रन्थीन् कुर्वीत सर्वत्र सुवृत्तान् सुमनोहरान् ।
न वै बिषमसंख्याकान् ग्रन्थीन् कुर्वीत कुत्रचित् ॥

ततः काश्मीरागुरुरोचनादिना रञ्जयित्वा बस्त्रेणाच्छाद्य-वैष्णवपटले स्थापयेत् ॥ ६० ॥

अथाधिबासनम्—

एकादश्यां सायं समये स्नानं कृत्वा श्रीकृष्णं महास्नानादिभिः संपूज्य महानैवेद्यं समर्पयेत् । बैष्णवानाहूय श्रीकृष्णमन्दिरं ध्वजा-पताकादिभिरलंकृतं कुर्यात् ।

स्त्रिभिः । सप्तत्या सहितं द्वाभ्यां पवित्रं मध्यमं स्मृतम् । साशीतिना शतेनैव कनिष्ठं तत्समाचरेत् ॥ अथवा-तत्रैवाष्टोत्तरशततदर्द्धार्द्ध-नवसूत्री-कृतेन च ॥

अर्थात् ३६० आबृति का उत्तम सूत्र और २७० का मध्यम एवं १८० का कनिष्ट सूत्र निर्माण करे । अथवा १०८ का उत्तम, उससे आधे का मध्यम और उससे भी आधे का कनिष्ठ सूत्र नौ नौ तारों का वनावे । और फिर वही (रामार्चनचन्द्रिका) में आता है-कि मुकुट से पाद पर्यन्त नाप कर बनाई हुई बनमाला नाम से कही जाती है । इसी प्रकार गुरु के, अपने तथा वैष्णवों के यथा संभव पबित्रक निर्माण करे और वे त्रिवृत बनावे तथा सुन्दर ग्रन्थियाँ लगावे । कहा गया है-कि ग्रन्थी मनोहर और वर्तुलाकार होनी चाहिए, ग्रन्थिसंख्या कभी बिषम न होनी चाहिए । तत्प-श्चात् पवित्रक बना कर उन्हें केशर, अगुरु, गोरोचना आदि से रंग कर बस्त्र से ढ़क कर बाँस की छत के नीचे रखे ॥६०॥

अब अधिवास का नियम कहते हैं-एकादशी को सायंकाल

ततः सर्वतो-भद्रं श्रीकृष्णाग्रे कृत्वा—श्रीकृष्णपश्चाद्भागे सामग्रीं स्थापयेत् ।

तथोक्तं—

देवस्य पृष्ठतः स्थाप्यं दन्तकाष्ठं जलं कुशान् ।
मृत्तिकां च हरिद्रां च कुष्टं गोरोचनानि च ॥
पादुकोपानहौ छत्रं चामरं व्यजनं तथा ।
व्रीह्यादीनि च धान्यानि पुरतः स्थापयेत्तथा ॥
दण्डवत्प्रणिपातैश्च स्तोत्रैर्नानाविधैस्तथा ॥

इति महावैभवैः श्रीकृष्णं संपूज्य ततः गुरुं प्रणम्य पवित्र-पूजनं कुर्यात् । यथा—सर्वतो मंडले पूर्णं कलशं स्थाप्य तदुपरि सूत्रे पवित्राबाहनं कुर्यात् ।

"सांवत्सरस्य यागस्य पवित्री-करणाय भो ! ।
बिष्णुलोकात्पबित्राय आगच्छेह नमोऽस्तु ते" ॥

स्नान करके महास्नान आदि से श्रीकृष्ण की पूजा करके नैवेद्य समर्पण करे और वैष्णवों को बुला कर श्रीकृष्ण-मन्दिर को ध्वजा-पताका आदि से सजावे । तत्पश्चात् सर्वतोभद्र श्रीकृष्ण के आगे निर्माण करके श्रीकृष्ण के पीछे भाग में सामग्री रखे । श्री-कृष्ण के पश्चाद्‌भाग में सामग्री की स्थापना करे । जैसा कि कहा है-देवता के पृष्ठ भाग में दन्त-काष्ठ, जल, कुश, मृत्तिका, हरिद्रा, कुष्ठ, गोरोचनादि रखे तथा पादुका, उपानह, छत्र, चँवर, व्यजन, अंकुरादि तथा धान्यादि सम्मुख में रखें । दण्डवत्, प्रणाम, नानाप्रकार स्तोत्रों से देव की सेवा करे । इस प्रकार महाविभवों से श्रीकृष्ण का पूजा कर तत्पश्चात् गुरु को प्रणाम कर पवित्रा का पूजन करे । पूजन प्रकार यह है-सर्वतोभद्रमण्डल में पूर्ण कलश की स्थापना कर उसके ऊपर सूतों से पवित्रा का आबा-हन करे । "सांवत्सरीक याग के पवित्र करने के लिये बिष्णुलोक

इत्यावाहनं मन्त्रपूर्वं स्वमूलमन्त्रं स्मरेत । ततः ईश्वर-पवित्रकं मूलमन्त्रं पठन् सान्निध्यं चिंतयेत । तथैव श्रीलक्ष्मी-पवित्रकं च लक्ष्मीमन्त्रपूर्वकं स्मरेत । उपास्यभेदेन तत्तान्मन्त्रभेदान् स्मरेत । लक्ष्मी-नारायणं, जानकीरघुवरं, लक्ष्मीनृसिंहं, श्रीराधादामोदर-मित्याद्युपासनाभेदेनोपचरेत । ततः गन्धपुष्पाक्षतैः संपूज्य धूप-दीपनैवेद्यं च पवित्रां दद्यात् । ततः श्रीकृष्णकरे बितस्तिमात्रं डोरकं बध्नीयात् ॥

तथोक्तं—

अथ देवकरे विद्वान् गन्ध-सूत्र-समुद्भवम् ।
बितस्तिमात्रकं डोरं बध्नीयात्मंगलात्मकमिति ॥

ततः श्रीकृष्णं गन्धधूपादिभिः पूजयेत ततस्तवं कुर्यात् ।

ततः प्रार्थना मन्त्रः—

ओं आमंत्रितोऽसि देवेश पुराणपुरुषोत्तम !
प्रीतस्त्वां पूजयिष्यामि संनिधौ भव ते नमः ॥

से आप आईये, पवित्रे आप को नमस्कार" इस आवाहन मन्त्र के साथ अपने मूलमंत्र का स्मरण करे । तदनन्तर ईश्वर पवित्रक-मूल-मन्त्र का पाठ कर निकट में चिन्तन करे । उस प्रकार श्री-लक्ष्मी पवित्रा को लक्ष्मीमन्त्र पाठ पूर्वक स्मरण करे । उपास्य-भेद से मन्त्रों का भेद है । लक्ष्मी-नारायण, जानकी-रघुवर, लक्ष्मी-नृसिंह, श्रीराधा-दामोदर इस प्रकार उपास्य भेद है जानना । तदनन्तर गंध-पुष्प अक्षतों से पूजन कर धूप-दीप-नैवेद्यों का अर्पण करे । अब श्रीकृष्ण के हाथ में वितस्ति परिमाण से डोर का बन्धन करे । जैसा कि कहा है अनन्तर विद्वान देवता के हाथ में गन्ध-सूत्र-से समुद्भव, बितस्ति-परिमाणक, मंगलमय डोर को बांधे । पश्चात् गन्ध-धूपादिओं से श्रीकृष्ण की पूजा करे, तदनन्तर स्तव पाठ करे । प्रार्थना मन्त्र-हे देवेश ! हे पुराण-पुरु-

ततः श्रीकृष्णं प्रणम्य पवित्रपूजनं कुर्यात् । अस्त्रेण रक्षणं कवचेनावगुण्ठनं चक्रेण रक्षणं नृसिंहबीजेन वा । ततः गुरुं वस्त्रादिना संपूज्य जागरणं कुर्यात् ॥ इत्यधिवासनम् ॥ ६१ ॥

ततः प्रातः समुत्थाय स्नानादिकं बिधाय नित्यसेवां कुर्यात् तथा पवित्रं च पूजयेत । ततः पवित्राङ्गत्वेन पुनः श्रीकृष्णं पूजयित्वा नीराजनं कृत्वा जयघोषादिपूर्वकं गंधदूर्बाक्षतयुक्तैः श्रीकृष्णाय मूलमंत्रमुच्चरन् तथैव ध्यायन् सूत्रकं दद्यात । ततस्तथैव बैष्णवान् , ततः उत्सवं समाप्य स्वयं बैष्णवैः सह महाप्रसादं गृह्णीयात् ।

मासं पक्षमहोरात्रं त्रिरात्रं धारयेत्तथा ।
देवे तत्सूत्रसंभेदे देशकाल-विवक्षया ॥

षोत्तम ! तुम्हारा पूजन करता हूँ, संनिधि में हो, तुमको नमस्कार । तदनन्तर श्रीकृष्ण को प्रणाम कर पवित्रा की पूजा करे । अस्त्र-मन्त्र से रक्षण, कवच मन्त्र से अवगुण्ठन, चक्र-मन्त्र से अथवा नृसिंह-बीज से रक्षण करे । अनन्तर बस्त्रादि से गुरु का पूजन कर जागरण करे । यह अधिवास है ॥६१॥

तदनन्तर प्रातः काल में उठ कर स्नानादिक कर नित्यसेवा करे एवं पवित्रा का पूजन करे । तदनन्तर पवित्रा के अंग रूप से पुनः श्रीकृष्ण का पूजन कर, जयघोष वाद्यादि के साथ गंध-दूर्वा अक्ष-तादि से संयुक्त नीराजन करे । मूल-मन्त्र का उच्चारण करे, ध्या-नादि कर श्रीकृष्ण के लिये सूत्र प्रदान करे तथा वैष्णवों को भी अर्पण करे । तदनन्तर उत्सव समाप्त कर स्वयं वैष्णवों के साथ महाप्रसाद ग्रहण करे । एकमास पर्य्यन्त, अथवा एक पक्ष तक, किम्वा अहोरात्र तक अथवा त्रिरात्र पर्य्यन्त देश-काल का बि-चार करते देबता में धारण करावे । प्रतिदिन स्नानादि कार्य्य में

प्रत्यहं स्नानकार्यादौ सूत्राण्युत्तार्य कारयेत् ।
अभिषिच्याथतोयेन पुनर्देवे निवेशयेत् ॥
इति पवित्रारोपणम् ॥ ६२ ॥

अथ भाद्रकृत्यम्—

कृष्णपक्षे भाद्रपदे ह्यष्टमी कृष्णवल्लभा ।
उपोष्या सर्वपुरुषैः वैष्णवैश्च विशेषतः ॥

अकरणे प्रत्यवायश्रवणान्नित्यत्वम् ।

विष्णुरहस्ये—

शूद्रान्नेन तु यत्पापं शवहस्तस्थभोजने ।
तत्पापं लभते पुंभिर्जयन्त्यां भोजने कृते ॥
गृध्रमांसं खरं काकं श्येनं वा मुनिसत्तम ! ।
मांसं च द्विपदां भुंक्ते भुञ्जन्-जन्माष्टमीव्रते ॥
जन्माष्टमी-दिने प्राप्ते येन भुक्तं द्विजोत्तम ! ॥
त्रैलोकसम्भवं पापं भुक्तमेव न संशयः ॥ ६३ ॥

सूतों को उतार कर अर्घ्यजल से सींचन कर पुनः देवता में विराजमान करावे ॥६२॥

भाद्रकृत्य—भाद्रपद के कृष्णपक्ष की अष्टमी कृष्णवल्लभा मानी जाती है। समस्त पुरुषों से बिशेष रूप से वैष्णवों से वह उपोषिता है । इसके न करने में महाप्रत्यवाय सुना जाता है अतः इसकी नित्यता है । बिष्णुरहस्य में कहा है-शूद्र के अन्नों में जो पाप है तथा शव हस्त स्थित भोजन में जो पाप हे वह पाप जयन्ती के दिन भोजन करने से मनुष्यों को लगता है। हे मुनिश्रेष्ठ ! जन्माष्टमी के दिवस भोजन करने से वह गृध्रमांस, गर्दभमांस-काकमांस, कुत्ते के मांस, दो पद धारियों के मांस का भोजन करता है । हे द्विजोत्तम ! जो व्यक्ति जन्माष्टमी के दिन प्राप्त होने पर भोजन करता है वह तीन लोक उत्पन्न पापों का भोजन

अथ निर्णयम्—

रोहिणीयोगे जयन्ती बिष्णुधर्मे—

अष्टमी कृष्णपक्षस्य रोहिणीऋक्षसंयुता ।
भवेत्प्रौष्ठपदे मासि जयन्ती नाम सा स्मृता ॥

बिष्णुरहस्ये—

प्राजापत्यर्क्षसंयुक्ता कृष्णा-नभसि चाष्टमी ।
मुहूर्त्तमपि लभ्येत सैवोपोष्या महाफला ॥

बिष्णुपुराणे—

कृष्णाष्टम्यां भवेद्यत्र कलैका रोहिणी नृप ! ।
जयन्ती नाम सा ज्ञेया उपोष्या सा प्रयत्नतः ॥ ६४ ॥

अष्टमीशुद्धैवोपोष्या—

वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमीसंयुताष्टमी ।
बिना ऋक्षेण कर्त्तव्या नवमी-संयुताष्टमी ॥

करता है उसमें कोई सन्देह नहीं है ॥६३॥

जन्माष्टमी का निर्णय—रोहिणी-नक्षत्र संयोग से जयन्ती होती है । विष्णुधर्म्म में कहा है- भाद्रमास के कृष्णपक्ष की अष्टमी रोहिणी-नक्षत्र से संयुक्त होने पर जयन्ती नाम से कही जाती है । बिष्णुरहस्य में कहा है-यदि भाद्रमास की कृष्णाष्टमी प्राजापत्य—नक्षत्र से संयुक्त होकर मुहूर्त्त मात्र ठहरती है तो वह उपोषिता होती है, जो कि महाफल को देने वाली है। विष्णुपुराण में कहा है-हे राजन् ! यदि कृष्णाष्टमी में कला-मात्र रोहिणी रहती है तो बह तिथा जयन्ती है एसा जानना। बह यत्न पूर्वक उपोषित होती है ॥६४॥

शुद्धा अष्टमी ही उपोषिता होती है, सप्तमी संयुत अष्टमी यत्न पूर्वक बर्जनीय है नवमी संयुत अष्टमी नक्षत्र के बिना भी करणीय है । अन्यत्र कहा है-उदयकाल में

अन्यत्र—

उदये चाष्टमी किंचित्सकला नवमी यदि ।
प्राजापत्यर्क्षसंयुक्ता सैवोपोष्या महाफला ॥ ६५ ॥

भविष्ये—

नवम्यां योगनिद्राया जन्माष्टम्यां हरेस्ततः ।
नवम्या सहितोपोष्या रोहिणीबुध-संयुता ॥

माधव्या—ब्रह्मवैवर्त्ते—

सप्तमी नाष्टमी युक्ता न सप्तम्यां युताष्टमी ।
सर्वेषु व्रतकल्पेषु अष्टमी परतः शुभेति ॥

माधव्या यमपुराणे—

"नाष्टमी सप्तमी युक्ता सप्तम्या नाष्टमी युता ।
नवम्या सह कार्या स्यादष्टमी नात्र संशय" इति ॥ ६६ ॥

ननु—"कार्या विधापि सप्तम्या रोहिण्या सहिताष्टमी"ति सप्तमी विद्धा विधायकं । अन्यत्र च-सप्तमी-विद्धा-निषिद्धवाक्यानामप्य-

---

शुद्ध अष्टमी है, नवमी कलायुक्त है अथच प्राजापत्य नक्षत्र से संयुक्त है वह उपोषित है जो कि महाफल-को देने वाली है ॥६५॥

भविष्य में कहा है—नवमी में योगनिद्रा का जन्म तदनन्तर अष्टमी में हरि का जन्म है । अतः रोहिणी तथा बुद्ध नक्षत्र से संयुक्त अष्टमी नवमी के साथ उपोषित है । माधवी ने ब्रह्मवैवर्त्त के बचन का उद्धरण किया है । यथा—सप्तमी, अष्टमी से संयुक्त न हो, सप्तमी में अष्टमी का संयोग नहीं होना चाहिये । समस्त व्रतकल्पों में पर अष्टमी अर्थात् नवमी युक्त अष्टमी शुभा मानी जाती है । माधवी ने यमपुराण के वचन का उद्धरण किया है- सप्तमी युक्त अष्टमी नहीं मानी जाती है, न सप्तमी से युक्त अष्टमी करणीय है इसमें कोई सन्देह नहीं हैं ॥६६॥

अच्छा ? "सप्तमी से वेध प्राप्त रोहिणी संयुक्त अष्टमी कर-

यमर्थः यद्युभये दिने ह्यर्द्धरात्रे रोहिणीयोगस्तदा सप्तमी विद्धा त्याज्येति चेन्मैवं "स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्ग इति चेन्नान्यस्मृत्यनवकाश-दोषप्रसंगादि"त्यधिकरणन्यायेन स्वैरेववाक्यैः सप्तमी-विद्धा-निषेध-शुद्धाष्टमी-व्रत-निश्चयात् । यदि चोभये दिने रोहिण्या योग-व्यवस्था विद्धा निषिद्धा स्यान्नाह ॥ पाद्मवचनम्—शुद्धानवमीव्रत-प्रतिपादकवाक्यस्य बाध-प्रसंगात् । नृसिंहपरि-चर्यादिकार-निबंधकृद्भिस्तथैवोदाहृतत्वान् ॥

तथाहि पाद्मे—

जन्माष्टमीं पूर्वविद्धां सऋक्षां सकलामपि ।
विहाय नवमीं शुद्धामुपोष्य व्रतमाचरेत् ॥

अत एव न शुक्लाकृष्णपक्षत्वेन व्यवस्था ।
एतेनैवार्द्धरात्रयोगप्रतिपादकमपि वाक्यं वेधाभावे बोध्यम् ॥६७॥

णीय है" यहाँ सप्तमी वेधा का बिधान है । अन्यत्र भी कहा है-सप्तमी-बिद्धा के निषिद्ध बाक्यों का भी यही अर्थ है । यदि उभय दिवस में अर्द्धरात्रि पर रोहिणी का योग है तब सप्तमी विद्धा अष्टमी त्याज्या है ऐसा कहोगे तो नहीं माना जायेगा । क्योंकि "स्मृति का अनवकाश दोष प्रसंग ऐसा कहोगे तो अन्य स्मृति का भी अनबकाश दोष प्रसंग उठ सकता है" इस बारे में क्या उत्तर देओगे । तुमने अपने बचनों से ही सप्तमी-बिद्धा से निषेध शुद्धाष्टमी ब्रत का निश्चय किया है । यदि दोनों दिन रोहिणी योग की व्यवस्था हो तो विद्धा का निषेध हो ऐसा नहीं । पद्मपुराण का बचन है कि—इससे शुद्धा नवमी ब्रत प्रतिपादक बाक्य का बाध हो जायगा । ऐसा ही नृसिंहपरिचर्यादि निबन्ध-ग्रन्थकर्ताओं ने उदाहरण दिए हैं । जैसे कि पद्मपुराण में-जन्मा-ष्टमी नक्षत्र से तथा कला से भी युक्त हो परन्तु पूर्वविद्धा हो तो उसको छोड़ कर शुद्ध नवमी में ही उपबास करके ब्रत करे । इस

ब्रह्मवैवर्त्ते—

बर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमी संयुताष्टमी ।
सा ऋक्षापि न कर्त्तव्या सप्तमी संयुताष्टमी ॥

पाद्मे-तथाष्टमीं पूर्वबिद्धां सऋक्षां च बिवर्जयेत् ।

स्कान्दे—

"जन्माष्टमी पूर्वबिद्धा न कर्त्तव्या कदाचन ।
पलवेधेऽपि बिप्रेन्द्र ! सप्तम्या चाष्टमीं त्यजेत् ॥
सुराया बिंदुना स्पृष्टं गंगाम्भः कलसं यथे"ति ।
बिना ऋक्षेण कर्त्तव्या नवमी-संयुताष्टमी ॥
सऋक्षापि न कर्त्तव्या सप्तमी-संयुताष्टमी ॥ ६८ ॥

अग्निपुराणे—

बर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमी—सयुताष्टमी ।
सऋक्षापि न कर्त्तव्या सप्तमी—संयुताष्टमी ॥

लिए कृष्णपक्ष, शुक्लपक्ष की कोई व्यवस्था नहीं है । इससे अर्ध रात्रियोग के प्रतिपादक वाक्य भी वेध के अभाव में ही जानने चाहिए ॥६७॥

ब्रह्मवैवर्त्त में कहा है—सप्तमी से संयुक्त अष्टमी को प्रयत्न पूर्वक त्याग देना चाहिए, यदि नक्षत्र (रोहिणी) युक्त अष्टमीमें भी सप्तमी का सम्बन्ध हो तो वह कभी नहीं करनी चाहिए। पद्म-पुराण में—पूर्व विद्धा अष्टमी अर्थात् सप्तमी बिद्धा अष्टमी नक्षत्र संयुक्त होने पर भी न करे। स्कन्दवाक्य-यह है-हे विप्रेन्द्र ! एक पलमात्र को भी यदि सप्तमी का वेध है तो पूर्वविद्धा अष्टमी को त्याग देना चाहिए। जैसे मदिरा की एक बूँद के छू जाने से गंगाजल त्याग दिया जाता है। नवमी युक्त अष्टमी, बिना नक्षत्र के भी करनी ठीक है परन्तु सप्तमी युक्त अष्टमी, नक्षत्र योग में भी नहीं करनी चाहिए ॥६८॥

पाद्मे—

पंचगव्यं यथा शुद्धं न ग्राह्यं मद्यसंयुतम् ।
रवि-बिद्धा तथा त्याज्या रोहिण्या सहिताष्टमी ॥

माधव्या स्कन्धपुराणे—

अष्टमी नवमीमिश्रा कर्त्तव्या भूतिमिच्छता ।
सप्तम्या चाष्टमी चैव न कर्त्तव्या शिखिध्वजेति-

माधव्या—बिष्णुधर्मोत्तरे—

एकादश्यष्टमी षष्ठी द्वितीया च चतुर्द्दशी ।
अमावास्या तृतीया च नोपोष्या च पूर्वान्विता ॥ इति

स्कान्दे—

नाष्टमी सप्तमी—युक्ता सप्तमी चाष्टमीयुता ।
नवम्या सह कार्या स्यादष्टमी नात्र संशयः ॥ इति ॥

अग्निपुराण में कहा है-सप्तमी युक्त अष्टमी प्रयत्न पूर्वक छोड़ दे, चाहे वह नक्षत्र से युक्त भी हो तो भी न करे। पद्मपुराण बचन-जैसे शुद्ध पञ्चगव्य मद्य के संयोग से अग्राह्य होता है उसी प्रकार रविबिद्धा (सप्तमीविद्धा) रोहणीयुक्त अष्टमी भी अग्राह्य ही है। माधवी ने स्कन्दपुराण का बचन उद्धृत करते हुए कहा है-हे शिखिध्वज ! ऐश्वर्य की कामना करने वाले को नवमीमिश्रा अष्टमी ही करनी चाहिए, सप्तमी युक्ता अष्टमी कभी नहीं करनी चाहिए। इसी प्रकार बिष्णुधर्मोत्तर का प्रमाण देते कहा है-एका-दशी, अष्टमी, षष्ठी, द्वितीया, चतुर्दशी, अमावास्या और तृतीया इनका पूर्वविद्धा में कभी उपवास नहीं करना चाहिए। स्कन्द-पुराण का बचन है-सप्तमी युक्ता अष्टमी और अष्टमी युक्ता सप्तमी नहीं करनी चाहिए। नवमी युक्त अष्टमी को संशय रहित होकर करे। माधवी के उद्धृत स्कन्द वाक्य है—पञ्चमीयुक्त षष्ठी, सप्तमीयुक्त-अष्टमी एवं चतुर्दशीयुक्त अमावास्या मुनिवरों द्वारा

माधव्याम्-स्कन्दपुराणे—

नागविद्धा तु या षष्ठी सप्तम्या तु यदाष्टमी ।
भूतविद्धा अमावास्या न ग्राह्या मुनिपुंगवैरिति ॥ ६६ ॥

यद्वा—यद्यपि साक्षाद्वैष्णवावैष्णवव्यवस्था नास्ति तथापि अर्थतो वैष्णवव्यवस्था ज्ञातव्या। तथाहि रोहिणी—सम्बन्धे पारणानिषेधवाक्येनार्थतः पूर्वविद्धै वायाति। अथ च सप्तमीविद्धात्यागपूर्वकं नवमी-शुद्ध-स्वीकारेण सप्तमी-बिद्धानिषिद्धैवायातीति—गत्यंतराभावादर्थतो वैष्णवावैष्णवव्यवस्थया पर्यवस्यतीति केचिदलमति विस्तरेण ॥ ७० ॥

अथ पारणनिर्णयः—

सर्वेषु व्रतेषु प्रातरेव पारणमुत्सर्गः ॥
विशेषस्तु ऋक्षाभावे तिथ्यभावे चोभयभावे वा पारणम् ।

ग्राह्य नहीं हैं ॥६६॥

यहाँ पर यद्यपि वैष्णव अथवा अवैष्णव की व्यवस्था नहीं है तथापि अर्थ द्वारा यह वैष्णव-व्यवस्था समझनी चाहिए। जैसे कि रोहिणी सम्बन्ध में पारणा-अनिषेध वाक्य से अर्थद्वारा पूर्वविद्धा आजाती है और सप्तमीविद्धात्याग पूर्वक नवमी शुद्ध स्वीकार से सप्तमी बिद्धा का निषेध होता है, इसी प्रकार कथन-परिपाटी से अर्थद्वारा वैष्णव -अवैष्णव व्यवस्था का पर्यवसान है। ऐसा किन्हीं आचार्य्यों का मत है। अधिकबिस्तार से क्या है ॥७०॥

अथ पारणा-निर्णयः—सभी व्रतों में प्रातः काल पारण ही सामान्य नियम है। पारण के विशेष नियम-नक्षत्र के अभाव तथा तिथि के अभाव एवं दोनों के अभाव में पारण होता है। जैसे कहा है—जब विद्वानों ने रोहिणीयुक्ता में उपबास किया तब वे ब्रह्मवादी उस रोहिणी के अभाव में ही पारण करें। अग्नि

तथोक्तं—

रोहिणी-संयुता चेयं बिद्वद्भिः समुपोषिता ।
बियोगे पारणं कुर्युरुभयो ब्रह्मवादिनः ॥

वह्निपुराणे—

भान्ते कुर्यात्तिथेर्वापि शस्तं भारत ! पारणमिति-

तथैव—

सांयोगिके व्रते प्राप्ते यत्रैकोऽपि वियुज्यते ।
तत्रैव पारणं कुर्यादेवं बेदबिदो विदुः ॥

ब्रह्मवैवर्त्ते—

अष्टम्यामथ रोहिण्यां न कुर्यात्पारणं क्वचित् ।
हन्यात्पुराकृतं कर्म उपबासार्जितं फलम् ॥
तिथिरष्टगुणं हन्ति नक्षत्रं च चतुर्गुणम् ॥
तस्मात्प्रयत्नतः कुर्यात्तिथिभांते च पारणमिति ॥

बायुपुराणे—

यदीच्छेत्सर्वपापानि हन्तुं निरवशेषतः ।
उत्सबान्ते सदा विप्र ! जगन्नाथान्नमाशयेत ॥ ७१ ॥

पुराण वचन—हे भारत ! नक्षत्र एवं तिथि के अन्त में ही पारण उत्तम मानी गई है। वहीं पर पुनः कहा है—जिस व्रत में तिथि-नक्षत्र का संयोग प्राप्त हो उनमें एक का वियोग होने पर पारण करनी चाहिए ऐसी वेद के विद्वानों की सम्मति है। ब्रह्मवैवर्त में कहा है-अष्टमी और रोहिणी में कभी पारण नहीं करना, इससे उपबास द्वारा अर्जित पूर्वफल नष्ट हो जाते हैं। तिथी आठगुणा एवं नक्षत्र चारगुणा फल को नष्ट कर देते हैं इस लिए प्रयत्न पूर्वक तिथि तथा नक्षत्र के अन्त में ही पारण करनी चाहिए। वायु-पुराण में कहा है—हे बिप्र ! जो कोई अपने सम्पूर्ण पापों को समूल नाश करना चाहता है वह उत्सव के अन्त में जगन्नाथ के

अथ जन्माष्टम्यर्द्ध रात्रकृत्यम्—

पूर्वस्थल-द्वयं कल्पं जन्म-स्थानं च गोकुलम् ।
पूर्वं गोष्ठं त्वलंकारैः ध्वज-तोरण-मौक्तिकैः ॥
पूगीफलयुतस्तंभैः कदलीभिश्च चित्रकैः ।
वर्णकैर्विविधैश्चैव शय्या—भोजन—पानकैः ॥
अन्यैश्च विविधैः पुष्पैरलंकुर्वीत वैष्णवः ।
भोज्य-भक्ष्याणि सर्वाणि पायसान्तानि कारयेत् ॥
व्रजेश्वरं व्रजेशीं च गोपान् गोपींश्च वेशयेत ।
गाश्च वत्सान् वत्सतरीं संपाद्यैव च गोरसान् ॥

इत्यादि रीत्या गोष्ठमलंकृत्य अर्द्धरात्रे श्रीकृष्णप्रादुर्भावं संभाव्यातः पंचामृतादिभिः महास्नानं कारयित्वा महानैवेद्यं समर्प्य ततः यमुनामुलंघ्य गोष्ठे श्रीकृष्णं प्रापयेत्ततः श्रीव्रजेश्वरगृहे सर्वेषां सोपहाराणामागमनं, ततः प्रसिद्धरीत्या महोत्सवं

प्रसादान्न भक्षण करे ॥७१॥

सम्प्रति जन्माष्टमी में अर्ध-रात्रि का कृत्य कहते हैं—पहिले सुन्दर पवित्र भूमि पर गोकुल, (गोष्ठ) एवं जन्म-स्थान की कल्पना (योजना) करे। उस स्थान को वैष्णव अलंकार, ध्वजा, तोरण-मोतियों से, सुपारीयुक्त स्तम्भ एवं केलेके खम्भों से सजावे, अनेक प्रकार के रंग, शय्या, भोजन, पानक, तथा अनेकप्रकार के फूलों से सजाकर करें और अनेक प्रकार के भोज्य एवं भक्ष्य (खीर इत्यादि) का निर्माण करावे। पुनः उस स्थान पर नन्द, यशोदा, गोप, गोपी, गौएं, बछड़े, बछियाँ एवं दूध, दही, मक्खन आदि का भली प्रकार संपादन करे। इस रीति से गोष्ठ को सजा कर श्रीकृष्ण के प्रादुर्भाव की संभावना करे। पञ्चामृत से श्रीकृष्ण को स्नान करावे, नैवेद्य समर्पण करे, तत्पश्चात् यमुना को लाँघ कर श्रीकृष्ण को गोष्ठ में पहुँचावे। वहाँ व्रजेश्वर के घर में सब उप-

महादानं च कारयेत् ॥ ७२ ॥

अथ भाद्रपदशुक्लैकादश्यां कटिदानं—ततः जलाशये श्रीकृष्णं नरयानेन संप्राप्य तत्र महानैवेद्यपूर्वकं प्रार्थयेत् कीर्त्तयेत् च ॥

भविष्ये—

प्राप्ते भाद्रपदे मासि एकादश्यां सितेऽहनि ।
कटिदानं भवेद्विष्णोर्महापातकनाशनमिति ॥

अथ प्रार्थना—

देवदेव ! जगन्नाथ ! योगिगम्य ! निरञ्जन ! ।
कटिदानं कुरुष्वाद्य मासि भाद्रपदे शुभे ॥ ७३ ॥

अथ श्रवणाद्वादशी —

तत्र श्रवणाद्वादशी नित्या अकरणे प्रत्यवायश्रवणात् ॥

तदुक्तं पाद्मे-मार्कण्डेयं प्रति भगवद्वाक्यम्—

न करिष्यन्ति ये लोके द्वादश्यष्टौ ममाज्ञया ।
तेषां यमपुरे वासो यावदाहूतसंप्लवमिति ॥

द्वादश्याष्टौ पक्षवर्द्धन्यादयस्तन्मध्ये श्रवणाद्वादशी विजया ॥

हारों को भिजवावे पुनः प्रसिद्धरीति से वहाँ महोत्सव तथा महादान करावे ॥७२॥

भाद्रपद शुक्ल एकादशी को कटिदान अर्थात् श्रीकृष्ण को पालकी द्वारा जलाशय में ले जाय वहाँ नैवेद्य का भोग लगावे, प्रार्थना तथा कीर्तन करे। भविष्यपुराण में कहा है—भाद्र मास की शुक्लपक्ष की एकादशी के दिन भगवान् बिष्णु के कटिदान करने से महा पातकों का नाश हो जाता है। प्राथना-हे देवदेव ! हे योगियों द्वारा गम्य ! हे निरञ्जन ! आज शुभ भाद्र मास में कटिदान कीजिए ॥७३॥

सम्प्रति श्रवणा द्वादशी के विषय में कहते हैं-श्रवणा द्वादशी नित्या है, अवश्य करनी चाहिए। क्योंकि इसके न करने से दोष

तदुक्तं बाराहे—

यदा तु शुक्लद्वादश्यां नक्षत्रं श्रबणं भवेत् ।
बिजया सा तदा प्रोक्ता तिथीनामुत्तमा तिथिः ॥ ७४ ॥

इति । यदि त्वनित्यत्वं तस्याः तर्हि एकादशीव्रतशैथिल्येन द्वादशीव्रतदार्ढ्यविधानं न स्यात् ॥ "उपवासद्वयं कुर्याद्‌उभयो-र्दैवतं हरिः" इत्यादि सयुक्ति-र्बिधानं च न स्यात् । "पारणस्य जलेनाप्युपपद्यमानत्वात्"। केचित्तु बैष्णवबिषयत्वे अनन्ये श्री-बामनोपासकत्वेन बा नित्यत्वं स्वीचक्रुः ॥ ७५ ॥

ब्रह्मबैवर्त्ते—

मासि भाद्रपदे शुक्लपक्षे यदि हरेर्दिने ।
बुधश्रबणसंयोगः प्राप्यते तत्र पूजितः ॥

सुना गया है। पद्मपुराण में मार्कण्डजी से भगवान ने कहा है-इस लोक में जो लोग मेरी आज्ञा से आठ द्वादशियों का ब्रत नहीं करते हैं उनका प्रलय पर्यन्त यमलोक में बास होता है। ये आठ द्वादशी पक्षबर्धिनी आदि हैं, उनमें श्रवण द्वादशी विजया नाम से कही गई है। बाराहपुराण में कहा है-जिस समय शुक्लपक्ष की द्वादशी में श्रवण नक्षत्र हो, वह विजया कही जाती है। वह सम्पूर्ण तिथियों में उत्तम तिथि मानी गई है ॥७४॥

यदि उसकी अनित्यता होती तब एकादशी-ब्रत का शिथिल कर द्वादशी-ब्रत में दृढ़विधान नहीं किये जाता है तथा "दोनों का उपबास करे दोनों के देवता श्रीहरि हैं" इस प्रकार युक्ति के साथ विधान न होता। जल से भी पारण का समाधान है। कोई कोई वैष्णव-विषयत्व के कारण किम्बा बामन के उपासकत्व के कारण नित्यत्व स्वीकार करते हैं ॥७५॥

ब्रह्मवैवर्त्त में कहा है—भाद्रपद के शुक्लपक्ष में श्रीहरि के दिबस में यदि बुध-श्रवण का संयोग होता है तो उस दिन बामन

प्रयच्छति शुभान् कामान् बामनो मनसि स्थितान् ।
बिजया नाम सा प्रोक्ता तिथीः प्रीतिकरी हरेः ॥

मात्स्ये—

द्वादश्यां शुक्लपक्षे तु नभस्ये श्रबणं यदि ।
उपोष्यैकादशी तत्र द्वादशीमप्युपोषयेत् ॥

ब्रह्मांडे—

द्वादश्यास्तु दिने भाद्रे हृषीकेशर्क्षसंयुते ।
उपबासद्वयं कुर्यात् बिष्णुप्रीणनतत्परः ॥ ७६ ॥

भबिष्ये—

भाद्रे सिते समग्रं चेत् द्वादश्यां श्रबणं भवेत् ।
उपोष्या सा बहुफला पूर्बापि नियमान्वितैः ॥
सद्धर्मिण्या सोमजेन श्रबणेन यशोवती ।
युता यस्याः च लभ्येत पुण्येन महतो नरैः ॥

देब पूजित होकर मनमें स्थित शुभ-कामनाओं को प्रदान करते हैं। वह तिथी विजया कही जाती है जो कि श्रीहरि के परम प्रिय मानी जाती है। मत्स्यपुराण में कहा—भाद्रमास की-द्वादशी, के शुक्लपक्ष में यदि श्रवणा नक्षत्र होता है तो एकादशी में उपबास करके द्वादशी में भी उपबास करे। ब्रह्माण्डपुराण में कहा है-भाद्रपद के द्वादशी दिवस में हृषीकेश नक्षत्र के संयोग होने पर विष्णुपूजन परायण जन दोनों उपवास को करें ॥७६॥

भविष्य में कहा है-भाद्रमास की शुक्ला-द्वादशी में यदि समग्ररूप से श्रवण नक्षत्र है, तो वह उपोषित होकर बहुफल को देती है तथा नियम से युक्त एकादशी भी। बुध के साथ सद्धर्मिणी तथा श्रवणा के साथ यशोबती महान्-पुण्य से मनुष्यों के लिये प्राप्त होती है। यहाँ धर्म्मिणी एकादशी है, यशोबती द्वादशी है, सोमज बुध है। इस प्रकार-द्वादशी में उप-

धर्मिणी एकादशी, यशोबती द्वादशी, खोमजः बुध "उपोष्य द्वादशीं तत्र त्रयोदश्यां तु पारणमि"ति। नक्षत्रमात्रस्पर्शे सर्वैव पूज्या।

तथोक्तं बाराहे—

द्वादशी श्रबणस्पृष्टा कृत्स्ना पूज्यतमा स्मृता।
न चासौ तेन संयुक्ता तावत्येव प्रशस्यत-इति ॥ ७७॥
संपूर्णात् श्रबणाद्भद्रां खंडितामप्युपोषयेत्।
तिथिक्षये सार्द्ध यामान् नात्र कार्यस्तु संशयेति॥

सारदापुराणाच्च—बाराहपुराणे—

एकादशी यदा शुद्धा द्वादशी श्रबणान्विता।
उपबासद्वयं कुर्यादुभयोर्दैवतं हरिः॥
द्वादश्ययोक्षजर्क्षेण स्मरबिद्धापि शस्यते।

बाराहे—

पारणान्तविधिर्ज्ञेयं समाप्ते द्विज भोजनम्।
असमाप्ते व्रते पूर्वे नैव कुर्याद् व्रतान्तरमिति-
तु श्रबणाद्वादश्यतिरिक्तविज्ञेयम ॥ ७८॥

बास कर त्रयोदशी में पारण करना चाहिये। नक्षत्र मात्र के स्पर्श से समस्त तिथियाँ पूजनीया होती हैं। वराहपुराण में कहा है-समस्त द्वादशी श्रवणा से स्पृष्ट होने पर पूज्यतमा मानी जाती है। बह द्वादशी श्रबणा से यदि संयुक्त न हो तो उस प्रकार प्रशंसित नहीं होती।।७७।।

श्रवणा के सम्पूर्ण है अथच भद्रा खण्डित रूप में है तो भी उपवास करना चाहिए। तिथिक्षय में सार्द्ध याम माना जाता है, इसमें संशय न करे। सारदातिलक में वाराहपुराण बचन यथा-जिस समय एकादशी शुद्धा है अथच द्वादशी श्रवणा से युक्त है तो दोनों दिन उपवास करे। क्योंकि श्रीहरि दोनों के देवता हैं।

बाराहे—

"एकादश्यां नरो भुक्त्वा द्वादश्यां समुपोषणात्।
व्रतद्वयकृतं पुण्यं सर्वं प्राप्नोत्यसंशयमिति"-
तु बाक्यमशक्तबिषयम्।

तदुक्तं बिष्णुधर्मोत्तरे-परसुरामोक्तिः—

उपबाससमर्थानां किं स्यादेकमुपोषितम्।
महाफलं महादेव तन्ममाचक्ष्व सुव्रत! ॥ ७९॥

तत्रैब शिबोक्तिः—

या राम श्रवणोपेता द्वादशी महती तु सा।
तस्यामुपोषितः स्नातः पूजयित्वा जनार्दनम्॥
प्राप्नोत्ययत्नाद्धर्मज्ञ द्वादश द्वादशी-व्रतमिति॥

बाराह में—हे द्विज! पारणान्त की बिधि भोजन है, एक व्रत के असमाप्त में अन्य व्रत को नहीं करे। यह श्रवण द्वादक्षी के अतिरिक्त दिवस जानना ।।७८।।

बाराह में—मनुष्य एकादशी के दिन भोजन कर द्वादशो में उपवास करे तो दोनों व्रतों के समस्त पुण्य प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं यह है बचन अशक्त बिषय को लेकर जानना। बिष्णु-धर्मोत्तर में परसुरामजी ने कहा है—हे महादेव! दोनों उपवास के समर्थ रहने पर एक उपबास कोन करता है। दोनों के उपवास में महाफल है।।७९।।

वहाँ शिवजी का बचन है—हे राम! श्रवणा से संयुक्त जो द्वादशी है वह महती मानी जाती है। उसमें उपवास, स्नान, जनार्दनका पूजन से बारह द्वादशी व्रत का बिना—यत्न से लाभ होता है। बौधायन भी कहते हैं-एकादशो का त्याग कर द्वादशी में उपबास करें। पूर्व दिवस का पुण्य उसको अवश्य मिलेगा इसमें काई सन्देह नहीं है। इस प्रकार द्वादशो की नित्यता कही

वोधायनोऽपि—

एवमेकादशी त्यक्त्वा द्वादशी समुपोषयेत् ।
पूर्ववासरजं पुण्यं सर्वं प्राप्नोत्यसंशयमिति—
अनेन द्वादश्याः नित्यत्वमुक्तम् ।

गोभिलः—

या तिथिर्भेनसंयुक्ता या च योगेन नारद ! ।
मुहूर्त्तद्वयमात्रापि सा च सर्वा प्रशस्यते ॥

ततश्चोपोष्य मध्याह्ने श्रीबामनप्रादुर्भावं बिचिन्त्य महास्नानादि—सामग्रीं संपाद्य वैष्वानाहूय महोत्सवं कारयेत् ॥ ८० ॥

अथ निर्णयः । मार्कंडेये—

श्रबणर्क्षसमायुक्ता द्वादशी यदि लभ्यते ।
उपोष्या द्वादशी तत्र त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥

बिष्णुपुराणे—श्रबणाद्वादशी-माहात्म्ये—

द्वादश्यां तु यदा बिप्र ! नक्षत्रं श्रवणं भवेत् ।
द्वादशी च तथोपोष्या संत्यज्यैकादशीं तिथिम् ॥

गई है। गोभिल ने कहा है—हे नारद ! जो तिथी नक्षत्र से संयुक्त है जो योग-युक्त है मुहूर्त्त द्वय मात्र भी बह समस्त प्रशंसित है। इस प्रकार उपबास कर मध्यान्ह समय में बामन भगवान् का प्रादुर्भाव चिन्तन कर महास्नानादि—सामग्री का संग्रह कर वैष्णवों को बुला कर महोत्सब करे ॥८०॥

निर्णयः—मार्कण्डपुराण में—श्रवणा नक्षत्र के समायुक्त द्वादशी यदि प्राप्त होती है तो द्वादशी में उपबास कर त्रयोदशी में पारण करना चाहिए। बिष्णुपुराण में श्रवणद्वादशी माहात्म्य में कहा है—हे बिप्र ! यदि द्वादशी तिथि में श्रवणा नक्षत्र होता है तो द्वादशी में उपबास करे, एकादशी का त्याग करदें। यदि द्वादशी नहीं प्राप्त होती है तो एकादशी में उपबास करना

यदा तु द्वादशी न प्राप्यते तदैकादश्येबोपोष्या ॥ ८१ ॥

तथा नारदीये—

यदा न प्राप्यते ऋक्षं द्वादश्यां बैष्णवः कचित् ।
एकादशी तदोपोष्या पापघ्नी श्रवणान्विता ॥

यदा तु एकादशी द्वादशी श्रवणं च तदा बिष्णुशृंखलायोगः ।

मात्स्ये—

द्वादशी श्रबणस्पृष्टा स्पृशेदेकादशीं यदा ।
स एष बैष्णवो योगो बिष्णुशृंखलसंज्ञकः ॥

बिष्णुशृंखलयोगेऽपि द्वादश्यां श्रबणसद्भावे व्रतं, यं द्वादशी-वृद्धौ उभयत्र श्रबणयोगे, बैष्णव—स्मार्तयोर्द्वादश्यामेव व्रतं, पारणं तु अन्यतराभावे ॥ ८२ ॥

तदा नारदीये—

तिथिनक्षत्रयोर्योगे उपबासो भवेद्यदा ।
पारणं तु न कर्त्तव्यं यावन्नैकस्य संक्षय-इति-

चाहिये ॥८१॥

नारदपुराण में कहा है—यदि कहीं द्वादशी में श्रवणा नक्षत्र नहीं प्राप्त है तो बैष्णव एकादशी में उपवास करे। श्रवणा से युक्त एकादशी पाप का नाश करने वाली है। यदि एकादशी है, द्वादशी भी है तो वह विष्णुशृंखलायोग कहा जाता है। मत्स्य-पुराण में कहा है—श्रवणा से स्पृष्ट द्वादशी का एकादशी यदि स्पर्श करती है, तो वह वैष्णवयोग है जिस का नाम बिष्णुशृंखल है। बिष्णुशृंखल योग में भी—यदि द्वादशी में श्रवणा योग है तो व्रत किया जाता है ॥८२॥

नारदीय में—तिथि नक्षत्र के संयोग में जब उपवास होता है तो जब तक एक का क्षय नहीं होता है तो पारण नहीं करना चाहिए। इत्यादि। यदि एकादशी, द्वादशी, श्रवणा एवं बुध है तो चारों के

यदात्वेकादशी—द्वादशी-श्रवणं-बुधश्च तदा देवदुन्दुभिः योगः ॥ ८३ ॥

तदुक्तं भविष्ये—

द्वादश्येकादशी सौम्यः श्रवणं च चतुष्टयम् ।
देवदुन्दुभिः योगोऽयं शतसत्रफलप्रदम् ॥

सौम्ये बुधः—

यदा द्वादशी न्यूना श्रवणन्त्वधिकं तथापि व्रतमनुष्ठेयम् । द्वादशी श्रवणस्पृष्टा कृष्णा पूज्यतमेत्युक्तेः ॥ ८४ ॥

आश्विनकृत्यम्—

आश्विनस्यासिते पक्षे दशम्यां राघवोत्सवः ।
शमीमूलस्थितं रामं पूजयेच्च यथा बिधिः ॥

तत्र प्रकारः—

"सम्यक्रथमारोप्य श्रीरामं शमीमूलं नयेत् ।"

तत्र सम्यक्तया महोत्सवादिकं कृत्वा बैष्णवान् पूजयेत ॥८५॥

इति श्रीसाधनदीपिकायां श्रीनारायणभट्ट-
विरिचितायां चतुर्थः प्रकाशः ॥



समवाय में देवदुन्दुभि योग माना जाता है ॥८३॥

भविष्य में कहा है—द्वादशी, एकादशी, बुध तथा श्रवण ये चार हैं तो उसको देबदुन्दुभि-योग कहते हैं, वह सौ यज्ञ-फल को देने बाला है। यहाँ सौम्य-बुध है। यदि द्वादशी न्यून है, श्रवण अधिक है तो भी व्रत का अनुष्ठान करे। "श्रबण से स्पृष्ट कृष्णा द्वादशी पूज्यतमा" यह बचन भी है ॥८४॥

आश्विनकृत्य—अगहन के कृष्णपक्ष की दशमी में राघबोत्सब होता है। उस दिन शमीवृक्ष के मूल भाग में श्रीराम जी का यथा बिधि से पूजन करे। उसका प्रकार—रथ के ऊपर भली भाँति

पञ्चमः प्रकाशः

कार्त्तिककृत्यम्—

कार्त्तिके तु बिशेषेण कृष्णभक्तो यजेद्धरिम् ॥
श्रीराधायास्तथा सेवामिच्छन् भक्तो यजेच्चेति ॥

अथ व्रतनित्यता-स्कान्दे—

अव्रतेन क्षिपेद्यस्तु मासं दामोदर-प्रियम् ।
तिर्यक्योनिमवाप्नोति सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥
यति वा बिधवा चैव बिशेषेण बनाश्रमी ।
कार्त्तिके नरकं यान्ति ह्यकृत्वा वैष्णवं व्रतम् ॥
नियमेन बिना विप्राः कार्त्तिके यः क्षिपेन्नरः ।
कृष्णः पराङ्मुखस्तस्य यस्मादूर्जोऽस्य बल्लभः ॥

कार्त्तिके पश्चिमे यामे श्रीराधादामोदराग्रे कीर्त्तनादिकं कुर्यात् ॥ १ ॥

श्रीरामजी को बैठा कर शमी मूल के निकट लेवे। वहाँ विराजमान करा कर महोत्सवादि करे तथा वैष्णवों का पूजन भी करे।॥८५॥



कार्तिक-महीना में कृष्ण-भक्त जन बिशेष रूप से हरि की उपासना करे एवं राधिका-सेवा की इच्छा कर उनका भी यजन करे। ब्रत की नित्यता—जो व्यक्ति बिना ब्रत से दामोदर के प्रिय कार्त्तिकमास का व्यतीत करता (बीताता) है वह समस्त धर्म्म से वहिष्कृत माना जाता है एवं तिर्य्यग्योनि प्राप्त करता है। सन्यासी हों, विधवा हों, विशेषतया वनाश्रमी हों यदि कार्तिकमास में वैष्णव-ब्रत नहीं करते हैं तो वे नरकगामी होते हैं। हे विप्रगण ! सुनो, जो व्यक्ति कात्तिक में बिना नियम से कालातिपात करता है उसके श्रीकृष्ण पराङ्मुख रहते हैं क्योंकि वह मास उनके अत्यन्त प्रिय है ॥१॥

तथोक्तं स्कान्दे—

कार्त्तिके पश्चिमे यामे स्तवगानं करोति यः ।
बसते श्वेतद्वीपे तु पितृभिः सह नारद ! ॥ २ ॥

दीपं श्रीकृष्णाग्रे समर्पयेत् , बिशेषतः शिखरदीपम् ।

स्कान्दे—

सर्वस्वदानं कुरुते वैष्णवानां महामुने ! ।
केशवोपरि दीपस्य कलां नार्हति षोड़शीम् ॥ ३ ॥

पाद्मे—कार्त्तिके—

मथुरायां सकृदपि श्रीदामोदरपूजनात् ।
मन्त्रद्रब्यबिहीनं च विधिहीनं च पूजनम् ॥
मन्यते कार्त्तिके देबो मथुरायां सदर्च्चनम् ।
यस्य पापस्य युज्येत् मरणान्ता हि निष्कृतिः ॥
तच्छुद्धयर्थमिव प्रोक्तं प्रायश्चित्तं सुनिश्चितम् ।
किं यज्ञैः किं तपोभिश्च तीर्थैरन्यैश्च सेवितैः ॥
कार्त्तिके मथुरायां चेदर्च्यते राधिकाप्रियः ॥ ४ ॥

कार्तिक के शेषयाम में श्रीराधा-दामोदर के सम्मुख कीर्त्तनादि करे। स्कन्दपुराण में कहा है-हे नारद ! कार्तिक के शेष प्रहर में जो स्तवगान करता है वह पितृगण के साथ श्वेतद्वीप में निवास करता है ॥२॥

श्रीकृष्ण के समक्ष दीप प्रदान करे, विशेष रूप से शिखरद्वीप अर्पण करे। स्कन्दपुराण में कहा है-हे महामुने ! वह बैष्णबों के लिये सर्व्वस्व दान कर लेता है जो कि केशब के लिये दीपदान करता है, समस्त कर्म्म इसकी षोलह कला (षोलह भाग) नहीं है जानना ॥३॥

मथुरा में मन्त्रहीन, द्रब्यहीन, विधिहीन से किया हुआ पूजन को केशबदेब उत्ताम समझते हैं। जिसके मरण तक पाप का कोई

श्रीराधापूजावश्यकी ।

तथा पाद्मे—

ततः प्रियतमा बिष्णो राधिका गोपिकासु च ।
कार्त्तिके पूजनीया च श्रीदामोदरसंनिधौ ॥ ५ ॥

अथ स्नानादिप्रकारः—

तत्र आश्विनशुक्लैकादशीतः प्रारम्भं कुर्यात् । गुरुपरम्परया प्राप्तभावनया स्वतः प्राप्तभावनया वा श्रीराधाप्रियं सेवयेत् । तथोक्तं पाद्मे-उत्तारखंड़े कार्त्तिकमाहात्म्ये षष्ठेऽध्याये—

"आश्विने शुक्लपक्षस्य प्रारम्भो हरिबासरे ।
अथवा पौर्णमासीतः संक्रान्तौ वा तुलागमे" ॥ इति

तत्र वैष्णवानां एकादशीत एव प्रारम्भः ॥ ६ ॥

तत्र पश्चिमे यामे उत्थाय श्रीराधाकृष्णं ध्यात्वा प्रणम्य-

प्रायश्चित्त नहीं है उसकी शुद्धि के लिये यह सुनिश्चित प्रायश्चित्त कहा गया है। यदि कार्तिक मास में मथुरा पर राधिका-प्रिय पूजित होते हैं तो यज्ञों से क्या है , तपों से क्या है अथवा अन्य-तीर्थो का सेवन से क्या है ॥४॥

श्रीराधिका की पूजा परमावश्यकी है। पद्मपुराण में कहा है-तदनन्तर विष्णु की प्रियतमा समस्त ब्रजगोपियों में श्रेष्ठा श्रीराधिका की कार्तिक में दामोदर के निकट पूजा करे ॥५॥

स्नानादि प्रकारः—आश्विन शुक्ला एकादशी से कार्तिक ब्रत का प्रारम्भ करे। अपनी गुरु-परम्परा से प्राप्त भावना के द्वारा अथवा स्वयं प्राप्त भावना के द्वारा-श्रीराधिका प्रिय की सेवा अवश्य करें। पद्मपुराण उत्तारखण्ड के कार्तिकमाहात्म्य में छट अध्याय पर है—आश्विनमास शुक्लपक्ष के हरिबासर में, अथबा पौर्णमासी में अथबा संक्रान्ति में, तुला लग्न में इसका प्रारम्भ है ॥६॥ होता है परन्तु बैष्णवों का एकादशी से प्रारम्भ

अरुणोदये स्नानं कुर्यात्, स्नानं कृत्वा श्रीराधाकृष्णयोरर्घ्यं दद्यात
तथा काशीखंडे—

"नित्यनैमित्तिके कृत्स्ने कार्त्तिके पापशोषणे ।
गृहाणार्घं मया दत्तं राधया सहितो हरे" इति-
ततः गृहमागत्य श्रीराधाकृष्णयुगलं संपूजयेत् ॥ ७॥

तथोक्तं पाद्मे-कार्त्तिके पंचमेऽध्याये प्रबोधिनीप्रसंगे—

ततः प्रियतमा बिष्णो राधिका गोपिकासु च ।
कार्त्तिके पूजनीया च श्रीदामोदरसंनिधौ ॥
राधिकाप्रतिमां विप्राः पूजयेत्कार्त्तिके तु यः ।
तस्य तुष्यति तत्प्रीत्यै कृष्णो दामोदरो हरिः ॥
वृन्दावनाधिपत्यं च दत्तं तस्याः प्रतुष्यता ।
कृष्णेनान्यत्र देवी तु राधा बृन्दावने वने ॥ इति ॥ ८॥

पश्चिम याम अर्थात् शेष प्रहर में उठ कर श्रीराधा-कृष्ण का ध्यान तथा प्रणाम कर, अरुणोदय में स्नान कर दोनों को अर्घ्य प्रदान करे। काशीखण्ड में कहा है-कार्तिक में समस्त नित्य-नैमित्तिक कर्म्म पाप का शोषक होते हैं। "हे श्रीहरे! मैं अर्घ्य प्रदान कर रहा हूँ, आप राधिका के साथ ग्रहण कीजिये"। इसप्रकार कह कर घर पर आवे तथा राधा-कृष्ण युगल का पूजन करे ॥७॥

पद्मपुराण के कार्त्तिक माहात्म्य के पंचम अध्याय में प्रबोधिनी प्रसंग परहै-तदनन्तर विष्णु की प्रियतमा समस्त गोपियों में श्रेष्ठा श्रीराधिका का कार्त्तिकमास में श्रीदामोदर के निकट पूजन करे। हे विप्रगण! सुनो, जो व्यक्ति कार्तिक महीना में राधिका की प्रतिमा बना कर पूजा करता है तो दामादर श्रीहरि राधा-प्रीत्यर्थ उसके प्रति अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। क्यों कि श्रीकृष्ण ने प्रसन्न होकर उनके लिये "बृन्दावनाधिपत्य" का प्रदान किया है।

ततः हस्तौ पादौ च प्रक्षाल्य न्यासद्वयं कृत्वा स्वहस्तादौ सुगन्धद्रव्यं प्रलिप्य प्रार्थनापूर्वकं शनैः श्रीराधादेवीं पूर्वं प्रबोधयेत् लोकरीत्या शास्त्ररीत्या च ।

तथोक्तं पाद्मे कार्त्तिके षष्ठेऽध्याये—

यथा पतिव्रता नारी ब्राह्मे काले प्रबुध्यते ।
पूर्वं भर्त्तुस्ततो लक्ष्मी प्राकहरेद्बोदराहकमिति ॥९॥

श्रीमुखप्रक्षालनार्थं सुगंधजलादिकं दत्वा मार्जनार्थे सूक्ष्मं वस्त्रं च दत्वा तत्प्रेरितः श्रीकृष्णं शनैः कोमलाङ्गमर्द्दनेन बोधयेत्ततः संप्रदायबिधिना सेवयेत्ततः—ब्राह्मणीं ब्राह्मणं च तद्बुद्ध्या पूजयेत् ॥

तथोक्तं पाद्मे—

द्विजं दामोदरं कृत्वा तत्पत्नीं राधिकां तथा ।
कार्त्तिके पूजनीयौ तौ बासोऽलंकारभोजनैरिति ॥

वह राधा वृन्दावन की अधिश्वरी है। ८॥

तदनन्तर हाथ-पाँव धोकर दोनों न्यास कर अपने हस्तादि में सुगन्धि द्रव्य लेपन कर प्रार्थना पूर्वक पहले लोकरीति व शास्त्र-रीति से राधादेवी का प्रबोधन करे। पद्मपुराण के कार्त्तिक महात्म्य में षष्ठ अध्याय पर-जिस प्रकार पतिव्रता नारी ब्रह्म-मुहूर्त्त में पति से पहले जाग्रत होती है ठीक उसी प्रकार श्रीहरि के पहले लक्ष्मी को प्रबोधित करे ॥९॥

तदनन्तर मुख—प्रक्षालन के लिये सुगन्ध-जलादि देकर, मार्ज्जनार्थ सूक्ष्मवस्त्र खण्ड देकर, राधिका के द्वारा प्रेरित होकर धीरे धीरे कोमलांग का मर्द्दन कर श्रीकृष्ण को प्रबोधित करे। सम्प्रदाय-विधान से सेवा भी करे। तत्पश्चात ब्राह्मणी को राधिका-बुद्धि से तथा ब्राह्मण को श्रीकृष्ण-बुद्धि से पूजन करे। पद्म-पुराण में कहा-किसी उत्तम ब्राह्मण को दामोदर मान कर एवं

कन्यापूजने तु नियमः ।

देबीपुराणे—

द्विवर्षकन्यामारभ्य दशवर्षावधि क्रमात् ॥
पूजयेत् सर्वकार्येषु यथा बिध्युक्तमार्गतः ॥
बिशेषस्तु मथुरायाम् ॥ १० ॥

तथोक्तं पाद्मे-कार्त्तिके चतुर्थेऽध्याये—

कार्त्तिके मथुरायां वै परमाबधिरिष्यते ।
किं यज्ञैः किं तपोभिश्च तीर्थैरन्यैश्च सेवितैः ॥
कार्त्तिके मथुरायां वै नार्च्यते राधिकाप्रियम् ।

इति तत्रापि बिशेषतश्च श्रीराधादामोदरसेवनम् । स्नानादिकं च श्रीराधाकुण्ड एव—

तथोक्तं पाद्मे कार्त्तिके चतुर्थेऽध्याये—

यथा राधा प्रिया बिष्णोस्तस्याः कुण्डं प्रियं तथा ।
सर्वगोपीषु सेवैका बिष्णोरत्यन्त-बल्लभा ॥

उसकी पत्नी को राधिका मान कर बस्त्र-अलङ्कार-भोजनों से कार्तिक में पूजा करने की विधि है । कन्या पूजन का भी नियम है । देबीपुराण में कहा है-दो वर्ष से लेकर दश वर्ष तक सर्वकार्य्य में यथा विधान से कन्या का पूजन करे ॥१०॥

पद्मपुराणीय कार्त्तिक माहात्म्य के चतुर्थअध्याय में कहा है-कार्त्तिक-मास में मथुरा में किया हुआ कार्य्य परमाबधि माना जाता है । यज्ञों से, तपस्याओं से, अन्य-तीर्थ सेबन से क्या होता है, यदि कि-कार्त्तिक में मथुरा पर राधिका प्रिय अर्चित न होते हैं । कार्त्तिक में बिशेष रूप से राधा-दामोदर सेबन का बिधान है । स्नानादिक राधाकुंड में होना चाहिए । जैसा कि वहाँ पर कहा है-जिस प्रकार श्रीराधिकादेबी बिष्णु की अत्यन्त प्रिया है उसी प्रकार राधाकुण्ड भी राधिका का अत्यन्त प्रिय है । राधिका

गोवर्द्धनगिरौ रम्ये राधाकुण्डं प्रियं हरेः ।
कार्त्तिके बहुलाष्टम्यां यत्र स्नात्वा हरेः प्रियः ॥

"कृष्णेन जन्मान्तरबांछितेन राधा महाप्रेमजवाकुलेन्द्रिया, नित्याऽन्यलोकं कथाया कृतार्थतामि"ति । सेबां कृत्बा श्री-दामोदराष्टकं पठेत ॥ ११ ॥

पाद्मे कार्त्तिके तृतीयेऽध्याये—

श्री सत्यव्रत उबाच—

नमामीश्वरं सच्चिदानन्दरूपं, लसत्कुण्डलं गोकुले भ्राजमानम् ।
यशोदाभियोलूखलाद्धावमानं, परामृष्टमत्यन्ततो द्रुत्य गोप्या ॥ १
रुदन्तं मुहुर्नेत्रयुग्मं मृजन्तं, कराम्भोजयुग्मेन सातङ्कनेत्रम् ।
मुहुः श्वासकम्पत्रिरेखांककंठ-स्थितग्रैवं दामोदरं भक्तिबद्धम् ॥ २
इतीदृक्स्वलीलाभिरानंदकुण्डे, स्वघोषं निमज्जन्तमाख्यापयन्तम् ।
तदीयेशितज्ञेषु भक्तैर्जितत्वं, पुनः प्रेमतस्तं शतावृत्ति बन्दे ॥ ३

जिस प्रकार समस्त गोपियों में एक मात्र सेबिता है तथा कृष्ण की अत्यन्त वल्लभा है । मनोहर गोबर्द्धन गिरि में बिराजमान श्रीहरि के प्रिय राधाकुण्ड में कार्त्तिक—बहुलाष्टमी में स्नान कर मनुष्य श्रीहरि के प्रिय होते हैं । "राधिका महा प्रेम वेग से आकुलित हैं, उनकी समस्त इन्द्रियाँ कृष्णमयी हैं । श्रीकृष्ण जन्मान्तर में भी राधाप्रीति को चाहते हैं । वह राधा अपनी लीला कथा से समस्त लोग पवित्र करें ।" सेवा के बाद दामोदराष्टक का पाठ करे ॥११॥

पद्मपुराण के कार्त्तिक माहात्म्य पर सत्यव्रत ने कहा है-जिन के कानों में कुण्डल विराजमान हैं, जो गोकुल धाम में निरन्तर बिराजित हैं, जो कि छीके पर रक्खे माखन को चुराकर माता श्री-यशोदा के भय से उदूखल से छलांग मार अतिवेग से दौडे थे, श्रीयशोदा ने भी पीछे से जिनको पकड़ लिया था उन सच्चिदा-

वरं देव मोक्षं न मोक्षावधिं वा, न चान्यं वृणेऽहं वरेशादपीह ।
इदं ते वपुर्नाथ गोपालबालं, सदा मे मनस्याविरास्तां किमन्यैः ॥४
इदं ते मुखाम्भोजमत्यन्तनीलैर्वृतं कुन्तलैः स्निग्ध रक्तैश्च गोप्या ।
मुहुश्चुम्बितं बिंवरक्ताधरं मे, मनस्याविरास्तामलं लक्षलाभैः ॥५
नमो देव! दामोदरानन्त! बिष्णो प्रसीद प्रभो! दुःखज्वालाब्धि मग्नम्।
कृपादृष्टिवृष्ट्यातिदीनं बतानु, गृहाणेश ! मा॰ ज्ञमेध्यक्षि-दृश्यः ॥६
कुवेरात्मजौ बद्धमूर्त्त्यैव यद्वत् त्वया मोचितौ भक्तिभाजौ कृतौ च।
तथा प्रेमभक्तिं स्वकां मे प्रयच्छ, न मोक्षे ग्रहो मेऽस्ति दामोदरेह ॥७
नमस्तेऽस्तु दाम्ने स्फुरद्दीप्तिधाम्ने, त्वदीयोदरायाथ बिश्वस्यधाम्ने।
नमो राधिकायै त्वदीयप्रियायै, नमोऽनन्तलीलाय देवाय तुभ्यम् ॥८

नन्द रूप ईश्वर का हम प्रणाम करते है (१) माता के हाथ में संटी देख कर भय से जिन्होंने रोते रोते दोनों हस्त कमलों से भय युक्त दोनों नेत्र मले थे, बार बार, श्वास कम्पन से त्रिवली-युक्त कंठ में मोतिमाला दोदुल्यमान था, जिनको माता यशोदा ने प्रेम-रस्सी में बाधा था उन दामोदर को हम नमस्कार करते हैं (२) जिन्होंने इस प्रकार नाना लीलाओं के द्वारा अपने ब्रज को आ-नन्द सरोबर में डुबाया था, जिन्होंने ऐश्वर्य्य-निष्ठ भक्तों के प्रति "मैं भक्तों से पराजित हूँ" इस प्रकार भाव प्रकट किया है, हम प्रेम पूर्वक पुनर्बार उन दामोदर की बन्दना करते हैं (३) हे देव ! आप सर्व प्रकार बर के दाता हैं, मैं आप से मोक्ष, मोक्ष की अवधि (वैकुण्ठ) अथवा अन्य कोई वर नहीं चाहता हूँ परन्तु हे नाथ ! केवल आप से मेरी यह प्रार्थना है कि आप के यह गोपाल-बालक बिग्रह निरन्तर मन में आविर्भूत रहे, अन्य बर से मेरी क्या आवश्यकता है (४) हे देब ! आप के मुख कमल अत्यन्त श्यामल तथा स्निग्ध नीलकुन्तलों से ढका हुआ है, यशोदा आपके लोहितवर्ण बिम्बोष्ठ का बार बार चूमती हैं,

इतिदामोदराष्टकम् पठेत् ।
तथैव श्रीराधाष्टकं च महापुरुषोक्तं एवं संप्रदायरीत्या सेबां कृत्वा पायसादिकं समर्पयेत् ॥ १२॥
तथोक्तं पाद्मे—
"नैवेद्यं पायसं बिष्णोः प्रियं खंड़घृतान्वितम्" ।
श्रीराधा— प्रभृतीनांभिन्नेषु पात्रेषु नैवेद्यं दद्यात् ॥
तदुक्तं बृहद्गौतमीये—
देबानां च पृथक्पात्रे दद्याद्दिव्यान्नमुत्तमम् ॥

वह मुख-कमल मेरे हृदय में प्रकाशमान रहे। अन्य लाख लाभ की आवश्यकता नहीं है (५) हे देव ! हे दामोदर ! हे अनन्तः आप को नमस्कार, हे बिष्णो ! आप प्रसन्न हों, मैं दुःख जाल सागर में मग्न हो रहा हूँ। आप करुणा दृष्टि-बृष्टि से अति दीन, अज्ञ मेरी रक्षा कीजिये। आप मेरी दृष्टि में उदय हो (६) हे दामोदर ! आपने जिस प्रकार उदूखल में रस्सी से बद्ध होकर भी नलकूवर तथा मणिग्रीव नामक कुवर के दो पुत्रों को मुक्त किया तथा भक्ति के अधिकारी बनाया है ठीक उसी प्रकार मुझको अपनी प्रेमभक्ति प्रदान कीजिये। उस प्रेम भक्ति के लिये मैं लालायित हूँ परन्तु मोक्ष में मेरा तनिक भी आग्रह नहीं है (७) आप की स्फूर्ति शील तेज बाली उदर-बन्धन की रस्सी, तथा जगद् के धाम रूप उदर का नमस्कार, आपकी प्रियतमा राधिका को भी नमस्कार, अनन्त लीला-बाले देवदेव आप का नमस्कार (८) यह दामोदर-ष्टक है। उसी प्रकार महापुरुषों से विरचित राधाष्टक का पाठ करे ॥१२॥

अपनी सम्प्रदाय-रीति से सेबा कर पायसादिक का समर्पण करे। पद्मपुराण में कहा है-खांड, घी से युक्त पायस बिष्णु के प्रिय नैविद्य है । श्रीराधिका-प्रभृतिओं को भिन्नपात्रों मे रख

क्रमदीपिकायाम्—

विभवे सति कांस्यमयेषु पृथक् चषकेषु ददयात ॥ १३ ॥

अथ दिनबिशेषकृत्यम् —

कृष्णाष्टम्यां श्रीराधाकुण्डे गत्वा बिशेषसेवां नैवेद्यादिकं च दत्वोत्सवादिकं च कुर्यात ॥

तथोक्तं पाद्मे—कार्त्तिके पंचमेऽध्याये:—

वृन्दावनाधिपत्यं च दत्तं तस्या: प्रतुष्यता ।
कृष्णेनान्यत्र देवी तु राधा बृन्दाबने बने ॥
तत्कुण्डे कार्त्तिकेऽष्टम्यां स्नात्वा पूज्यो जनार्द्दन: ॥
संबोधिन्यां यथा प्रीतस्तथा प्रीतस्ततो भवेत् ॥ १४ ॥

अथ कृष्णात्रयोदश्यां संध्यासमये श्रीदामोदरसेबानन्तरं धमराजाय दीपं मंत्रपूर्वकं दद्यात ।

कर नैवेद्य प्रदान करे। बृहद्गौतमीयतन्त्र में कहा है-देवताओं को पृथक पात्र में उत्तम दिव्यान्न प्रदान करे। क्रमदीपिका में कहा है -बैभव रहने पर कासे के पृथक् चषकों में दिव्यान्न रखकर अर्पण करे ॥१३॥

अनन्तर दिवस-विशेष के कृत्य का निर्णय—कृष्णाष्टमी के दिन श्रीराधाकुण्ड में जाकर विशेष-सेवा तथा नैवेद्यादिक प्रदान कर उत्सवादि करें। पद्मपुराण के कार्त्तिक-माहात्म्य के पंचम अध्याय में कहा है-श्रीकृष्ण ने श्रीराधिका से प्रसन्न हो वृन्दाबन के आधिपत्य प्रदान किया है, बिष्णु की शक्तियाँ अन्यत्र अन्य नाम से देबी रूप में बिराजिता हैं। जैसा कि द्वारावती में रुक्मिणी, अयोध्या में सीतादेबी इत्यादि। श्रीवृन्दाबन की राधिका ही अधिष्ठातृ देबी है। कार्त्तिक अष्टमी के दिन उनके कुंड में स्नान कर यदि जनार्द्दन का पूजन करता है तो उस पर संबोधिनी एकादशी की भाँति श्रीहरि प्रसन्न होते हैं ॥ १४ ॥

पाद्मे—

"मृत्युना पाशदण्डाभ्यां काल: श्यामलया सह ।
त्रयोदश्यां दीपदानात् सूर्य्यज: प्रीयतामिति" मंत्र ॥१५॥

अथ चतुर्द्दशी—

ब्राह्मीमुहूर्त्तिकायां चतुर्द्दशी तस्यारतीव प्रात: काले तैलाभ्यं-गादिना गृहे स्नानं कृत्वा पश्चात्कार्त्तिकस्नानं नद्यादौ कुर्यात । तैलादित्यागे तप्तजलेनैव कुर्यात ॥ १६ ॥

प्रकारस्तु—

सन्ध्यासमये अपामार्ग—चक्रमदकर्षितक्षेत्रमृत्तिकामानीय स्थापयेत । तत: प्रात: स्नानं कृत्वा अर्द्धांग एवं शिरस्युपरि भ्राम-यित्वा मन्त्रं पठन् निक्षिपेत ॥

अथ मन्त्र: पाद्मे —

सीतालोष्टसमायुक्त ! सकंटकदलान्वित ! ।
हर पापमपामार्ग भ्राम्यमान: पुन: पुन: ॥

अब कृष्णा-त्रयोदशी के दिन कृत्य का निर्णय-कृष्णा त्रयोदशी के सन्ध्या-समय श्रीदामोदरजी की सेवा के अनन्तर धर्म्मराज के लिये मन्त्र पाठ पूर्वक दीप प्रदान करे। पद्मपुराण में-"हे सूर्य्यनन्दन कालदेव ! पाश तथा दण्ड के साथ एवं श्यामला के साथ त्रयोदशी के दिन दीप-प्रदान से प्रसन्न हो" यह मन्त्र है ॥१५॥

चतुर्द्दशीकृत्य—चतुर्द्दशी के ब्राह्म मुहूर्त्त में अत्यन्त प्रात: काल तैलादि अभ्यंग पूर्वक घर पर स्नान कर पीछे नद्यादि में कार्त्तिक स्नान करे। यदि तैलादि ग्रहण न करे तो तप्त-जल से ही स्नान करे ॥१६॥

स्नानप्रकार—सन्ध्या-समय अपामार्ग-समूह के साथ खेत से मृत्तिका लाकर रखे, प्रात: स्नान कर अर्द्धांग एवं मस्तक ऊपर

इति चतुर्द्दशी मान्या ब्राह्मी मौहूर्त्तिकी यदा।
अनर्काभ्युदिते काले कृष्णपक्षे चतुर्दशी ॥
स्नात्वा संतर्प्य तु यमं सर्व्वपापैः प्रमुच्यते।
जीवत्पिता न कुर्वीत तर्पणं यमभीष्मयोरिति ॥ १७ ॥

अथ चतुर्दश्यां रात्रौ हरदुर्गार्थं दीपदानम्—

तथा पाद्मे—

चतुर्दश्यां दीपदानं हरदुर्गार्थमेव च।
शस्त्रैर्हतानां च तथा पितृणामक्षयं भवेत् ॥
बालिकाः बालाश्च दौग्धादिना भोज्याः।

पाद्मे—

कुमारी-वटुकान् भोज्य तथैव च तपोधनान्।
राजसूयफलं तेन प्राप्यते नात्र संशयः ॥ १८ ॥

फिरा कर मंत्र पाठ पूर्वक फेंक देवें। पद्मपुराण में मन्त्र यथा-हे सीता-लोष्ट से समायुक्त, कांटे तथा दलों से युक्त अपामार्ग! तुम भ्राम्यमान हो कर पाप का हरण करो"। यह चतुर्द्दशी ब्राह्म-मुहूर्त्त के समय अत्यन्त मान्या होती है। मनुष्य सूर्य्योदय के पहले स्नान कर यम का सन्तर्पण करने पर समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। परन्तु पिता के जीवित रहते यम-तथा भीष्म का तर्पण नहीं करना चाहिये ॥१७॥

चतुर्द्दशी की रात्रि में हर-पार्व्वती के लिये दीपदान देवें। पद्मपुराण में कहा है—चतुर्द्दशी के दिन हर-दूर्गा के लिये दीपदान शस्त्रों से आहत मनुष्यों के लिये, पितरों के लिये अक्षय रूप होता है अर्थात् सम्पूर्ण पीड़ा रहित होता है। उस दिन बालक एवं बालिकाओं को दुग्धादि के द्वारा भोजन करावे। पद्मपुराण में कहा है-कुमारीओं को, ब्राह्मण-बालकों को तथा तपोवन ऋषियों को भोजन कराने पर राजसूय फल मिलता है इसमें सन्देह

अथामावास्यायां—

संध्यासमये लक्ष्मीं पूजयेत्प्रबोधयेच्च "दिवा तत्र न भोक्तव्यं बिना बालातुरान् जनान्। प्रदोषसमये लक्ष्मीं पूजयेच्च यथाक्रमम्"। श्रीकृष्णात्पूर्वं लक्ष्मीं प्रबोधयेत्। स्त्रीप्रधानत्वाद्गृहकार्यस्य—

तथोक्तं पाद्मे कार्त्तिके—

सुप्तं क्षीराम्बुधौ ज्ञात्वा लक्ष्मी पद्माश्रिता स्थिता।
अप्रबुधे हरौ पूर्वं स्त्रीभिर्लक्ष्मी प्रबोधयेत् ॥
यथा पतिव्रता नारी ब्राह्मे काले प्रबुध्यते।
पूर्वं भर्त्तुस्ततो लक्ष्मी प्राक् हरेः द्वादशीहकम् ॥ १९ ॥

श्रीकृष्णाग्रे दीपादिकान् कृत्वा उत्सवं रात्रौ कारयेत्। ततः प्रतिपत्प्रातःकाले गोवर्द्धने श्रीकृष्णं संपूजयेत, गावश्च भूषयेत।

नहीं है ॥१८॥

अमाबास्याकृत्य-सन्ध्या के समय लक्ष्मीपूजा एवं प्रबोधन करें उस दिन केवल बालक आतुर जनों को छोड़ कर अन्य कोई व्यक्ति दिबस में भोजन न करे तथा प्रदोष-समय में लक्ष्मीका पूजन करे। श्रीकृष्ण से पहले लक्ष्मी का प्रबोधन होना चाहिये। क्योंकि गृह-कार्य्य का समाधान स्त्रि की प्राधान्यता से होता है। पद्मपुराण के कार्त्तिक-महात्म्य पर कहा है-क्षीरसागर में भगवान को सोये हुये जान कर कमलाश्रिता लक्ष्मी वहाँ विराजित रहती है। हरि के प्रबोध के पहले स्त्रियों के द्वारा लक्ष्मी का प्रबोधन उचित है। जिस प्रकार पतिव्रता रमणी अपने पति के पहले ब्राह्म-मुहूर्त्त में प्रबाधित होती है ठीक उसी प्रकार श्रीहरि के पहले लक्ष्मी जागरित होती हैं। रात्रि में श्रीकृष्ण के समक्ष दीपादिक प्रदान कर उत्सव करे ॥१९॥

तदनन्तर प्रतिपदा के प्रातः काल में गोबर्द्धन में श्रीकृष्ण

तथा पाद्मे —

गोवर्द्धने हरेः पूजां गोमहिष्यादि पूजनम् ।
भूषणीयास्तथा गावः पूज्याश्च दोहवाहनाः ॥

गवादीनलंकृत्य गोवर्द्धनं स्नान-धूपदीपादिभिः संपूजयेत् ।

अथ पूजामन्त्रः पाद्मे —

"गोवर्द्धन ! धराधार ! गोकुलत्राणकारक ! ।
विष्णुबाहुकृतोच्छ्रायो गवां कोटिप्रदो भव" इति ॥ २० ॥

ततो गवां पूजां कृत्वा ताभ्यः ग्रासं दत्वा प्रणमेत् । वित्ताधिक्ये अन्नकूटं कृत्वा गोवर्द्धनरूपाय कृष्णायार्पयेत् ॥

तथा पाद्मे —

"गोवर्द्धनमखो रम्यः कृष्णसन्तोषकारकः" ॥

मथुरातः अन्यत्र गोमयेन स्थूलगोवर्द्धनं कृत्वा पूजयेत् ।

तथा पाद्मे —

मथुरायां तथाऽन्यत्र कृत्वा गोवर्द्धनं गिरिम् ।
गोमयेन महास्थूलं ततः पूज्यो गिरिर्यथा ॥

की पूजा करे ! गौओं को भूषणों से भूषित करे । पद्मपुराण में कहा है-गोवर्द्धन में श्रीकृष्ण की पूजा तथा गो-महिष्यादि की पूजा करे । गौओं को भूषणों से पूजा एवं दुग्ध भार-वाही ग्वालों की पूजा करे । इस प्रकार गवा आदिओं को भूषित कर स्नान-धूप-दीपादिओं से गोवर्द्धन का पूजन करे । पूजामन्त्रः-"हे गोवर्द्धन ! हे पृथ्वी के धारक ! हे गोकुल के त्राणकारी ! तुम विष्णु बाहु में ऊँचे उठे हुए हो, कोटि गो का प्रदान करो" ॥२०॥

तदनन्तर गौओं का पूजन कर उनको ग्रास देकर प्रणाम करे । धन के अधिक हो तो अन्नकूट कर गोवर्द्धन रूप श्रीकृष्ण का अर्पण करे । पद्मपुराण में कहा है-गोवर्द्धन-यज्ञ परम मनोहर तथा श्रीकृष्ण-सन्तोषकारी है । मथुरा-मण्डल से बाहर

मथुरायां तथा साक्षात् कृत्वा चैव प्रदक्षिणाम् ।
वैष्णवं धाम संप्राप्य मोदते हरि-संनिधौ ॥ २१ ॥

गोक्रीडादिकं च कारयेत् ।

तथोक्तं तत्रैव—

क्रोधापयेद्धापयेच्च गोमहिष्यादिकं ततः ।
वृषान् कर्षापयेद् गोपैः रुक्ति-प्रत्युक्ति-वादनात् ॥

तत्रैव—

महिष्यादेस्तथा भूषा क्रीडनं रावणं तथा ॥ २२ ॥
गोक्रीडा च प्रतिपद्येव न द्वितीयामिश्रायाम् ।

तदुक्तं पुराणसमुच्चये—

गवां क्रीडादिने यत्र रात्रौ दृश्येत चन्द्रमाः ।
सोमो राजा पशून् हन्ति सुरभी-पूजकांस्तथेति ॥

गोवर से स्थुलाकार गोवर्द्धन बना कर पूजन करे । पद्मपुराण में कहा है-मथुरा से अन्यत्र गोवर से महास्थूल गोवर्द्धन बना कर पूजा करे । मथुरा में साक्षात् गोवर्द्धन बिराजमान है । पूजा के बाद प्रदक्षिणा करे तो वह वैष्णवीतेज प्राप्त कर हरि संनिधि में बिराजमान होता है ॥२१॥

उसदिन गौओं को क्रीडित करावे । पद्मपुराण में कहा है-अनन्तर नाना-गोन्महिष्यों का युद्ध करावे, क्रोधित करावे, क्रीडा करावे । नाना-प्रकार बचन-प्रतिवचन तथा वाद्यों से गोपों के द्वारा वृषों को बुला कर संयोजित करावे । वहाँ और भी कहा है-गौओं की भाँति महिष्यादिओं को भी भूषित करा कर क्रीडित करावे । उनको शब्दित करा कर दौड़ावे ॥२२॥

गोक्रीडा प्रतिपदा में होनी चाहिये परन्तु द्वितीया-तिथि के मिश्रण से नहीं है । पुराणसमुच्चय में कहा है-यदि गोक्रीडा-दिवस में रात्रि में चन्द्रमा दीख पड़ता है तो सोमराजा पशुओं को तथा

या कुहूः प्रतिपन्मिश्रा तत्र गाः पूजयेत् नृप ! ।
पूजनात् त्रीणि वर्द्धन्ते प्रजा गावो महीपतिः ॥ २३ ॥

देवलोऽपि—

प्रतिपद्दर्शयोगे च क्रीड़नं तु गवां मतम् ।
परविद्धासु यः कुर्यात् पुत्रदाराधनक्षयः ॥
प्रतिपद्यग्निकरणं द्वितीयायां गवार्चनम् ।
छत्रछेदं करिष्येत वित्तनाशं कुलक्षयः ॥
तत्र तत्र द्यूतमपि कार्यम् ।

आदित्यपुराणे—

तस्माद्द्यूतं प्रकर्त्तव्यं प्रभाते तत्र मानवैः ।
तस्मिन् द्यूते जयो यस्य तथा संवत्सरशुभमिति" ॥

गोपूजामन्त्रः—

लक्ष्मीर्या लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता ।
घृतं वहति यज्ञार्थे मम पापं व्योपहतु ॥

उनके पूजकों को हनन करता है। हे राजन ! प्रतिपदा से मिश्रित अमावास्या में गो-पूजा से प्रजा, राजा तथा गौ ये तीनो बढ़ते हैं ॥२३॥

देबल भी कहते हैं—प्रतिपदा तथा अमावास्या का योग में गौओं की क्रीडा का विधान है। यदि द्वितीया-विद्धा प्रतिपदा में किया जाता है तो पुत्र-दारा-धनादि क्षय हो जाता है। प्रतिपदा में अग्नीकरण, द्वितीया में गोपूजा छत्र भंग कर देता है, जिससे धननाश तथा कुलनाश होता है। उस दिन द्यूतक्रीडा भी की जाती है, परन्तु वैष्णव न करे व न करावे। आदित्यपुराण में कहा है-इसी लिये प्रभात काल में मनुष्यों के द्वारा द्युतक्रीडा की जावे। क्योंकि उस क्रीड़ा में जिसका जय होता है उसका संवत्सर तक शुभ होता है। गोपूजामन्त्रः—जो लक्ष्मी लोकपालकों की

अग्रतः संतु मे गावो गावो मे संतु पृष्ठतः ।
गावो मे हृदये संतु गवां मध्ये वसाम्यहमिति ॥
वैष्णवान् संतर्पयेत् ॥ २४ ॥

तत्रैव संध्यासमये मार्गपालीं कुर्यात् ॥

स्कान्दे—

ततोऽपराह्नसमये पूर्वस्यां दिशि भारत ! ।
मार्गपालीं प्रबध्नीयात् तुंगे स्तंभेऽथ पादपे ॥
कुशकाशमयीं दिव्यां लवकैर्बहुभिर्युताम् ।
कृतहोमैः द्विजेन्द्रैस्तां बध्नीयान्मार्गपालिकाम् ॥
नमस्कारं ततः कुर्यान्मन्त्रेणानेन सुव्रत ! ।
"मार्गपालि नमस्तेऽस्तु सर्वलोके सुखप्रदे ! ॥
बिधेयैः पुत्रदाराद्यै पुनः रेहि ब्रतस्य मे" ॥ २५ ॥

रक्षा के लिये धेनु रूप में संस्थित है जो यज्ञ के लिये घृत वहन करती है वह मेरे पाप को दूर करे। मेरे आगे गौयें रहें, पृष्ठभाग में गौयें रहें, मेरे हृदय में गौयें रहें, मैं गौओं के मध्य में निवास करता हूँ। ततः वैष्णबों को सन्तर्पित करे ॥२४॥

उसीदिन सन्ध्यासमय मार्गपाली करे। स्कन्दपुराण में कहा है—हे भारत ! तदनन्तर अपरान्ह में पूर्व-दिशा में उच्च खम्भ अथवा बृक्ष में मार्गपाली बाँधे। कुश-काश से मार्गपालिका बना कर होम करने बाले ब्राह्मणों से मार्गपालिका बाँधे। हे सुब्रत ! इस मन्त्र से मार्गपालि का नमस्कार करे। हे मार्गपालि ! तुमको नमस्कार, तुम समस्त लोक में सुखप्रद हो, पुत्र-दारादि प्रदान करो, पुनः आओ ॥२५॥

द्वितीयाकृत्य-बहिनी के हाथ से भोजन करने पर शरीर की पुष्टि होती है, इसी लिये उस दिन बहिनी के हाथ से भोजन करे तथा उसको दानादि से प्रसन्न करे ॥२६॥

अथ द्वितीया—

स्नेहेन भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं तुष्टिबर्द्धनम् ।
दानानि च प्रदेयानि भगिनीभ्यो बिधानतः ॥ २६ ॥

अथाष्टमी—

अष्टम्यां बैष्णवानाहूय सुन्दरं बालं श्रीकृष्णवेषं कारयित्वा ततः "श्रीव्रजेश्वरस्याज्ञया श्रीयशोदया दत्तभक्ष्यभोज्यसामग्रीसहितः बलदेवसहितः श्रीकृष्णः गोचारणार्थं गच्छेत् ततः सर्वंदिनं बिहारं कृत्वा संध्यासमये श्रीकृष्णः आगच्छेत् ।" स्मृत्वा ततः स्नान-पानादिकं कारयित्वा श्रीकृष्णं शाययित्वा बैष्णवान् बिसर्जयेत् ॥

तथोक्तं पाद्मे—उत्तरखण्डे सप्तमाध्याये—

शुक्लाष्टमी कार्त्तिके तु स्मृता गोपाष्टमी बुधैः ।
तद्दिने बासुदेबोऽभूद्गोपः पूर्वन्तु बत्सपः ।
तत्र कुर्यात्गवां पूजां गो-ग्रासं गो-प्रदक्षिणम् ॥
गवानुगमनं कार्यं सर्वान् कामानभीप्सता ।
पुराणान्तरे गोपाष्टमी प्रसिद्धा ॥

अष्टमीकृत्य—अष्टमी के दिन वैष्णवों को बुला कर किसी सुन्दर बालक को कृष्ण वेश करा कर "व्रजेश्वर की आज्ञा से यशोदाजी के द्वारा प्रदत्त भक्ष-भोज्य सामग्री के साथ तथा बलदेवादि के साथ श्रीकृष्ण गोचारण के लिये वन में जाते हैं तथा समस्त दिन विहार कर सन्ध्या—समय घर आ जाते हैं" इस प्रकार भावना कर लीलानुकरण करा कर स्नान-पानादि करा कर श्रीकृष्ण को शयन करावे बाद में वैष्णवों को विदा देवे। पद्मपुराण के उत्तरखण्ड में सातवाँ अध्याय पर—कार्त्तिक की शुक्लाष्टमी पण्डितों से गोपाष्टमी कही जाती है । उस दिन वासुदेवजी गोपालक हुए, पहिले वत्सपाल रहे । उस दिन गौओं की पूजा-करे, उनको ग्रास देवें तथा उनकी प्रदक्षिणा करे। गौओं

तदुक्तं कूर्म्मपुराणे—

शुक्लाष्टमी कार्त्तिके तु कृता गोपाष्टमी बुधैः ।
यत्र कुर्यात गवां पूजां गो-ग्रासं गो-प्रदक्षिणम् ॥
गवानुगमनं कार्यं सवान् कामानभीप्सतेति ॥ २७ ॥
नवम्यां-तु श्रीबिश्रांतौ स्नात्वा मथुरां प्रदक्षिणां कुर्यात् ।
बिस्तारो मथुरामाहात्म्यप्रसंगाद्बोध्यः ॥ २८ ॥

अथ प्रबोधिनी—

तत्र स्नानादिकं कृत्वा कृष्णं महास्नानेन महानैवेद्येन च सन्तोष्य रात्रौ श्रीकृष्णं उत्थापयेत ॥

तथा मन्त्रः—

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोबिन्द त्यज निन्द्रां जगत्पते ! ।
त्वया चोत्थायमानेन उत्थितं भुवनं त्रयमिति ॥

का अनुगमन करे, जिससे समस्त कामना प्राप्ति होती है। पुराणान्तर में यह गोपाष्टमी करके प्रसिद्ध है । कूर्म्मपुराण में कहा है-कार्तिक की शुक्लाष्टमी पण्डितों से गोपाष्टमी कही जाती है। उस दिन कामानाओं को चाहने वाले को गोग्रास—गोप्रदक्षिण, गौओं का अनुगमन करना चाहिये ॥२६॥

नवमी के दिन विश्रान्तिघाट में स्नान कर मथुरा की प्रदक्षिणा करे । इसका बिस्तार मथुरा-माहात्म्य प्रसंग में है जानना चाहिए ॥२८॥

प्रवोधिनी-उस दिन स्नानादि कर महास्नान तथा महा-नैवेद्य से श्रीकृष्ण को प्रसन्न कर रात्रि में उठावे । मन्त्र"-हे गोबिन्द ! उठो उठो, हे जगत्पते ! निद्रा त्याग करो, तुम्हारे उठने से त्रि-भुवन उत्थित होगा।" भविष्योत्तर में कहा है—हे राजश्रेष्ठ ! कार्त्तिक के शुक्लपक्ष की एकादशी में बुधगण एकत्रित होकर इन मन्त्रों से देबता को उठाबे । ब्रह्मपुराण में कहा है-कार्त्तिक की

भविष्योत्तरे—

कार्त्तिके शुक्लपक्षस्य एकादश्यां समाहितः ।
मन्त्रैरेतैस्तु राजेन्द्र ! देवमुत्थापयेद् बुधः ॥

ब्राह्मे—

एकादश्यां तु शुक्लायां कार्त्तिके मासि केशवम् ।
प्रसुप्तं बोधयेत् रात्रौ श्रद्धा–भक्ति–समन्वितः ॥
नृत्यैर्गीतैस्तथा वाद्यै ऋग्‌–यजुः साममङ्गलैरिति ॥ २६ ॥

अथैकादश्यामेव रथोत्सवः ॥

श्रीकृष्णं रथारूढं कृत्वा नयेत् ।

भविष्ये माहात्म्यम्—

रथोत्सवे मुकुन्दस्य येषां हर्षोऽपि जायते ।
तेषां न नारकी पीड़ा यावदिन्द्राश्चतुर्द्दश ॥

तथैव पठनं—

पलायध्वं पलायध्वं रे रे दितिज–दानवाः ! ।
संरक्षणाय लोकानां रथारूढो नृकेशरीति—
पुरमध्ये रथं भ्रामयेत् ॥

शुक्ला एकादशी रात्रि काल में शयन कारी केशव को श्रद्धा–भक्ति के साथ प्रबोधित करे। नृत्य–गान–बाद्यों के साथ तथा ऋक्–यजुः–साम मङ्गल पाठों से प्रबोधित करने का विधान है। ॥२६॥

एकादशी के दिन रथोत्सब है। उस दिन श्रीकृष्ण को रथ में बैठावे। भविष्यपुराण में उसका माहात्म्य यथा—मुकुन्द के रथारूढ़ में जिनको हर्षोत्सब उत्पन्न होता है उनकी नरक-यातना चौदह मन्वन्तर पर्य्यन्त नहीं है। रथारुढ़ के समय यह पाठ किया जाता है—"रे रे दैत्य–दानव गण ! भाग जाओ, भाग जाओ, लोगों की रक्षा के लिये नरसिंहजी रथ में बैठे हैं"। उस दिन नगर में रथ का भ्रमण करने का विधान है। भविष्योत्तर में कहा है—"गान-

भविष्योत्तरे—

नृत्यमानैर्भागवतैर्गीतवादित्र—निस्वनैः ।
भ्रामयेत्स्यन्दनं विष्णोः पुरमध्ये समन्ततः ॥

अनुगमने निंदा तत्रैव—

"नानुव्रजति यो मोहात् व्रजन्तं जगदीश्वरम् ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्मापि स भवेद् ब्रह्मराक्षसः" इति—

गृहं नीत्वा पुनः सेवां कृत्वा जागरणं कुर्यात्, ततः प्रातः स्नानादिकं कृत्वा पूर्वोक्तरीत्या तप्तमुद्रां धारयेत् ततः गुरुं संपूज्य वस्त्राऽलंकारादिभिः चातुर्मास्यनियमं त्यक्त्वा वैष्णवैः सह भुंजीत ॥ ३० ॥

इति श्रीनारायणभट्टविरचितायां श्रीसाधनदीपिकायां

पञ्चमः प्रकाशः



वाद्य तथा निर्घोष से नृत्यपरायण भागवत जन के द्वारा नगर के मध्य में विष्णु के रथ को भ्रमण करावे" अनुगमन न करने से निन्दा-भविष्योत्तर में कहा है-जो व्यक्ति मोह से रथारुढ़ जगदीश्वर का अनुगमन नहीं करता है वह ज्ञानाग्नि से दग्धकर्म्मा होकर भी ब्रह्मराक्षस माना जाता है। इस प्रकार भ्रमण कराकर घर लेकर पुनः सेवा कर जागरण करे। तदनन्तर प्रातः स्नानादि कर पूर्व्वोक्तरीति से तप्त-मुद्रा धारण करे। बाद में वस्त्रालङ्कारादियों से गुरु की पूजा कर चातुर्म्मास्य-नियम का त्यजन कर वैष्णवों के साथ भोजन करे ॥३०॥



षष्ठः प्रकाशः

शङ्करं शङ्करं नत्वा देशिकेन्द्रं परं विभुम् ।
लिखामि कृष्णमूर्त्तेस्तु ह्याविभावादिकल्पनम् ॥१॥

अथ मूर्त्तेराविभावप्रकारः—

अनिषिद्धस्थलात् शिलां गृह्णीयात् ।

निषेधस्तु हयशीर्षपंचरात्रौ—

पुरमध्ये स्थिता या च बल्मीके वापि या स्थिता ।
येन केनचिदानीता वर्जनीया तथा शिला ॥
इत्यादि दोषदुष्टा त्याज्या अग्राह्या च ।
पुण्यसेतूद्भवा ग्राह्या पुण्यतीर्थोद्भवा च या ॥
निमग्ना भूतले या च या स्पृष्टा सूर्य्यरश्मिभिः ।
युवा मध्या भवेत् ग्राह्या बाला वृद्धा च गर्हिता ॥ २ ॥

युवारूपाशिलायाः लक्षणम्—

सुगन्धा निविडा स्निग्धा तथा गम्भीरनिःस्वना ।
शीतला या च तेजाढ्या युवेति प्रोच्यते शिला ॥
अतिमृद्वी भवेद्बाला वृद्धातिकठिना मता ॥ ३ ॥

शंकर रूप (कल्याणकारक) देशिकेन्द्र, विभुस्वरूप शंकर जी का नमस्कार करता हुआ श्रीकृष्ण—मूर्त्ति के आविर्भाव स्वरूप का विवेचन करता हूँ ॥१॥

अब मूर्त्ति के आविर्भाव का प्रकार—अनिषिद्ध स्थल से शिला को ग्रहण करे। हयशीर्ष-पञ्चरात्र में निषेध-स्थान का कथन यथा-नगर के मध्य से, जिस किस से आनी हुई शिला वर्ज्जनीया है। इनमें दोष है, इस दृष्टि से त्याज्य तथा अग्रहणीय है। पुण्य-सेतु से उत्पन्न, पुण्य-तीर्थ से उत्पन्न, भूतल में निमग्न, सूर्य्य किरणों से अस्पृष्ट युवा स्वरूप मध्यम स्थानीया शिला ग्रहणीय है, परन्तु बालस्वरूप व वृद्धस्वरूप शिला गर्हित है ॥२॥

शिल्पिसहितो गुरुर्नेतुं शिलां गच्छेत ॥

तथा हयशीर्षे—

सुवारे सुतिथौ योगे स्वर्क्षे सुकरणान्विते ।
आपूर्यमाणपक्षे तु सुग्रहे चोत्तरायणे ॥
यजमानानुकूले तु प्रतिमार्थं व्रजेत् गुरुः ।
नृसिंहं पूज्य बिज्ञाप्य पूज्य टंकादिकं ततः ॥

पश्चाद् गृहाद् गत्वा शिलाप्रदेशे तत्र होमादिकं बिधाय ततः स्वमन्त्रेणाभिमन्त्रितं टंकं विश्वकर्मरूपिणे शिल्पिने दत्वा प्रारंभेत् । शिल्पी चात्मानं बिश्वकर्म-स्वरूपं ध्यात्वा शिलां शातयेत् ।

यथोक्तं हयशीर्षे—

ध्यात्वा स्वदेवतां शिल्पी टंकहस्तो जितेन्द्रियः ।
यथेष्टं शातयेत्पश्चाद् यच्छिलां तच्छृणुष्व मे इति ॥ ४ ॥

युवास्वरूपशिला का लक्षण—गन्धवाली, निबिडा, चिकनी, गम्भीरशब्दवाली, शीतल, तेज युक्त शिला युवा कहि जाती है। अत्यन्त कोमल बालस्वरूपा तथा अतिकठिन वृद्धस्वरूपा है ॥३॥

गुरुदेव शिल्पि के साथ शिला लेने के लिये गमन करें। हयशीर्षपञ्चरात्र में कहा है-उत्तम वार, उत्तम तिथी, उत्तम नक्षत्र, उत्तम करण में तथा पक्ष के शेषदिबसों में, उत्तम ग्रह में, उत्तरायण में यजमान के अनुकूल से गुरु, प्रतिमा के लिये गमन करे। पहले नृसिंह का पूजन तथा विज्ञापन कर पश्चाद् टंकादि (टांक) का पूजन कर तत्पश्चात् गृह से शिला-प्रदेश मे जाकर, वहाँ होमादिक का सम्पादन कर अपने मन्त्र से अभिमन्त्रित टंक को विश्वकर्म्मा रूप शिल्पि को देकर खनन-कार्य्य का प्रारम्भ करादें। शिल्पी अपने को विश्वकर्म्मा स्वरूप ध्यान कर खनन करे। हयशीर्ष में कहा है-शिल्पी हाथ में टंक लेकर अपनी देवता का ध्यान कर संयत इन्द्रिय होकर यथा पूर्बक खनन करें ॥४॥

ततः आनीय मंगलपूर्वकं प्रासादोत्तरभागे श्रीमूर्त्ति कारयेत्।

प्रासादस्योत्तरभागे कृत्वा कर्मकुटीं गुरुः ।
शिलां संस्थाप्य तस्मिंस्तु अर्चयित्वा बलिं हरेत् ।
ततः प्रवर्त्तयेत्कर्म विद्वान् विज्ञैस्तु शिल्पिभिः ॥ ५ ॥

बाराह्याम्—

सौम्या तु हस्तमात्रा बसुदा हस्तद्वयोच्छ्रिता ।
प्रतिमा क्षेमसुभिक्षाय भवेत्त्रिचतुर्हस्तप्रमाणा च ॥

तत्र हस्तप्रमाणका हस्तद्वयप्रमाणका वा स्वयमूह्यं च ॥

तथा हयशीर्षे—

एतत्ते लक्षणं प्रोक्तमुद्देशेन मयानघ ! ।
अनयैव दिशा कार्यं स्वयमप्यूह्य देशिकैः ॥ ६ ॥

अथांगुलविभागपरिमाणम्—

यावदंगुलादिपरिमितं बिंवं तावद्दैर्घ्यं नवधा विभज्य नव-

तदनन्तर उस शिला को मंगल-पूर्वक प्रसाद के उत्तार भाग में रखकर श्रीमूर्ति का निर्म्माण करे । जैसे कि कहा है-गुरु प्रासाद के उत्तारभाग में कर्म्मकुटी (कार्य्यस्थल) बना कर अर्चना करे, बलि (पूजोपद्रव्य) प्रदान कर चतुर शिल्पियों के साथ कार्य्य का प्रारम्भ करावे ॥५॥

वराहपुराण में कहा है-हस्तपरिमित शिला सौम्य है, दो हस्त उच्च शिला धन को देने बाली है, तीन हाथ ब चार हाथ की शिला क्षेम कारक है । इस प्रकार एक हस्तपरिमित व दो हस्त-परिमित स्वयं जान ले । हयशीर्ष में कहा है—हे निष्पाप ! मैं ने उद्देश्य मात्र से यह लक्षण कहा है, इस रीति से करना चाँहिये। और समस्त रीति गुरु से जान लेवे ॥६॥

अनन्तर अङ्गुलि विभाग के परिमाण का निर्णय बतलाते हैं। जितने अङ्गुलादि परिमाण से बिम्ब है उस दैर्घ्यता को नै

मांशं तु द्वादशधा बिभजेत् । स द्वादशो बिभागोंगुलेति परिभाषौपदेशिकी ॥ ७ ॥

तथोक्तं नारदीये—

बिम्बमानं तु नवधा प्रोच्छ्रयात संविभज्य वै ।
भागं भागं ततो भूयो भवेद्द्वादशधा द्विज ! ॥
तदंगुलमितिशेषः ॥

हयशीर्षे पंचरात्रे—

अभिप्रेतप्रमाणं तु नवधा प्रविभाजयेत् ।
नवमे भास्करैर्भक्ते भागः स्वांगुलमुच्यते ॥ इति-
केशादिचिवुकान्तं हि बिम्व द्वादशमङ्गुलम् ।
चतुरङ्गुलं ग्रीवा यमधोभागं प्रचक्षते ॥
आवक्षं संभागमेकं मानाभिः ह्यपरं तथा ।
मेढ्रान्तं चोरुपर्यन्तं जङ्घान्तं चेति तं हनु ॥
पादान्ते चेति भागं हि विदुरागमवेदिनः ॥

भाग विभाग कर उस नवमांश को प्रत्येक बारह भाग विभाजन करें। बह द्वादश-विभाग अंगुल की परिभाषा है ॥७॥

नारदपुराण में कहा है-बिम्ब की परिमाण-उच्चाई को नैभाग से बिभाजित कर प्रत्येक भाग को पुनः वारह भाग से विभाजित करे तो वह अङ्गुल परिमाण है । हयशीर्षपञ्चरात्र में कहा-अभिप्रेत (वांछित) परिमाण को नै भाग में विभाजित करे पुनः प्रत्येक भाग को बारह भाग से विभाजित करने पर वह भाग अङ्गुल कहा जाता है । केश से लेकर चिवुकान्त पर्य्यन्त बिम्ब परिमाण वारह अङ्गुल कहा है। ग्रीवाभाग चार अङ्गुल है, जिस को अधो-भाग कहते हैं। वक्षः पर्य्यन्त एक भाग है, उस प्रकार अपर समस्त भाग जानना । मेढ्रान्त-पर्य्यन्त, उरु-पर्य्यन्त, जंघान्त-पर्य्यन्त, हनु-पर्य्यन्त, पादान्त-पर्य्यन्त एक एक विभाग

एको विभागः चिबुकान्तं (१) ग्रीवान्तं (२) वक्षोऽन्तं (३) नाभ्यन्तं (४) मेढ्रान्तं (५) उर्वन्तं (६) जङ्घान्तं (७) जान्वन्तं (८) पादान्तं (९) एवं चाष्टोत्तरशतमङ्गुलं बिंवदैर्घ्यम् ।

वक्षसो विस्तारश्चतुर्बिंशत्यंगुलः कटिरष्टदशाङ्गुलम् ॥

बिष्णुधर्मोत्तरे—

गोपालप्रतिमां कुर्यात वेणुवादनतत्पराम् ।
वर्हापीड़ां घनश्यामां द्विभुजामूदूर्ध्वसंस्थितामिति-

नारदीये—

मनोहरांगावयवाः सर्वे कार्याः सुलक्षणा इति ॥ ८ ॥

अथ प्रतिष्ठा-तत्र सर्वैरेव प्रतिष्ठाकार्याणि ।

तथोक्तं देबीपुराणे—

"वर्णाश्रमविभागेन देबाः स्थाप्याः तु नान्यथा ।"

तत्र श्रीमूर्त्तेस्तु स्थापनं बैष्णवब्राह्मणेनैव ।

है । चिबुकान्त-पर्य्यन्त एकबिभाग, ग्रीवापर्य्यन्त द्वितीय बिभाग, बक्षान्त-पर्य्यन्त तृतीय बिभाग, नाभी—पर्य्यन्त चतुर्थ बिभाग, मेढ्रान्त पर्य्यन्त पञ्चम बिभाग, उरु पर्य्यन्त षष्ठ भाग, जंघान्त तक सप्तम भाग,जानु अन्त पर्य्यन्त अष्टम भाग एवं पादान्त पर्य्यन्त नबम भाग है । इस रीति से १०८ अङ्गुल बिम्ब परिमाण है । बक्षः का परिमाण चब्बीश अङ्गुल तथा कटि का परिमाण अठारह अङ्गुल है । बिष्णुधर्म्मोत्तर में कहा है-गोपालप्रतिमा को वेणुवादन-परायण, वर्हापीड,घनश्याम,द्बिभुज, उदूर्ध्वसंस्थित रूप से निर्म्मित करना चाहिये । नारदपुराण में कहा है-समस्त अंग-प्रत्यंगों का उत्तम लक्षणों से निर्म्माण करना चाहिये ॥८॥

प्रतिष्ठा—समस्त जन प्रतिष्ठा कार्य्य करें । देबीपुराण में कहा है—वर्णाश्रम बिभाग से देबता की स्थापना की जाती है, इसमें अन्यथा नहीं है परन्तु श्रीमूर्त्ति का स्थापन बैष्णव-ब्राह्मण से

देबीपुराणे—

पंचरात्रार्थकुशलो मन्त्रतन्त्रावधारकः ।
स्थापने सर्वदा शस्तो ब्रह्मचारी च शान्तियुक् ॥

मात्स्ये—

सर्वावयवसंपूर्णो वेदमन्त्रविशारदः ।
पुराणवेत्ता तत्वज्ञो दम्भलोभबिवर्जितः ॥
ऊहापोहार्थतत्वज्ञो बास्तुशास्त्रस्य पारगः ।
आचार्यस्तु भवेन्नित्यं सर्वदोषबिवर्जितः ॥ ९ ॥

हयशीर्षके—

अन्यूनानतिरिक्तांगो युवा-लक्षणलक्षितः ।
अनन्यदेवताभक्तः शूद्रान्नपरिबर्जितः ॥
ब्राह्मणानामभवात्तु क्षत्रियो वैश्यशूद्रयोः ।
क्षत्रियाणामलाभे तु वैश्यः शूद्रस्य कल्पितः ॥

होना चाहिये । देबीपुराण में कहा है-पंचरात्र अर्थ जानने में कुशल, मन्त्र-तन्त्र का धारण करने वाला, शान्ति-परायण ब्रह्मचारी श्रीमूर्ति का स्थापन में सर्वदा प्रशस्त है । मत्स्यपुराण में कहा है-समस्त अंग-प्रत्यंगों से सुगठित, वेद-मन्त्रों के विशारद, पुराण को जानने वाला, तत्वज्ञ, दम्भ-लोभ से रहित, खण्डन-स्थापन के ज्ञाता, बास्तु शास्त्र के पारग, तथा नित्य समस्त दोषों से बिवर्जित आचार्य्य माना जाता है ॥९॥

हयशीर्षपञ्चरात्र में कहा है—खर्वादि दोषों से रहित अंग वाला, युवा लक्षण से लक्षित, अपने देवता में अनन्य भक्ति रखने वाला, शुद्रान्न का ग्रहण न करने वाला आचार्य्य है । ब्राह्मणों का अभाव में वैश्य तथा शूद्र के क्षत्रिय, क्षत्रियों का अप्राप्त में शूद्र के वैश्य आचार्य्य हो सकता है, परन्तु शूद्र कभी आचार्य्य नहीं होगा । यद्यपि एतादृश वैष्णव आचार्य्य समस्त

कदाचिदपि शूद्रस्तु नैवाचार्यत्वमर्हति ।
अपि पापसमाचारः सर्वलक्षणवर्जितः ॥
देशिकः स तु विज्ञेयः संसारार्णवतारकः ।
पञ्चरात्रप्रबुद्धस्तु सिद्धान्तार्थस्य तत्त्ववित् ॥
सर्वलक्षणहीनोऽपि आचार्यः स विशिष्यते ।
यस्य विष्णौ परा भक्तिर्यथा विष्णौ तथा गुरौ ।
स एव स्थापको ज्ञेयः सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ इति ।

समीचीनदेशोत्पन्न एव मात्स्ये—
"कृष्णसारवरे देशे य उत्पन्नः शुभाकृतिरिति ॥ १० ॥

वैष्णवगृहस्थस्य सेवा आवश्यकी—
विष्णुधर्मोत्तरे—
एककालं द्विकालं वा त्रिकालं पूजयेद् हरिम् ।
अपूज्य भोजनं कुर्वन्नरकानि व्रजेन्नरः ॥

स्कान्दे—
केशवार्चा गृहे यस्य न तिष्ठति महीपते ! ।
तस्यान्नं नैव भोक्तव्यमभक्ष्येण समं स्मृतमिति ॥ ११ ॥

लक्षणों से रहित तथा कदाचित् पाप-परायण भी हो तो भी वह देशिक माना जावेगा, जो कि संसार समुद्र का पार करने वाला है। पंचरात्र के प्रकृष्ट ज्ञाता सिद्धान्तार्थ के तत्व को जानने वाला, सर्वलक्षणों से हीन होने पर भी आचार्य्य माना जावेगा, क्योंकि उसमें विशेषता है। जिसके विष्णु में परा भक्ति है एवं जिस प्रकार विष्णु में उस प्रकार गुरु में भी है वह श्रीमूर्त्ति के स्थापक है यह मैं सत्य कहता हूँ। जिस देश में कृष्णसार बिचरण करते हैं उस देश से उत्पन्न आचार्य्य मङ्गलमय रूप होते हैं ॥१०॥

वैष्णवगृहस्थ की सेवा आवश्यकता है। बिष्णुधर्म्मोत्तर में कहा है-गृह में बिराजित बैष्णव प्रत्यह एक वार, दो वार व तीन

अथ निषिद्धः हयशीर्षके—
शैवः सौरोऽनैष्ठिकश्च नग्नः संकरजोऽशुचिः ।
वृद्धः कुत्सितमूर्त्तिर्यो महापातकचिह्नितः ॥
कुष्ठी च कुनखी श्वित्रीत्यादि वर्ज्याः ॥ १२ ॥

अभिज्ञत्वामदोषः । हयशीर्षे पञ्चरात्रे—
नाभिषेकं तु यः कुर्यात् प्रतिष्ठा-लोभ मोहितः ।
स याति नरकं घोरं सह शिष्यैर्न संशय इति—
अभिज्ञेन कारिते मम प्रतिष्ठा स्यादिति ॥ १३ ॥

ततो गुरुः दिनं शोधयेत् तत्र कालः माघादि पञ्चमासाः ।

तथा मात्स्ये—
चैत्रे वा फाल्गुणे वापि ज्यैष्ठे वा माधवे तथा ।
माघे वा सर्वदेबानां प्रतिष्ठा शुभदा भवेत् ॥

बार हरि की पूजा करे। यदि बिना पूजन से भोजन करता है तो वह नरकों में गमन करता है। स्कन्दपुराण में कहा है-हे राजन् ! जिसके घर पर केशब की मूर्त्ति नहीं है उसके अन्न का भोजन नहीं करे क्योंकि वह भोजन अभक्ष समान है ॥११॥

निषिद्ध आचार्य्य—हयशीर्ष में-शैव, सौर, अनैष्ठिक, नग्न, बर्णसंकर, अपबित्र, वृद्ध, कुत्सित-अंगवाला, महापातकों से चिन्हित, कुष्ठी, स्वेतकुष्ठी, कुनख वाला प्रतिष्ठा-स्थापन में बर्जित है ॥१२॥

हयशीर्षपञ्चरात्र में कहा है-जो प्रतिष्ठा-लोभ से मोहित होकर अभिषेक नहीं कराता है बह गुरु शिष्यों के साथ घोर नरक में गिरता है। तात्पर्य्य-यजमान यह जान लें कि अभिज्ञ आचार्य्य ने प्रभु की सांगोपाङ्ग प्रतिष्ठा की ॥१३॥

तदनन्तर गुरु दिन का शोधन करें। माघादि पांच महीना प्रतिष्ठा कार्य्य के उत्तम है। मत्स्यपुराण में कहा है-चैत्रमास में,

प्राप्य पक्षं शुभं शुक्लमतीते चोत्तरायणे ।
पञ्चमी च द्वितीया च तृतीया सप्तमी तथा ॥
दशमी पौर्णमासी च तथा श्रेष्ठा त्रयोदशीति ।
आषाढ़े द्वे तथा मूलमुत्तरात्रयमेव च ॥
ज्येष्ठाश्रवणरोहिण्यः पूर्वभाद्रपदा तथा ।
हस्ताऽश्विनी रेवती च पुष्या मृगशिरस्तथा ॥
अनुराधा तथा स्वाती प्रतिष्ठादिषु शस्यते ।
बुधो बृहस्पतिः शुक्रस्त्रय एते शुभावहाः ॥" इति-
लग्नधनसकरौ बिहाय ॥ १४ ॥

अथ मंडपादिकं कृत्वा यथा शक्त्या सुवर्णताम्रादिकलशान् स्थापयेत । ततः ऋत्विजां चतुर्णां वरणं कुर्यात्पंचमस्त्वाचार्यः । अमुक-बैष्णवो अमुकोपासक आचार्यत्वेन त्वां वृणे ततः वृतोऽस्मीति ब्रूयात् बस्त्रांलकारादिभिः बरणं कुयात् । एवमन्येषामिति— ॥ १५ ॥

प्रकारस्तु—"पूर्वं हस्तप्रतिमिकां कुर्याद् वेदिपरिष्क्रियाम् । गीत-मंगलवादित्रैरंगणे मन्दिरेऽथवा । तदग्रे दीर्घिकाकारं जलार्थं खातमाचरेत् । रोपयेत कदली-स्तंभान् वेदिकायाश्चतुर्दिशम् । मंगलानि च बस्तूनि स्थापयेत तत्र सर्वतः" ॥ १६ ॥

पूर्वस्मिन्दिने श्रीकृष्णस्नानार्थं यथोचितां वेदिकां कुर्यात । अङ्गणे मन्दिरे पुष्पबाटिकायां वा तदग्रे स्नानजलसंग्राहकं खातं कुर्यात् । वेदिका-चतुर्दिशं कदली-स्तम्भारोपणम्, तदभावे स्तम्भान् । ततो रक्तसूत्रैः सप्तधा परिवेष्टितवेदिकोपरि चन्द्रातपत्रं ध्वजापतकादिं च बध्नीयात ॥ १७ ॥

अथ स्नानोचिते काले कृष्णस्य बिजयं ततः ।
कारयेत बाद्यगीतैश्च सतां वृन्दैरतन्द्रितः ॥
दीपमङ्गलकुम्भाद्यैर्वेदिकायां सुखासने ॥

फाल्गुन में, ज्येष्ठ में, बैशाख व माघ में समस्त देवताओं की प्रतिष्ठा शुभदा होती है । उत्तरायण के अतीत होने पर मंगल शुक्लपक्ष में प्रतिष्ठा की जाती है । पंचमी, द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, दशमी, प्रौर्णमासी तथा त्रयोदशी तिथी प्रतिष्ठा विषय में श्रेष्ठ है । पूर्वाषाढ़ा, मूला, तीन उत्तरा, ज्येष्ठा, श्रवण, रोहिणी, पूर्व भाद्रपदा, हस्ता, अश्विनी, रेवती, पुष्या, मृगशिरा, अनुराधा, स्वाती ये नक्षत्र प्रतिष्ठादि में प्रशस्त हैं । बुध, वृहस्पति तथा शुक्र ये तीनों वार शुभ हैं ॥१४॥

अनन्तर मण्डपादि का निर्म्माण कर यथा शक्ति सुवर्णताम्रादि निर्म्मित कलशों का स्थापन करे । तत्पश्चात् ऋत्विकादि चारों का वरण करे, पंचम आचार्य्य का भी । मैं अमुक उपासक आप को आचार्य्य स्वरूप से वरण करता हूँ इस प्रकार कह कर तदनन्तर "वृतोऽस्मि" एसा कहे । सबका बस्त्रालङ्कारादि से बरण करना चाहिये ॥१५॥

प्रकार यह है—पहले आंगण में अथवा मन्दिर में मंगलवाद्य के साथ एकहस्त परिमित वेदिका निर्म्माण कर उसके आगे जल के लिये दीर्घिकाकार खात बनावे । वेदिका के चार ओर (दिशा) में अनलस होकर कदली खम्भों का रोपण कर सर्वत्र मंगल-बस्तुओं का स्थापन करे ॥१६॥

पहिला दिन श्रीकृष्ण के स्नान के लिये यथोचित वेदिका कर लिया जावे । आंगन में हों, मन्दिर में हों अथबा पुष्प-बाटिका में हों । वेदि के आगे स्नान-जल संग्रह के लिये एक खात (गढ़ा) बनावे । वेदिका की चार दिशा में कदली बृक्षों का रोपण करे, अभाव में खम्भों की स्थापना करे । तदनन्तर रक्त-सूत्रों से सात वार परिवेष्टित वेदिका के ऊपर भाग चन्द्रातप-ध्वजा-पताकादि बांध कर सुशोभित करदें ॥१७॥

ततः श्रीकृष्णं सिंहासने उपवेश्यः—

"पुनन्तु मां देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः। पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि माम" इति पठेत।

अथास्य कर्म्मणः "पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्तु, ओं पुण्याहं, अस्य कर्म्मणः स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्तु आयुष्मते स्वस्ति स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः, स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः, स्वस्ति नस्तार्क्षोऽरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ओं आयुष्मते स्वस्त्यस्य कर्म्मण ऋद्धि भवन्तो ब्रुवन्तु, ऋध्यतां ऋद्धिः समृद्धिः" ॥१८॥

अथ दिग्वन्धनम—

"प्राच्यै दिशे स्वाहा, अर्वाच्यै दिशे स्वाहा, दक्षिणायै दिशे स्वाहा, अर्वाच्यै दिशे स्वाहा, प्रतीच्यै दिशे स्वाहा, अर्वाच्यै दिशे स्वाहा, उत्तरायै दिशे स्वाहा, अर्वाच्यै दिशे स्वाहा," इति पठेत श्वेतशर्षपान् प्रक्षिपेत। ततः मण्डपं प्रोक्ष्य "कृष्ण! मण्डपं रक्षस्व" इति पठित्वा बास्तुदेवतां संपूजयेत। ततः कुण्डे अग्न्याधानं कृत्वा

स्नान के उचित समय में साधु-बृन्दों के साथ अनलस हो कर बाद्य-गीतादि से श्रीकृष्ण का बिजय कराकर दीप-मङ्गल-मय कुम्भों से सुशोभित वेदिका में सुखासन पर विराजमान करावें। तदनन्तर सिंहासन में श्रीकृष्ण को विठा कर "पुनन्तु मां देवजना" इन मत्रों से पुण्यवाचन-स्वस्तिपाठ करावें ॥१८॥

दिग्वन्धन—"प्राच्यै दिशे स्वाहा" इत्यादि पाठ कर दिशाओं में श्वेत-सरसों का क्षपण करे। अनन्तर मण्डप का प्रोक्षण (धौत) करे। "श्रीकृष्ण! मण्डप का रक्षण करो" एसा कह कर वास्तुदेवता का पूजन करे। तदनन्तर होमकुण्ड में अग्न्याधान पूर्वक समितों (पवित्र काष्ठों) से अग्नि जला कर मूलमन्त्र से दश बार आहुती देकर देबता का स्पर्श करे। तदनन्तर आचार्य्य एवं ऋत्बिजादि (याजकादि) को दक्षिणा देकर वैष्णबों की आज्ञा

समिद्भिरग्निं प्रज्वाल्य मूलमन्त्रेण दशाहुतीः दत्वा देवं संस्पृशेत। ततः आचार्य्याय ऋत्विग्भ्योऽपि दक्षिणां दत्वा वैष्णबानुज्ञयार्च्चां उपशोधयेत ॥१९॥

तथाहि देवं प्रणिपत्य प्रार्थयेत—

"स्वागतं देबदेवेश बिश्वरूप नमोऽस्तु ते।
शुद्धोऽपि तदधिष्ठाने शुद्धिकर्म्मे सहस्वतामि" ति ॥

नवार्च्चां द्वादशं कृत्वा मृदा संशोधयेत ॥२०॥

ततः दृढ़ासने स्थापयित्वा अर्घ्यादिनोपचरेत।

तिलसर्षपपुष्पाणि गन्धदूर्वाक्षताजवाः।
कुशाग्रमित्येतदभीष्टकमुदीरितमिति ॥

एतैः सहितं जलमादाय मूलमन्त्रमुच्चार्य्य—

"श्रीकृष्ण इदमर्घ्यं निवेदयामि गृहाण" ति प्रार्थयेत।

ततः आसनं गृहीत्वा मूलमन्त्रमुच्चार्य्य—

"श्रीकृष्ण इदमासनं निवेदयामि गृहाण" ति प्रार्थयित्वासनं ददयात।

लेकर अर्च्चा का उपशोधन करे ॥१९॥

तत्पश्चात देवता का प्रणाम कर "स्वागतं देबदेवेश!" इस स्वागत श्लोक से नवीन अर्च्चा को वारह बार मृत्तिका के द्वारा शोधित करे ॥२०॥

तदनन्दर दृढ़ासन में श्रीकृष्ण को स्थापित कर अर्घ्यादि से पूजा करे। तिल, सरसों, पुष्प, गन्ध, दूर्वा, अक्षत, यव, कुशाग्र ये आठ दर्भाष्टक हैं। इनके साथ जल लेकर मूल-मन्त्र का उच्चारण कर "हे श्रीकृष्ण! इस अर्घ्य को निवेदित करता हूँ ग्रहण करो।" इस प्रकार प्राथेना करे। तदनन्तर आसन लेकर मूल-मन्त्र का उच्चारण कर "श्रीकृष्ण! यह आसन है ग्रहण करो" इस प्रकार प्रार्थना कर आसन प्रदान करे। तदनन्तर पाद्य लेकर मूल-

ततः पाद्यमादाय मूलमन्त्रमुच्चार्य्य—

"श्रीकृष्ण इदं पाद्यं तुभ्यं निवेदयामि गृहाणे"ति चरण-प्रक्षालनं कुर्यात् ।

ततः जाती-लवङ्ग-कंकोलैराचमनीयम् । एतैः सुबासितं जलं मूलमन्त्रमुच्चार्य्य—

"श्रीकृष्ण आचमनीयं निवेदयामि" ॥ २१ ॥

ततः "घृतं दधि तथा क्षौद्रं मधुपर्कं बिधीयते" । एतद्द्रव्यमादाय मूलमन्त्रमुच्चार्य्य—

"श्रीकृष्ण मधुपर्कं निवेदयामि" इति पठन् दद्यात् ।

ततः पुनरप्याचमनम् ।

ततः "हिरण्यगर्भे"ति पठन् पिष्टीदीपावल्या निर्म्मञ्छयेत । "हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकआसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हबिषाविधेम"इत्यादि ।

ततः तिलपिष्टेन श्रीकृष्णमुद्वर्त्त्य—

ततः "मूर्द्धानं दिबो अरतिं पृथिव्या बैश्वानरमृत आ जातमग्निं, कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः" इति

मन्त्र का उच्चारण कर "श्रीकृष्ण इस पाद्य को तुम्हें निवेदन करता हूँ, ग्रहण करो" एसा कह कर चरण प्रक्षालन करे। तदनन्तर जाईफल-लौंग-कक्कोलों सें सुबासित जल लेकर मूलमन्त्र का उच्चारण कर "श्रीकृष्ण ! आचमनीय का निवेदन करता हूँ" एसा कह कर आचमन देवें ॥२१॥

अनन्तर मधुपर्क प्रदान करे। घृत, दधि, शर्करा इन द्रव्यों को लेकर मूलमन्त्र का उच्चारण कर "हे श्रीकृष्ण ! मधुपर्क निवेदन करता हूँ" एसा कह कर प्रदान करे। तत्पश्चात पुनः आचमन देवे। तदनन्तर "हिरण्यगर्भ" इस वेद मन्त्र का पठन कर पिष्टी दीपावली से निर्म्मंछन करें। तदनन्तर तिलपिष्ट से श्रीकृष्ण

पठन् वस्त्रं परिवर्त्त्य स्थिरं निवेशयेत् ॥ २२ ॥

ततः स्नापयेत्—

"बरुणस्योत्तम्भनमसि बरुणस्य स्कम्भ सर्जनीस्थः, बरुणस्य ऋतसदन्यसि बरुणस्य ऋतसदनमसि बरुणस्य ऋतसदनमसीद" ।

ततः तिलपिष्टसंमिश्रितैर्जलैः—

"तिलोसि सोमदेवत्यो गोसबो देवनिर्म्मितः, प्रयत्नमद्भिः पृक्तः सुधया पुष्टजा पितॄन् लोकान् प्रीणाहि नः स्वाहा" इति पठन् स्नापयेत ॥ २३ ॥

ततः पञ्चगव्येन तत्तन्मन्त्रैः—

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।
अमीभिर्वस्तुभिः षड्भिः पञ्चगव्यमिति स्मृतम् ॥

गन्धद्वारेति श्रीसूक्तमन्त्रं पठन् गोमयेन—

"गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्व्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्" ॥

आप्यायस्वेति पठन् दुग्धेन—

"आप्यायस्व समेतु ते बिश्वतः सोम वृष्ण्यं, भवा बाजस्य संगथे" ।

दधि क्राव्णेति पठन् दध्ना स्नापयेत् —

"दधि क्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य बाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत प्रण आयूंषि तारिषत" ॥

का उद्वर्त्तन कर वाद में "मूर्द्धानं दिबो अरात" इस मन्त्र का पाठ कर वस्त्र का परिवर्त्तन कर स्थिर भाब से बैठावें ॥२२॥

तदनन्तर "बरुणस्योत्तम्भनमसि" इस मन्त्र का पाठ कर स्नान करावे। तत्पश्चात तिलपिष्ट-मिश्रित जलों से "तिलोसि सोमदेब" इस मन्त्र का पाठ कर स्नान करावें ॥२३॥

तेजोऽसीति पठन् घृतेण—

"तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि, धामनानासि प्रियं देबानामनाधृष्टं देवयजनमसि" ।

देबस्य स्वेति पठन् कुशोदकेण—

"देबस्य त्वा सवितुः प्रसबेश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां सरस्वत्यै बाचो यन्तुर्यन्त्रिये दधामि बृहस्पतेष्ट्वा साम्राज्येनाभिषिञ्चामि आनये जुष्टं गृन्हामि अग्नीसोमाभ्यां जुष्टं गृन्हामि" ॥२४

ततः पञ्चामृतेन—

दुग्धं दधि घृतं क्षौद्रं सितेत्यमृतपञ्चकम् ॥

तत्र दुग्धेन; मन्त्रः—

"पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयोधाः पयस्वतीः प्रदिशः संतु मह्यम्" ।

ततो दध्ना दधिक्राव्णोति मन्त्रेण—

ततो घृतेन—

"घृतबती भुवनानामभिश्रियो वी पृथ्वी मधु दुघे सुपेशसा द्यावा-पृथिवी-बरुणस्य धर्म्मणाबिष्कंभि ते अजरे भूरितेजसा"।

ततो मधुना—

"मधुबाता ऋताय ते मधु क्षरन्ति सिन्धवः, माध्वीनः

तदनन्तर पंचगव्य से उन उन मन्त्रों से स्नान करावें। गोमूत्र, गोबर, दुग्ध, दधि, घृत तथा कुशोदक इन छै वस्तु से पञ्चगव्य वनता है। "गन्धद्वारा' इस श्रीसूक्त-मन्त्र का पठन कर गोमय से, "आप्यायस्व" इस मन्त्र का पाठ कर दुग्ध से, "दधि-क्राव्ण" इस मन्त्र का पाठ कर दही से, "तेजोऽसि" इस मन्त्र का पाठ कर घृत से, "देवस्य त्व" इस मन्त्र का पाठ कर कुशजल से स्नान करावें ॥२४॥

तदनन्तर पञ्चामृत से स्नान करावें। दुग्ध, दधि घृत, मधु,

सन्त्वोषधीः मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता, मधुमान्नो बनस्पति र्मधु माँ अस्तु सूर्य्यः माध्वी र्गावो भवन्तु नः" ।

ततः शर्करया—

"शुक्रमसि ज्योतिरसि तेजोसि देबो वः सवितोत्पुनात्व-च्छिद्रेण पवित्रेण वसोः सूर्यस्य रश्मिभिः" ।

ततः शर्करया संमर्द्योष्णोदकेन स्नापयेत —

"सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्त ऋषयः सप्त धाम प्रियाणि सप्त होत्राः सप्तधा त्वा यजंति, सप्तयोनी रापृणस्व घृतेन स्वाहा" ॥ २५ ॥

ततः सर्वौषधिद्रवरसैः—

"मुरामांसीबचाकुष्ठं शैलेयं रजनीद्वयम् ।
सटीचंपकमुस्तं च सर्वौषधिगणः स्मृतः" ॥

एतासां द्रव्यं गृहीत्वा "या औषधीति" पठन् स्नापयेत् ॥

"या औषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा मनैनु बभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च"॥ २६ ॥

शर्करा ये पञ्चामृत हैं। "पयः पृथिव्या" इस मन्त्र से दूध के द्वारा "दधिक्राव्ण" मन्त्र से दधी के द्वारा, "घृतवती" मन्त्र से घी के द्वारा, "मधुबाता ऋतायते" इस मन्त्र से मधु के द्वारा, "शुक्रमसि" इस मन्त्र से शर्करा के द्वारा स्नान करावें। तदनन्तर शर्करा मिश्रित उष्ण जल से "सप्त ते अग्ने" इस मन्त्र का पाठ कर स्नान करावें ॥२५॥

तदनन्तर सर्व्वौषधि द्रवरस से स्नान करावें। मुरामांसी, वच, कुठ, शैलेय (छरिला) रजनीदोनों, सटी, चम्पक तथा मूथा ये सर्व्वौषधि हैं। इन द्रव्यों का ग्रहण कर "या ओषधी पूर्वा जाता" इस मन्त्र का पाठ कर स्नान करावें ॥२६॥

ततो महौषधीनां द्रव्यैः—

“सहदेवी बचा व्याघ्री बला चातिबला तथा ।
शंखपुष्पी तथा सिंही सूर्यावर्त्ता तथाष्टमी ॥
महौषध्याष्टकं ह्येतन्महास्नानेषु योजयेत ।

“सुमंगलीरियं बधू रिमा समेत पश्यत, सौभाग्यमस्यै दत्वा याथास्तं बिपरेतन” ॥ २७ ॥

“आब्रह्मन ” इति पठन् बीजाष्टकं योजयेत्–“आब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मबर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढ़ानड्वानाशुः सप्तिः पुरंधिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः समेधो युवाश्य यजमानस्य बीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो बर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तान्योगक्षेमो नः कल्पताम्” ।

बीजाष्टकं तु—

यव–गोधूम–नीवार–तिलश्यामाकशालयः ।
प्रियंगवो व्रीहयश्च स्नाने ह्येतानि कल्पयेत् ॥ २८ ॥

ततो हिरण्याक्षेति पठन् रत्नतोयेन स्नापयेत ।

रत्नं तु वैडूर्यं विद्रुमं मुक्ता स्फटिकं वज्रमेवचेत्यादि ॥

“हिरण्याक्षः सविता देव आगादधूरत्नानि दायुषे वीर्याणि” ॥२६

तदनन्तर महौषधि द्रव्यों से स्नान करावें । सहदेवी, वच, व्याघ्री बला, अतिवला, शंखपुष्पी, सिंही, सूर्य्यावर्चा ये आठ महौषधि हैं । ये महास्नान में प्रयोजित होते हैं । “ सुमंगलीरियं” इस मन्त्र से ॥२७॥

तदनन्तर “आ ब्रह्मन्” इस मन्त्र का पाठ कर बीजाष्टक से स्नान करावे । बीजाष्टक—यव, गोधूम, नीवार, तिल, श्यामाक, शालीधान्य, प्रियङ्गु तथा व्रीहि ये बीजाष्टक हैं ॥२८॥

तदनन्तर “हिरण्याक्ष” इस मन्त्र का पाठ कर रत्नजल से

ततः सरस्वत्यै इति पठन् पुष्पोदकेन—

“सरस्वत्यै भैषज्येन वीर्यायान्नाद्यायाभिषिंचामीन्द्रस्येन्द्रियेण बलाय श्रियै यशसेऽभिषिंचामि” ॥

ततो “याः फलनी”ति पठन फलोदकेन स्नापयेत्—

“याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः बृहस्पति-प्रसूतास्तानो मुंचन्त्वंहसः ॥”

ततो गन्धोदकैर्गायत्र्या प्रोक्षणपूर्वकं स्नापयेत—

गन्धस्तु-“कस्तूर्यगुरुसत्वादि गन्ध इत्यभिधीयते” ॥

ततः चन्दनोदकेन “द्रुपदेति” पठन स्नापयेत—

“ओं द्रुपदादिवमुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव पूतं पवित्रेण बाज्यमापः शुद्धन्तु मैनसः” इत्यादि ।

ततः सहस्रधारकलशेन तामिति पठन् स्नापयेत्—

“तां सवितुर्वरेण्यस्य चित्रमाहं वृणे सुमतिं बिश्वजन्यांयामस्य काण्बो प्रदुहत्त प्रबीणां सहस्रधारापयसामहींगां ।”

ततः सर्वौषधिगणः । (१) महौषध्याष्टकं (२) बीजाष्टकं (३) सर्वरत्नानि (४) पुष्पाणि ५) फलानि (६) एतद् बस्तु षट्कं

स्नान करावें । वैडूर्य्य, विद्रुम, मुक्ता, स्फटिक तथा बज्र ये रत्न-गण हैं ॥२६॥

तदनन्तर “सरस्वत्यै” इस मन्त्र का पाठ कर पुष्प—जल से स्नान करावें । तदनन्तर “याः फलिनी र्या” इस मन्त्र का पाठ कर फलोदक से स्नान करावे । तत्पश्चात गन्धोदक से गायत्री का पाठ कर स्नान करावें । कस्तूरी, अगुरु सत्वादि गन्ध-द्रव्य हैं। तदनन्तर “द्रुपद” इस मन्त्र का पाठ कर चन्दन जल से स्नान करावें । तत्पश्चात् “ तां सबितुः ” इस मन्त्र का पाठ कर सहस्र-धार कलश से स्नान करावें । तदनन्तर सर्व्वौषधिगण, महौषध्या-ष्टक, बीजाष्टक, सर्वरत्न, पुष्प- तथा फल इन छै बस्तुओं को

सहस्रधाराख्यकलशे प्रक्षिपेत् ॥
ततस्तत्तान्मन्त्रं पठन्स्नापयेत् — ॥ ३० ॥

ततो घटसहस्रेण सहस्रार्द्धेन वा पुनः ।
तस्याप्यर्द्धेन वा कुर्यात् शतेनाष्टयुजाथवा ॥
चतुः षष्ट्याथवार्द्धेन शक्त्यभावेऽष्टभिः स्मृतम् ॥

"एतान्विन्द्रं स्तबाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना शुद्धैरुक्थैर्वा वृद्धांसः शुद्ध आशीर्वान्ममत्तु इन्द्रः शुद्धो न आगहि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः शुद्धोरयिं निधारय" "शुद्धो वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धो वीजं शिषामसि" ॥

पलं स्याद्दशभिष्टंकैः पलानां तु शतद्वयम् ।
षट् पंचाशद्युतंमितं यत्र तं कलशं बिदुः ॥

तत्र शक्त्यनुसारेण सुबर्ण-रजत-कांस्य-ताम्रादिना कारयेत् तदभावे मृदैव ॥ ३१ ॥

ततः नवीनपीठेऽर्चामुपवेशयेत्—

ततः शुद्धबारिणा पूर्णानष्टौ कलशान्संस्कृतान्स्थापयेत्। श्रीकृष्णस्य चतुर्दिक्षु पूर्वादिक्रमेण। प्रथमे-बनबराह-नखान्त—वल्मीक-नदीतटानां मृदं प्रक्षिपेत्, द्वितीये-बटश्वत्थादिकानां त्वक्

सहस्रधार कलश में प्रक्षेपण करें। ततः उन उन मन्त्रों का पाठ कर स्नान करावे ॥३०॥

तनदन्तर सहस्रघटों से, किम्वा अर्द्ध सहस्र से, अथबा पाद-सहस्र से, किम्वा एक सो आठ से, अथवा चौसठ घडों से, किम्बा शक्ति-अभाव में आठ घडों से स्नान करावें। "एतान्विन्द्रं स्तवाम" मन्त्र है। दश टंक से पल होता है, इस प्रकार दो सो छप्पन (२५६) पल जिस में आ सकता है वह कलश है। शक्ति के अनुसार सुबर्ण, रजत, कांस्य, वाम्रादि से कलश वनावें। अभाव में मृत्तिका से निर्म्मित करावें ॥३१॥

तृतीये—कषायितं जलं, चतुर्थे—कुशाग्रादीनि, पञ्चमे-गङ्गावालुकादि दूर्वा च, षष्ठे—महौषधी, सप्तमे-प्रस्रवणोदकं, अष्टमे-चन्दनागुरु कर्पूरैः ॥ ३२ ॥

यथा सर्वघटेषु पंच संस्कारान् कृत्वा प्रथमघटजलेन—

"आपो हिष्ठामयो भुवस्तान ऊर्चे दधात न महेरणाय च क्षसे यो वः शिवतमोरत्तस्य भाजयते हनः उषतीरिव मातरः तस्मादरं गमाभवो यस्य क्षयाय जित्वथ आपोजन यथाचन" इति मन्त्रं त्रिपठन् स्नानं कारयेत् ।

ततः हिरण्यवर्णाद्यनुवाक् पूर्वकं मन्त्रं पठन् क्रमेण स्नानं कारयेत्। ततः बाससी दत्वा संपूज्य पिष्टमयैः प्रदीपैर्नीराजयेत्। ततः सुवर्णशलाकया—

"गन्धेन चित्रं देबानामुदगानीकं चक्षुर्मित्रस्य बरुणस्याग्ने" इति पठन् नेत्रे देबस्योन्मीलयेत्। ततः "अञ्जन्ति त्वा"मित्यञ्जनेनाञ्जनं कुर्यात् ।

तदनन्तर नवीन पीठ में अर्चा को बैठावें। पश्चात् पूर्वादि क्रम से श्रीकृष्ण के चार ओर शुद्ध जल से संस्कृत परिपूर्ण अष्ट कलशों का स्थापन करें। प्रथम कलश में बनवराह के नखों के बीच में स्थित मृत्तिका, वल्मीक-मृत्तिका, नदीतट की मृत्तिका का प्रक्षेपण करे। दूसरे में वर, पीपलादि के छाल, तीसरे में कषायित जल, चौथे में कुशाग्रादि, पाँचवे में गंगा-वालूका-दूर्वा, छठे में महौषधि, सप्तम में झरणा के जल, आठवे में चन्दन-अगुरु-कर्पूरादि रखें ॥३२॥

समस्त घन्टों में पंच संस्कार कर पहला घट जल से "आयो हिष्टामयो" इस मंत्र का तीन वार पाठ कर स्नान करावें। तदनन्तर "हिरण्यवर्णादि" अनुवाक् पाठ पूर्वक मन्त्र का पाठ कर क्रम से स्नान करावें। तत्पश्चात् उत्तरीय-परिधान बस्त्र

ततः किञ्चिद्भक्ष्यादिकं प्रदर्श्य वैष्णव-ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणां दत्वा श्रीमूर्त्ति दृढ़ासने उपवेश्य न्यासं कुर्यात ॥ ३३ ॥

यथा—"पुरुषात्मने नमः" "प्राणात्मने नमः" शिरसि; "प्रकृति-तत्त्वाय नमः" "अहङ्कारतत्त्वाय नमः" "मनस्तत्वाय नमः" इति हृदि; "शब्दतत्वाय नमः" शिरसि; "स्पर्शतत्त्वाय नमः" त्वचि; "रूपतत्त्वाय नमः" चक्षुषि ॥ ३४ ॥

ततः प्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण तत्तत्स्थानं स्पृष्ट्वा न्यसेत —

यथा—"आं ह्रीं क्रौं हं सः श्रीकृष्णस्य सर्व्वेन्द्रियाणि आं ह्रीं क्रौं हं सः श्रीकृष्णस्य वाङ्मनश्चक्षु-श्रोत्र-घ्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा" इति ॥ ३५ ॥

ततः पञ्चांग—दशाङ्गादि दशाक्षरन्यासजालं कुर्यात ॥३६॥

देकर पूजा कर घृत-मय प्रदीपों से नीराजन करें। तदनन्तर स्वर्ण-शलाका से "गन्धेन चित्रं देवानां" इस मन्त्र का पाठ कर देवता के दोनों नेत्र का उन्मीलन करें। तत्पश्चात् "अञ्जन्ति त्वा" इस मन्त्र का पाठ कर अञ्जन से अञ्जन लगावे। तदनन्तर किञ्चित् भक्ष्यादि दिखा कर वैष्णवब्राह्मणों को दक्षिणा देकर श्रीमूर्त्ति को दृढ़ासन में बैठा कर न्यास करें ॥३३॥

"पुरुषात्मने नमः, प्राणात्मने नमः" कह कर मस्तक में, "प्रकृति-तत्त्वाय नमः अहङ्कारतत्त्वाय नमः" कह कर हृदय में, "शब्द-तत्त्वाय नमः" कह कर मस्तक में, "स्पर्शतत्त्वाय नमः" कह कर त्वचा में, "रूपतत्त्वाय नमः" कह कर नेत्रों में न्यास करें ॥३४॥

तदनन्तर "आं ह्रीं क्रौं" इत्यादि प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र से उन उन स्थानों का स्पर्श कर न्यास करें ॥३५॥

तदनन्तर पंचांग-दशांगादि दशाक्षर मन्त्र के न्यास समूह करें। ॥३६॥

ततः वस्त्रपरिवर्त्तनं—अभिवस्त्रैरिति पठन्—

"अभिवस्त्रासु वसनान्यर्षभिः धेनुः सुदुघाः पूयमान अभि-चन्द्रा भर्त्तवे नो हिरण्याभ्यः श्वान् रथिनो देव सोम"।

ततः-सहदेवा-सदाभद्रा-सूर्य्यावर्त्ता-कुशाग्रैः शिरीष-रजनी-भ्यां "काण्डात्काण्डे"ति मन्त्रं पठन निर्म्मथ्य निंवराजी-लवण-सर्षपैः दृष्टिमुत्तार्य्य तौयादौ प्रक्षिपेत —

"काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती पुरुषः पुरुषस्परि एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च" ॥ ३७ ॥

ततः गृहे आनीय पुनः पाद्यादिकं कुर्यात —

ततः मङ्गलार्थं तु कलशं नालिकेरफलान्वितम्।
तथा फलान्तरयुतं कृष्णस्य पुरतो न्यसेत ॥

ततोऽञ्जनं, ततो रोचनादितिलकं, ततोऽष्टोत्तरशतं दूर्वा, तूलपंजीः मङ्गलरूपाः मातृभगिन्यादिहस्तेन श्रीकृष्णमस्तके धारयेत ॥ ३८ ॥

तदनन्तर "अभिवस्त्रासु वसना" इस मन्त्र का पाठ कर वस्त्रपरिवर्त्तन करावें। तत्पश्चात—सहदेव-सदाभद्रा-सूर्य्या-वर्त्ता, कुशाग्रों से शिरीष-रजनी के द्वारा "काण्डात्काण्ड" इस मन्त्र का पाठ कर मथन कर निम्बराजी-लवण-सरसों से दृष्टि उतार कर जलादि में प्रक्षेप करें ॥३७॥

तदनन्तर गृह में लाकर पुनः पाद्यादि प्रदान करें तथा मङ्ग-लार्थ नारियल व अन्य फलों से युक्त कलश को देवता के समक्ष रखें। तत्पश्चात् अंजन प्रदान करें। तदनन्तर गोरोचनादि से तिलक की रचना कर दें। बाद में मंगलमय १०८ दूर्वा, तूलपंजी को अपनी माता-भगिनी हाथ से श्रीकृष्ण के मस्तक में धारण करावें ॥३८॥

ततः पुष्पाणि-दीर्घायुत्वेनेति पठन् दद्यात्—

"दीर्घायुत्वाय बलाय बर्चसे सुप्रजस्त्वायचासा अथो जीव शरदः शतमिति" मणिबन्धे रम्यं पीत डोरकं संवध्नीयात् ।

ततः आदर्शं "प्रदिपदसीति" पठन् दर्शयेत् —

"प्रतिपदसि प्रतिपदे त्वा अनुपदस्यनुपदे त्वा सम्पदस्यनुपदे त्वा सम्पदसि सम्पदे त्वा तेजोसि तेजसे त्वा" ।

ततो घृतदर्शनं, ततश्चामर-व्यजनं, ततो हिरण्य-रूप्य-भूषण-प्रयोगस्तु-तत्तद्वैदिकैर्मंत्रैस्तांत्रिकैर्वा ।

यथामूलमन्त्रमुच्चार्य "श्रीकृष्णाय पुष्पादिकं निवेदयामीति" पठन् दद्यात् ।

"मही गन्धः शिला धान्यं दूर्वा पुष्पं फलं दधि ।
घृतस्वस्तिकसिंदूरं शंख—कज्जलरोचनाः ॥
सिद्धान्नं कांचनं रौप्यं ताम्रं सिद्धार्थदर्पणौ ।
दीपः प्रशस्तपात्रं च बन्दनीयाः शुभे दिने ॥"

तदनन्तर "दीर्घायुत्वाय" इस मन्त्र का पाठ कर पुष्प प्रदान करें। मणिवन्ध में मनोहर पीत डोर बाँध देवें। तत्पश्चात् "प्रतिपदसि" इस मन्त्र का पाठ कर दर्पण दिखावें। वाद में घृत दर्शन करावें, पश्चात् चंवर तथा व्यजन करे। तदनन्तर हिरण्य, रौप्य, भूषण प्रयोग—उन उन वैदिक मन्त्रों से अथवा तन्त्र—मन्त्रों से करना चाहिये। मूलमन्त्र का उच्चारण कर "श्रीकृष्णाय पुष्पादिकं निवेदयामि" एसा कह कर प्रदान करें। मृत्तिका, गन्ध, शिला, धान्य, दूर्वा, पुष्प, फल, दधि, घृत, स्वस्तिक, सिन्दूर, शंख, काजर, गोरोचना, सिद्धान्न, कांचन, रौप्य, ताम्र, सिद्धार्थ, दर्पण, दीप, प्रशस्तपात्र ये सब शुभदिन में वन्दनीय हैं। इन वस्तुओं को मङ्गलार्थ देवता के समक्ष उपस्थित करें। पूर्णपात्र में इन बस्तुओं को रख कर "स्वस्ति नः" इस मन्त्र

ततो मङ्गलवस्तुभिः पूर्णपात्रं गृहीत्वा "स्वस्ति नः" इति पठेत् ॥ ३६ ॥

ततो पायसादि-चतुर्विधमन्नं निवेद्य ताम्बूलादिकं दद्यात् ॥४०

ततो नीराजनं—

सौवर्णे राजते कांस्ये पात्रे कुंकुमेनाष्टलपद्मं विलिख्य घृतमयान् दीपान् स्थापयेत्। कर्णिकायामेकं अष्टपत्रेष्वष्टौ। मूलमन्त्रेणाभ्यर्च्य स्थालकं समुद्धृत्य नव वाराम्नीराजनं कुर्यात् ॥४१॥

ततो दूर्वाद्यैरभिषेकं कुर्यात् —

ततः मन्त्रः—"समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात् पुनाना यन्त्यनिविशमानाः इन्द्रो या बज्री वृषभो रराद आपो देवीरिह मामवन्तु, या आपो दिव्या उत वा स्रवंति खनित्रिमा उत वा याः स्वयञ्जाः समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवंतुः, यासु राजा बरूणो यासु सोमो बिश्वे देवा या सूर्यमदन्ति, वैश्वानरो या स्वग्निः प्रविष्टता आपो देवीरिह मामवन्तु"।

ततोऽर्घ्यपाद्यादि —

यथा—यवं सिद्धार्थकं गन्धं कुशाग्रं अक्षतं तिलान् फलं पुष्पाणि

का पाठ कर निवेदित करे ॥३६॥

तदनन्तर पायसादिक चार प्रकार के अन्न का निवेदन कर ताम्बूलादि अर्पण करे ॥४०॥

नीराजन—सुवर्ण, रजत, अथवा कांस्य-पात्र में कुङ्कुम से अष्टदल कमल लिख कर उस पर घृतमय प्रदीपों का स्थापन करे। कर्णिका में एक, तथा अष्टदलों में आठ प्रदीप रख कर मूल-मन्त्र से उनकी पूजा कर थाल को उठा कर नै वार नीराजन करे ॥४१॥

तदनन्तर "समुद्रज्येष्ठाः" इस मन्त्र का पाठ कर पुनः दूर्वादिओं से अभिषेक करे। तत्पश्चात् अर्घ्य-पाद्यादि प्रदान करे। यव, सिद्धार्थ, गन्ध, कुशाग्र, अक्षत, तिल, फल, पुष्प इन द्रवों

एतैः सहितेन जलेनार्घ्यं दद्यात् । पद्म-श्यामाकदूर्वाबिष्णुकान्ता-पाणि-कुशान् एतत्सहितं जलेन पाद्यं दद्यात् । जाती-लवंगादि आचमने मधुपर्के दद्यात् , पुनराचमनं पुनः स्नानं पीतबाससा अलंकरणं यज्ञोपवीतादि ।

पुनः दशाक्षरपटलोक्तपूजनं, महानैवेद्यं, आरात्रिकं ततो गुरोरलंकारगोदानाभिः प्रीणनं, ततः बैष्णवप्रीणनं, ततः महोत्सवं कारयित्वा सुखं बिहरेत ॥ ४२ ॥

अथ श्रीमूर्त्तौ श्रीकृष्णे संनिहिते एतानि लक्षणानि ।

"हर्षं भयं कामः दर्प." इत्यादि ॥

तथोक्तं हयग्रीवे पञ्चरात्रे—

"तस्मिन्नेव मुहूर्त्ते तु हर्षोऽथाभयमेव च ।
चक्षुर्भ्रमो बिभ्रमो वा त्रासो वा जायते यदि ॥
व्यामोहः परमोहो वा स्तनितं परमं तथा ।
अश्रुतानां श्रुतिर्वा स्याद्गात्राणां वाथ वेपथुः ॥
बैराग्यं नेत्रयोर्वा स्यादपः कन्दर्प एव वा ॥

के साथ जल के द्वारा अर्घ्य प्रदान करे । पद्म, श्यामाक, दूर्वा, बिष्णुक्रान्ता, कुश इन द्रव्यों से जल के द्वारा पाद्य देवें । जाई-फल, लौंग आदि आचमन में तथा मधुपर्क में देवें । पुनः आचमन, स्नान करावे तथा पीतवस्त्र, अलङ्कार, जनेऊ आदि प्रदान करे । पुनः दशाक्षर पटल कथित रीति से पूजन करे, महानैद्य का अर्पण करे, आरात्रि कर अलंकार-गोदानादिओं से गुरु तथा बैष्णवों को प्रसन्न करे । तदनन्तर महोत्सव कर सुख पूर्वक बिचरण करे ॥४२॥

श्रीमूर्त्ति में कृष्ण का संनिधान (बिराजमान) होने का लक्षण (चिन्ह) कहते हैं । हर्ष, भय, काम,दर्प ये सब चिन्ह दिखे जाते हैं । हयग्रीवपञ्चरात्र में कहा है—उस समय हर्ष,

नरा नार्योऽथ दृश्यन्ते गायन्त्योप्यथ हर्षिताः" इत्यादि चिह्नैः सान्निध्यम् ॥ ४३ ॥

अथैकाध्वरमार्गेण श्रीमूर्तिस्थापनम्—

तत्र कुण्डमंडपाद्यभावं, आचार्यमात्रेण पूर्वोक्तरीत्या कुर्यात ॥ ४४ ॥

तत्र सन्मुखावलोकिनी शुभदा, अध—उदूर्ध्वपार्श्वाद्यवलोकन्यादियुक्ता वर्ज्या ।

हयशीर्षपञ्चरात्रे—

"प्रतिष्ठितार्च्चा न त्याज्या यावज्जीवं समर्चयेत ।
एवं प्राणपरित्यागः शिरसो चापि कर्त्तनम्" ॥ ४५ ॥

अभय, चक्षु का भ्रम, विभ्रम, त्रास, मूर्च्छा, मेघगर्जन, अश्रुत का श्रुत, देहकम्प, नेत्रों का बिबर्ण, देवता के अतिरिक्त अन्य-वस्तु देखने की अनिच्छा, दर्प त्याग, काम में अनिच्छा, अति आश्चर्य्य, दिव्यध्वनि, दिव्यबाजों की ध्वनि, गन्धर्व्वनगर दर्शन, संगीतज्ञ पुरुष व प्रसन्न युक्त स्त्री का दर्शन, मनोहर तुरहो की ध्वनि, छन्द-गान का श्रवण, एक वस्तु की अनेक प्रकार गन्ध तथा रसवोध ये समस्त लक्षण दिखाई देने से समझे कि श्रीकृष्ण का सान्निध्य हुआ है ॥४३॥

अनन्तर एकाध्वर-मार्ग से श्रीमूर्ति का स्थापन बिवेचन-वहाँ कुण्ड-मण्डपादि का अभाव है, केबल आचार्य्य के द्वारा पूर्वोक्त रीति से करें ॥४४॥

सन्मुख में अवलोकन-कारिणी मूर्त्ति शुभ को देने वाली है, नीचे, ऊपर, पार्श्व में देखने बाली मूर्त्ति वर्जनीय है । हयशीर्ष-पञ्चरात्र में कहा है—प्रतिष्ठित बिग्रह का कभी परित्याग नहीं करना चाहिये । प्राण त्याग उपस्थित हो अथवा मस्तक च्छेदन का समस्या आ जावें तो भी जब तक जीवित रहे तब तक प्रतिष्ठित

अथ वैगुण्ये पुनः संस्कारः। चांडालादिमद्यस्पर्शे पुनः संस्कारः कार्य्यः।

हयशीर्षे—

चांडालमद्यसंस्पर्शा दूषिता बह्निना च वा।
अपुण्यजन-संस्पृष्टा बिप्र क्षतजदूषिता॥ इत्यादौ-
अन्यमन्त्रेणानापूते पुनः संस्कारः ॥ ४६ ॥

ब्रह्मांडपुराणे—

खंडिते स्फुटिते दग्धे भ्रष्टे मानबिवर्जिते।
यागहीने पशुस्पृष्टे पतिते दुष्टभूमिषु ॥
अन्यमन्त्रार्चिते चैव पतितस्पर्शदूषिते।
दशस्वेतेषु नो चक्रुः संनिधानं दिवौकसः ॥४७॥
ततस्तु पुनः संस्कार्यात् ॥

तथा शैवागमे—

खंडिता स्फुटिता भग्ना यस्मादर्च्चा भयावहा।
तस्मात्तसमुद्धरेत्ताञ्च पूर्वोक्तबिधिना बुधः ॥

मूर्त्ति की अर्च्चना करें ॥४५॥

मूर्त्ति के वैगुण्य में पुनः संस्कार किया जा सकता है। चाण्डालादि तथा मद्यादि दूषित वस्तु के स्पर्श से फिर संस्कार होता है। हयशीर्ष में कहा है—चाण्डाल-मद्य से स्पर्श प्राप्त, अग्नि से दूषित, अपवित्र जन से स्पृष्ट, क्षयादि से दूषित मूर्त्ति पुनः संस्कारित होती है दूसरे मन्त्रों से कियी गयी प्रतिष्ठा का पुनः संकार किया जाता है ॥४६॥

ब्रह्माण्डपुराण में कहा है-खण्डित (टूटी), स्फुटित (फुटी हुई) दग्ध, भ्रष्ट, प्रमाण रहित, यागादि से शून्य अर्थात् बिना पूजादि से प्रतिष्ठा की हुई, पशुओं से स्पर्श प्राप्त, दूषित भूमि में पतित, अन्य-मन्त्रों से अर्चित, पतितों के स्पर्श से दूषित इन दश प्रकार

देवताप्रतिमापूजा स्वतन्त्रैरेव चोदिता।
बिज्ञाप्य देबतां मन्त्री पूर्ववन्मन्त्रमुच्चरेत् ॥

इत्यादि दोषे पुनः संस्कारः।

किं च-प्रतिमा यस्य देवस्य स्वशास्त्रे संप्रकीर्त्तिता।
तस्य देबस्य तन्मन्त्रैरर्चां संस्थापयेद्बुधः॥ ४८॥

अन्यच्च एकाहापूजाभावे द्विगुणं सेवनं त्र्याहाभावे महापूजा कार्या, मासादूर्ध्वपूजाभावे पुनः संस्कारः इति।

केचित् संस्कारं फलं मूलान्नास्त्यत्र संशयः मूलात्प्रथमप्रष्ठितातः ॥ ४६ ॥

अथ मन्दिरनिर्माणे कालः—

तत्र चैत्राश्वयुक्पौषमाघान् बिहायान्ये श्रेष्ठा। निर्माणप्रकार-

---

मूर्त्ति में देबता संनिधान नहीं करते हैं॥४७॥

अतः पुनः संस्कार करना चाहिये। शैवागम में कहा है-खण्डित, स्फुटित, भग्न प्राप्त अर्च्चा भयाबह होती है अतः पण्डित गण पूर्वोक्त विधि से पुनः संस्कार कर मूर्त्ति का उद्धार करे। अपने अपने देवता का पूजन उनके अपने अपने तन्त्र शास्त्र में कहा गया है, जैसा कि कृष्णमूर्त्ति का विधान गौतमतन्त्र में है, उसी के अनुसार कृष्ण-मूर्त्ति की प्रतिष्ठा करे। मंत्री देवता को जान कर उन्हीं मन्त्र का प्रयोग कर पुनः संस्कार के द्वारा प्रतिष्ठा-दोष का निराकरण करे॥४८॥

यदि किसी कारण से एक दिन पूजा न हो तो दो गुण सेवा कर उसकी पूर्त्ति करे, तीन दिन के अभाव में महापूजा तथा एक मास-पूजा न होने पर पुनः संस्कार करे। कोई कोई मूल से ही संस्कार फल नहीं है एसा कहते हैं, मूल का तात्पर्य्य प्रथम-प्रतिष्ठा से जानना ॥४६॥

अब मन्दिरनिर्म्माण समय—चैत्र, पौष तथा माघ महिना

स्तु प्रसिद्धः हयशीर्षे प्रकारस्तु बिज्ञातव्यः ॥ ५० ॥

अथ मुद्राः—

सम्यक् संपुटितेः पुष्पैः कराभ्यां रचितोऽञ्जलिः ।
आबाहनीयमाख्याता मुद्रा देशिकसत्तमैः ॥
अधोमुखी कृता सैव प्रोक्ता स्थापन-कर्मणि ।
आश्लिष्टमुष्टियुगला प्रोन्नतांगुष्ठमुष्टिका ।
संनिधाने समादिष्टा मुद्रेयं तन्त्रवेदिभिः ॥
अंगुष्ठगर्भिणी सैव संनिरोधे समीरिता ॥ ५१ ॥
देबताङ्गे षडङ्गानां न्यासः स्यात्सकलीकृतिः ॥
सव्यहस्तकृता मुष्टिर्दीर्घाधो मुखतर्जनी ।
अवगुंठनमुद्रेयमभितो भ्रामिता मता ॥ ५२ ॥
अन्योऽन्याभि-मुखाश्लिष्टा कनिष्ठानामिका ततः ।
तथैव तर्जनीमध्या धेनुमुद्रा समीरिता ॥ ५३ ॥

वाद देकर अन्य समस्त मास श्रेष्ठ हैं ॥५०॥

मुद्रा का विवेचन–सम्यक् रूप से संपुटित पुष्पों को रख कर दोनों करों से अञ्जली बनाना उत्तमदेशिकों ने आवाहनी मुद्रा कहा है जो कि आवाहन कर्म्म में प्रशस्त है यदि बह मुद्रा अधो-मुखी की जाती है तो बह स्थापन कर्म्म में उत्तम है। दोनों मूठी आश्लिष्ट वाली तथा अंगुठा उच्ची की जाने वाली मुद्रा को संनिधान कर्म में तन्त्रज्ञों ने उत्तम माना है। यदि अंगुठा भीतर किया जाता है तो वह मुद्रा संनिरोध कर्म्म में उत्तम है ॥५१॥

देवता के षडंगों का न्यास सकलीकरण है। सव्य हाथ मुष्टि बद्ध हों तर्ज्जनी अधोमुख हों, तो वह अबगुण्ठन मुद्रा कही जाती है, जिसको चार ओर भ्रमित किया जाता है ॥५२॥

जिस में कनिष्ठांगुलि तथा अनामिका दोनों परस्पर अभिमुख

अन्योन्यग्रथितांगुष्ठा प्रसारितकरांगुली ।
महामुद्रेयमुदिता परमीकरणे बुधैः ॥ ५४ ॥
कनिष्ठाङ्गुष्ठौ संसक्तौ करयोरितरेतरम् ।
तर्जनीमध्यमानामा संहिताभुग्नसज्जिता ॥
मुद्रेयं गालिनी प्रोक्ता सुगुप्ता प्रेयसी हरेः ॥ ५५ ॥
नाराच-मुष्ट्य दूतबाहुयुग्मकाङ्गुष्ठतर्ज्जन्युदितो ध्वनिस्तु ।
बिष्वग्विषक्तः कथिताऽस्त्रमुद्रा यत्राक्षिणी तर्ज्जनी-मध्यमे तु ॥५६॥
ओष्ठे बामकराङ्गुष्ठो नम्रस्तस्य कनिष्ठिका ।
दक्षिणाङ्गुष्ठसंयुक्ता तत्कनिष्ठा प्रसारिता ॥
तर्जनीमध्यमानामाः किञ्चित्संकुच्य चालिताः ।
वेणुमुद्रा च कथिता सुगुप्ता प्रेयसी हरेः ॥ ५७ ॥

में आश्लिष्ट है, उसी प्रकार तर्जनी तथा मध्यमा आश्लिष्ट प्राप्त है तो बह धेनुमुद्रा कही जाती है ॥५३॥

जिसमें दोनों अँगूठे परस्पर संयोजित होते हैं तथा हस्ता-ङ्गुलियाँ प्रसारित है वह महामुद्रा है जो परमीकरण में प्रश-स्त है ॥ ५४ ॥

दोनों हाथ के कनिष्ठ तथा अङ्गुष्ठ परस्पर (एक से दूसरे) संश्लिष्ट होते हैं, तर्ज्जनी, मध्यमा एवं अनामिका कुछ भुग्न हो कर सज्जित होते हैं तो वह गालिनी–मुद्रा है जो श्रीहरि की परम प्रिय है तथा जो अत्यन्त गोपनीया है॥५५॥

मुष्टि युक्त दोनों वाहुओं को वाण की भाँति उठाकर उनके (भुजाओं) अंगुष्ट तर्ज्जनी के द्वारा समस्त दिशा व्याप्त ध्वनि की जाती है बह अस्त्रमुद्रा है। उसमें तर्ज्जनी एवं मध्यमा मिल-कर नेत्र स्पर्शित होते हैं ॥५६॥

होंठ पर बाँये हाथ का अंगुष्ठ संलग्न हों, कनिष्ठाङ्गुलि कुछ नम्र हो, वह कनिष्ठांगुलि दक्षिण हाथ के अंगुष्ठ से संयुक्त रह करप्रसा-

अन्योन्यपृष्ठकरयोर्मध्यमानामिकाङ्गुली ।
अङ्गुष्ठेन तु बध्नीयात् कनिष्ठामूलसंस्थिते ॥
तर्ज्जन्यौ कारयेदेषा मुद्रा श्रीबत्ससंज्ञिका ॥ ५८ ॥
अनामा पृष्ठसंलग्ना दक्षिणस्य कनिष्ठिका ।
कनिष्ठयान्यया बद्ध्वा तर्ज्जन्या दक्षया तथा ॥
बामानामां च बध्नीयात् दक्षाङ्गुष्ठस्य मूलके ।
अङ्गुष्ठमध्यमे बामे संयोज्य सरलाः पराः ॥
चतस्रोऽप्यग्रसंलग्ना मुद्रा कौस्तुभसंज्ञिका ॥ ५९ ॥
स्पृशेत्कण्ठादिपादान्तं तर्जन्याङ्गुष्ठया तथा ।
करद्वयेन मालाबत मुद्रेयं बनमालिका ॥ ६० ॥
उच्यतेऽच्युतमुद्राणां मुद्रा बिल्वफलाकृतिः ॥
अङ्गुष्ठं बाममुद्दण्डितमितरकराङ्गुष्ठकेनाथ बद्ध्वा
तस्याग्रं पीडयित्वाङ्गुलिभिरपि तथा बामहस्ताङ्गुलिभिः ।

रित हो, तर्ज्जनी मध्यमा तथा अनामिका कुछ संकुचित हो कर चलायमान हों तो वह वेणुमुद्रा कही जाती है जो हरि की गुप्त प्रेयसी है ॥५७॥

दोनों हाथ के मध्यमा तथा अनामिका परस्पर संश्लिष्ट है, अंगुष्ठ के द्वारा बंधे हुए है, कनिष्ठा के मूल में संश्रित है, जो तर्ज्जनी के द्वारा की जाती है वह श्रीवत्समुद्रा है ॥५८॥

दक्षिण हाथ की कनिष्ठांगुलि बाम अनामिका पृष्ठ से संलग्न, दक्षिण हाथ की तर्जनी के के द्वारा बाम हाथ की कनिष्ठा के द्वारा संलग्न, बाम-अनामिका दक्षिण-अंगुष्ठ के मूल में बंधी होती है, बाम हाथ के अंगुष्ठ, मध्यमा में संयोजित अन्य अंगुलियाँ परस्पर संलग्न होते हैं वह कौस्तुभमुद्रा है ॥५९॥

तर्जनी, अंगुष्ठ तथा कनिष्ठा के द्वारा कंठादि से लेकर चरण पर्य्यन्त दोनों हाथ से माला की भाँति स्पर्श बनमाला है ॥६०॥

बध्वा गाढं हृदि स्थापयतु विमलधीर्व्याहरन्मारबीजं
बिल्वाख्या मुद्रिकैषा स्फुटमिह कथिता गोपनीया बिधिज्ञैः ॥६१
मनो-बाणी-देहैर्यदिह च पुरा वाऽपि विहितं
त्वमत्या मत्या वा तदखिलमसौ दुष्कृतिचयम् ।
इमां मुद्रां जानन् क्षपयति नरस्तं सुरगणाः
नमन्त्यस्याधीना भवति सततं सर्वजनता ॥ ६२ ॥
हस्तौ तु सन्मुखं कृत्वा संलग्नौ संप्रसारितौ ।
कनिष्ठांगुष्ठकौ लग्नौ मुद्रैषा चक्रसंज्ञिता ॥ ६३ ॥

अथ पुरश्चरणम्

पुरश्चरणमादश्यकत्वम् —तथोक्तं पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्—

बिना येन न सिद्धः स्यान्मन्त्रो बर्षशतैरपि ।
किं होमैः किं जपैश्चैव किं मन्त्रन्यासबिस्तरैः ॥
रहस्यानां हि मन्त्राणां यदि न स्यात्पुरस्क्रिया ।
पुरस्क्रिया हि मन्त्राणां प्रधानं बीजमुच्यते ॥

बिल्वमुद्रा-उद्दण्डित (दण्डाकार ऊपर को करके फिर नीचे की ओर करना) बाएँ अंगूठे से बाँध कर उसके अग्रभाग को अर्थात् दक्षिणकराङ्गुष्ठ के अँगुलियों से पीडित कर पुनः बाम हाथ की अँगुलियों से दक्षिण हाथ की अंगुलियों को गाढ़-रूप से बाँध कर बिमलबुद्धि वाला साधक काम-बीज का उच्चारण कर हृदय में स्थापित करे। उसको बिल्वमुद्रा कहते हैं, इस मुद्रा को अत्यन्त गोपनीय रखे ॥६१॥

मनुष्य इस मुद्रा को जान कर मन बाणी तथा शरीर से ज्ञान बा अज्ञान पूर्वक दिन रात किये हुए समस्त पापपुञ्ज को नष्ट कर देता है। देवता गण उसको नमस्कार करते हैं। इस मुद्रा को करने वाला, समस्त जनता को अपने आधीन कर लेता है ॥६२

दोनों हाथ को सन्मुख कर संलग्न पूर्वक प्रसारित कर कनिष्ठ

जीवहीनो यथा देहः सर्वकर्मसु न क्षमः ।
पुरश्चरणहीनो हि तथा मन्त्रः प्रकीर्त्तितः ॥

आगमे—

बिना येन न सिद्धः स्यात् मन्त्रो बर्षशतैरपि ।
कृतेन येन लभते साधको वाञ्छितं फलम् ॥ ६४ ॥

श्रीवृन्दावनादौ गुरुसंनिधौ वा पुरश्चरणार्थं स्थानं स्वीकुर्यात् ।

यथा याज्ञवल्क्ये—

गृहे त्वेकं गुणं जप्यं नद्यां तु द्विगुणं स्मृतम् ।
गवां गोष्ठे दश गुणमग्न्यागारे दशाधिकम् ॥
सिद्धक्षेत्रेषु तीर्थेषु देबतानां च संनिधौ ।
सहस्र-शत-कोटीनामनन्तं बिष्णुसंनिधौ इति ॥ ॥६५॥

तथा अङ्गुष्ठ का संलग्न करने पर चक्रमुद्रा होती है ॥६३॥

पुरश्चरण—पुरश्चरण का परम आवश्यक है । पुरश्चरण-चन्द्रिका में कहा है कि—जिसके बिना सौ वर्ष में भी मन्त्र सिद्ध नहीं होता है । होमों से, जपों से तथा बिस्तर मन्त्र न्यासों से क्या हो सकता है, यदि रहस्य मन्त्रों का पुरश्चरण नही किया जाता है । पुरश्चरण को मन्त्रों का प्रधान वीज रूप जानना चाहिये । जिस प्रकार जीवन रहित शरीर समस्त कर्मों में अक्षम होता है, ठीक उसी प्रकार पुरश्चरण से रहितमन्त्र असफल होता है । आगमशास्त्र में कहा है कि जिसके बिना मन्त्र सौ वर्ष में भी सिद्ध नही होता है । जिसके करने पर साधक बाञ्छितफल का लाभ करता है ॥६४॥

श्री वृन्दावनादिक भगवद्धाम में अथवा गुरु की संनिधि में पुरश्चरण के लिये स्थान का ग्रहण करे । याज्ञवल्क्य ने कहा है कि–घर पर जप करने से एक गुना फल, नदी के तट पर दो गुना, गऊओं के गोष्ठ में दस गुना, अग्नि–गृह में दसगुना,

अथ भक्ष्यम् —

"शाकं पयः मूलं फलं वापि यद्यद्यत्रोपयुज्यते ॥"

अन्यत्सर्व्वं तैलादिवर्ज्यं त्रिसवस्नानं पूजा च अशक्तौ द्वयं एकं वा, तथोक्तम—"मन्त्रं साधपमानस्तु त्रिसन्ध्यं देवमर्चयेत् ।
द्विसन्ध्यमेकसन्ध्यं वा न मन्त्रं केवलं जपेत् ॥६६॥

अथ बर्ज्यानि—

स्त्री-शूद्र-पतित-व्रात्या-नास्तिकोच्छिष्टभाषणम् ।
असत्यभाषणं चोक्तिकुटिलां परिवर्जयेत ॥
सत्येनापि न भाषेत जपहोमार्च्चनादिषु ।
वर्ज्जयेद्गीतवाद्यानि श्रवणं नृत्यदर्शनम ॥
अभ्यङ्गाङ्गलेपनं च पुष्पधारणमेव च ।
मैथुनं तत्कथालापं तद्गोष्ठीं परिवर्जयेत ॥
उष्णोदकं च—
पूर्वं ब्रह्मोचारं बिष्णुर्मध्यपत्रं महेश्वरः ।
ब्रह्मपत्रे च भुंजीत मध्यपत्रबिवर्ज्जिते ॥ ६७ ॥

सिद्ध क्षेत्रों में, तीर्थों में तथा देवताओं के समक्ष में, सहस्र शत कोटि गुना तथा विष्णु के निकट में अनन्त गुना फल होता है ॥६५

भक्ष्यद्रव्यः—साग, दुग्ध, फल, मूल, जो जहाँ सुगम से उपलब्ध होता है, उनका ग्रहण करे । तैलादिक निषेध हैं, तीन बार स्नान एवं पूजन करे, अशक्ति में दो वार अथबा एक बार करे। जैसा कि कहा है, मन्त्र के साधक त्रिसन्ध्या देवता की अर्चना करे, अथवा दोनों सन्ध्या में, अथवा एक सन्ध्या में पूजा करे । बिना पूजन से मन्त्र जप न करे ॥६६॥

निषेधवस्तुः—स्त्री, शूद्र, पतित, चाँडाल, नास्तिक, इनका दर्शन तथा स्पर्शादि निषेध है, उच्छिष्ट भोजन न करे, मिथ्या न बोले तथा कुटिल बचन का त्याग करे। जप होम तथा अर्चनादि

अथासनम्—

सर्वसिद्ध्यै व्याघ्रचर्म ज्ञानसिद्ध्यै मृगाजिनम् ।
बस्त्रासनं रोगहरं वेत्रजं श्रीबिवर्द्धनम् ॥
कौशेयं पौष्टिकं प्रोक्तं कम्बलं दुःखमोचनम् ॥ ६८ ॥

अथासनं— स्वस्तिकादिषूपविशेत्—

जानूर्व्वोरन्तरे कृत्वा सम्यक्पादतले उभे ।
ऋजुकाय-समासीनः स्वस्तिकं तदुदीरितम् ॥
गुल्फौ च वृषणस्याधः सीवन्योः पार्श्वयोः क्षिपेत् ।
पार्श्वपादौ च पाणिभ्यां दृढां बध्वा सुनिश्चलः ॥
भद्रासनं भवेदेतत् सर्वव्याधिबिषापहम् ॥ ६९ ॥

समय में सत्य बचन भी न बोले अर्थात मौन रहे। गान, बाद्य, श्रवण, नृत्य दर्शन, समस्त अंगो का लेपन, पुष्पों का धारण, मैथुन, मैथुन बिषय का आलाप, मैथुन गोष्ठिका संग न करे। उष्ण-जल से स्नान करना भी निषेध है। ब्रह्म (ढ़ाक) पत्र में भोजन करे, परन्तु मध्यम पत्र का वाद दें! ढ़ाक के तीन पत्ते होतेहैं। पहला पत्र ब्रह्मा, दूसरा पत्र विष्णु तथा तीसरा मध्यम पत्र शिवरूप है ॥६७॥

आसनः—समस्त सिद्धि के लिये व्याघ्र चर्म, ज्ञान-सिद्धि के लिये मृगछाल प्रसस्त है, वस्त्रासन रोग का हरण करता है, वेत्रजात आसन श्री को बढ़ाने बाला होता है। बस्त्रासन पौष्टिक तथा कम्बल आसन दुःखमोचन होता है ॥६८॥

आसनः—स्वस्तिकासन में वैठ कर मन्त्र जप करे। जानू एवं जंघा के बीच में दोनों चरण रखकर सीधे वैठना स्वस्तिक आसन है। दोनों गुल्प को अण्डकोश के नीचे सीवनि (लिंग के आगे से लेकर गुह्य तक) के पास रख कर दोनों पार्श्व के पादों को हाथों से दृढ़ता पूर्वक बांध कर निश्चलरूप से रहने का

अथ माला-बैष्णबैस्तु तुलसीमालैव। तथोक्तं—

"बैष्णवे तुलसीमाला गजदन्तैर्गणेश्वरे" इति-
अन्या तु कामनाबिशेषे ॥ ७० ॥

अथ संख्या—

तत्रैव-मोक्षार्थी पंचविंशत्या धनार्थी त्रिंशता जपेत् ।
पुष्ट्यार्थी सप्त-विंशत्या पंचदश्याभिचारके ॥ ७१ ॥

अंगुलिजपस्तु —

कनिष्ठानामिका मध्या चतुर्थी तर्जनी मता ।
तिस्रोऽगुंल्यस्त्रिपर्वाः स्युर्मध्यमा चैकपर्विका ॥
पर्वद्वयं मध्यमायाः जपकाले विवर्जयेत् ।

भद्रासन है, यह समस्त व्याधि तथा विष का हरण करता है ॥६९॥

माला:-बैष्णव तुलसी माला से ही जप करें। जैसा कि कहा है-वैष्णव-जन में तुलसी माला प्रशस्त है। गणेश के उपासक हाथी दाँत की माला से जप करें। कामना बिशेष को लेकर अन्य मालाओं से जप का बिधान है ॥७०॥

संख्या:-मोक्षार्थी पच्चीस मनिया वाली माला से, धनार्थी तीस मनीया वाली से तथा पुष्टि चाहने बाले सत्ताईस मनिया वाली माला से जप करे। अभिचार में पन्द्रह मनिया बाली माला प्रशस्त है ॥७१॥

अंगुली जप का विधान:-कनिष्ठा, अनामिका, मध्यमा एवं तर्जनी जप के विषय मे प्रशस्त हैं, उनमें से कनिष्ठा, अनामिका, एवं तर्जनी तीन पर्व बाली होती है और मध्यमा एक पर्व बाली मानी जाती है। जप के समय मध्यमा के दोनों पर्व बाधित हैं। जप के समय अंगुलियों को खुली न रक्खे। जैसा कि कहा है जप के समय अगुंलियों को नहीं खोले, एवं वलभाग को किंचित संको-

संलग्नांगुलिभिः कुर्यात्—
तथा-अंगुलीर्न वियुञ्जीत किंचित्संकोचयेत्तलम् ।
अंगुलीनां वियोगे तु छिद्रेषु स्रवते जपः !
अंगुल्यग्रेषु यज्जप्तं यज्जप्तं मेरुलङ्घने ।
पर्वसन्धिषु यज्जप्तं तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥
गणनां विना न जपेत् ॥७२॥

अथ संस्कारः—

तुलसी-काष्ठनिर्मितमणिभिः न स्थूलैः नातिकृशैः न कीटविद्धैः नवैरेव कारयेन्मालां ।

यथा मणिनादाय पञ्च गव्यैः प्रदयाल्यवैष्णवीकर्त्तितैः सूत्रैः नव गुणैः पट्टैर्वा कुर्यात्पवित्रः सन् शुभे दिने ।

ततः पञ्चगव्यैस्तत्तान्मन्त्रेण प्रक्षाल्य मन्त्रास्तु प्रतिष्ठासमये उक्ताः ॥

तथाहि-पूर्वं पञ्चगव्यैरभिषिच्य ततः सज्जलैः क्षालयेत्—
"ओं सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः ॥
भवे भवे नाभिभवे भजस्व मां भवोद्भवाय नमः ॥"
इति मन्त्रेण ॥७३॥

चित करे । अंगुलियों के बियोग से छिद्रों में से जप गिर जाता है । अंगुली के अग्रभाग से जो जप है, सुमेरु के लंघन में जो जप है तथा अंगुलियों के पर्वों की सन्धियों में जो जप है वह निष्फल होता है । बिना संख्या के जप न करे ॥७२॥

मालासंस्कारः-तुलसी काष्ठ निर्मित मनिओं से माला वनावे । समस्त वे मनीयाँ न अत्यन्त स्थूल हों न अत्यन्त कृश हों, न कीट से दूषित हों । मनियों को लेकर पंचगव्यों में यथा रीति से स्नान कराकर वैष्णवों के द्वारा काते हुये सूतों को नो गुणा-

चन्दनागुरुगन्धाद्यैः घर्षयेत्—

"ओं वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो वलविकरणाय नमो वलाय नमो वलप्रमथनाय नमः । सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः" इत्यनेन ॥७४॥

अथ तां धूपयेत्—

ओं अघोरेभ्यो घोरतरेभ्यो सर्वेभ्यः सर्वसर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः शिवेभ्यः" ॥७५॥

ततः पुरुषमन्त्रेण लेपयेत्—

ओं तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रःप्रचोदयात् ।

ततः एकैकं मणिं इशानमन्त्रेण मन्त्रयेत्—

"ओं ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मेऽस्तु सदा शिवाय" ॥७६॥

ततः तेनैव मेरुं च ततो मूलेन मन्त्रयेत सर्वं मूलेनैव वा ब्रह्मग्रन्थिना रचयेत् मूलमन्त्रपूर्वकं ततः प्रत्येकं मणिं अष्टोत्तरशतं

कर पवित्र होकर उत्तम दिन में माला वनावे ! तदनन्तर पंचगव्यों से उन उन मंत्र पाठ के साथ अभिषेक करे । प्रतिष्ठा के समय मंत्र कहे गये हैं । शिवागम में लिखा है कि-"सद्योजात" इस मन्त्र के द्वारा पंचगव्यों से माला को प्रक्षालन करे । "वामदेव" मन्त्र के द्वारा चन्दन एवंअगर गन्धादिक से घर्षण करे, "अघोर" मन्त्र से धूपन करे, पुरुष मंत्र से चन्दनादि के द्वारा लेपन करे, ईशानादि मन्त्र के द्वारा प्रत्येक मनियाँ को सौबार आमंत्रित करे तथा सुमेरु को ईशानादि मन्त्र से तथा अघोर-मन्त्र से मूलमन्त्रेण वा अभिमंत्रित करे । ब्रह्मगांठ से माला की रचना शुरु करे । प्रत्येक मणियों को लेकर एक सौ आठ बार मूलमन्त्र का जपकरे ।

प्रजपेत् । ततः गुरोः सकाशात् स्वीकुर्य्यात् , ततः गुरुं सम्पूजये-द्वस्त्रादिभिः ॥७७॥

अथ जपप्रकारः—

अशुचिर्न स्पृशेदेनां करभ्रष्टां न कारयेत् ।
अंगुष्ठस्थामक्षमालां चालयेन्मध्यमाग्रतः ।
तर्ज्जन्या न स्पृशेत्सोऽयं मुक्तिदो गणनक्रमः ।
भुक्तौ मुक्तौ तथाकृष्टौ मध्यमायां जपेत् सुधीः ॥
जपान्यकाले मालां च पूजयित्वा सुगोपयेत् ।
गुरुं प्रकाशयेद्विद्वान्मन्त्रं नैव प्रकाशयेत् ।
अक्षमालां च मुद्रां च गुरोरपि न दर्शयेत् ।
भूतराक्षसवेतालाः सिद्धगधर्वचारणाः ॥
हरन्ति प्रकटं यस्मात्तस्माद्गुह्यं जपेत्सुधीः ॥७८॥

गुरु से माला ग्रहण करे एवं वस्त्रादियों से गुरु का पूजन करे ॥७३-७७॥

जपका प्रकारः—अशुचि अवस्था में माला का स्थापन करे एवं माला को कर भ्रष्ट न करे, अगुष्ठ में स्थित अक्षमाला को मध्यमा के अग्रभाग में रख कर संचालन करे। तर्ज्जनी द्वारा माला का स्पर्श न करे। भुक्ति, मुक्ति एवं आकर्षण के विषय में मध्यमा में जप करना चाहिये। जप के समय माला की पूजा-कर गोपन करदें। शास्त्र में कहा है कि विद्वान लोग भले गुरु को प्रकाशित करे परन्तु मन्त्र का कभी प्रकाश न करे, अक्षमाला एवं मुद्रा को गुरु को भी न दिखावे,। भूत, राक्षस, वेताल, सिद्ध, गन्धर्व, चारण आदिक साक्षात् जप का हरण करते हैं। अतः पांडितगण माला को गोपनीय रख जप करे ॥७८॥

अथ जपभेदः—

जपस्तु द्विविधो ज्ञेयो वाचिको मानसस्तथा ।
आद्यो ह्युपांशुरुच्चैश्च द्विविधः परिकीर्त्तितः ।
द्वितीयो द्विविधो ज्ञेयो जिह्वा-चित्तप्रभेदतः ।
उपांशुस्तु ईषदुच्चारः शनैरर्थानुसन्धानपूर्वकं ।
प्रतिदिनं न न्यूनं नाधिकं यावत्समाप्तिः ॥७९॥

तथोक्तं—

न न्यूनं नाधिकं वापि जपं कुर्याद्दिने दिने ।

निषेधः—

"उष्णीषी कंचुकी नग्नो मुक्तकेशो गलावृतः ।
अपवित्रकरोऽशुद्धः प्रलपन्न जपेत् क्वचित् ॥
जृम्भादिकं न कुर्यात् ॥८०॥

जपभेदः—जप दो प्रकार के होते हैं, वाचिक एवं मानसिक। वाचिक—उच्चनीच एवं स्वरित अर्थात उदात्त,अनुदात्त एवं स्वरित स्वर योग से, परिस्कार वर्ण के द्वारा स्पष्ट भाव से उच्चारित मंत्र वाचिक हैं। जिस जप में मंत्र का उच्चारण धीरे से होता है दोनों होंठ कुछ चलते रहते हैं, केवल अपने आप को हीं सुनाया जाता है वह उपांशु हैं। अपनी बुद्धि से एक वर्ण से दूसरे वर्ण एवं एक पद से दूसरे पद की जो अर्थ चिन्ता है उसकी वार बार आवृत्ति मानस जप है ॥७९॥

जैसा कि शास्त्र में कहा है, नित्य प्रति समान संख्या से जप-करे न अधिक करे न कम करे, निषेधः—पगड़ीबाँधकर, कुर्त्तादि पहन कर, नग्न होकर, केश खोल कर, गला ढ़ाक कर जप न करे। अपवित्र हस्त से अशुद्ध अवस्था में जप न करे। प्रलाप करते हुए जप नहीं करना चाहिये। जप के समय जँमाही न ले ॥ ८० ॥

अथभूमिपरिग्रहः—

पुण्यक्षेत्रादिकं गत्वा तथा ह्यमुकमन्त्रस्य पुरश्चरणसिद्धये मयेयं गृह्यते भूमिर्मन्त्रोऽयं सिद्धयतामिति ।

तत्रभूमिमानं—

गृहे क्रोशमितं स्थानं नद्यादौ स्वेच्छया मितम् ।
नगरादावथ क्रोशं क्रोशयुग्मथापि वा ॥

तत्राहारविहारार्थं भूमिं स्वीकुर्य्यात् तन्मध्य एव तिष्टेत् । तत्र चिह्नार्थं कीलानि निखनेत् ।

तथोक्तम्—

क्षीरिवृक्षोद्भवान्कीलानस्त्रमन्त्राभिमन्त्रितान् ॥
निखनेद्दशदिग्भागे तेष्वस्त्रं च प्रपूजयेत् ॥८१॥

अथ कूर्मचक्रम्—

"वर्त्तुलं नवकोष्ठं तु कृत्वा कूर्माकृतिं लिखेत् ।"
स्वरयुग्मं क्रमेणैव ऐन्द्याद्यष्टसु दिक्षु च ।
कादीन् वर्गान् क्षमैशान्यां मध्ये क्षेत्राधिपं नयेत् ॥

भूमिपरिग्रहः—पवित्र क्षेत्रादिक में जाकर वहाँ अमुक मन्त्र के पुरश्चरण सिद्धि के लिये मैं इस भूमि का ग्रहण करता हूँ, मेरा यह मंत्र सिद्धि को प्राप्त करे । इस प्रकार संकल्प कर भूमि परिग्रह करें । भूमि का परिमाणः—अपने घर पर एक कोस, नद्यादि तट पर इच्छा पूर्बक, नगर मे एककोस अथवा दो कोस आहार विहार के लिये भूमिका ग्रहण करे और उसी के अन्दर निबास करे बाहर न जाये । चिन्ह के लिये कील गाढ़ देवें । जैसे कहा है—क्षीरी-वृक्ष से उद्भव कीलों को अस्त्र-मन्त्र से अभिमन्त्रित कर दश दिशाओं में गाढ़ देवे तथा उनको अस्त्र-मन्त्र से पूजित भी करे ॥८१॥

कूर्म्मचक्र-वर्त्तुल नौ कोठे करके कूर्म्माकार का अङ्कन करे। मुख,

क्षेत्रनामाद्यवर्णस्तु यस्मिन् कोष्ठे स्थितो भवेत् ।
मुखं तत्तस्य जानीयाद्धस्तावुभयतः स्थितौ ।
उदासीनः पादस्थो स्यादृकुक्षौ दुःखमवाप्नुयात् ॥
पुच्छस्थः पीड्यते मन्त्री बन्धनोच्चाटनादिभिः ॥
कुर्मचक्रमुखे चतुरस्रां कुटीं चकारयेत् ॥८२॥

ततः अयुतमात्रं जपं कुर्य्यादधिकारभेदेन गोपालादिगायत्र्याः । ततः गुरुं प्रतोष्य वैष्णवञ्च ततः प्रारभेत् ॥८३॥

ततः काले गुरुं ध्यात्वा पूर्वोक्तप्रकारेण स्नानादिकं कृत्वा गुरुं पूजयित्वा च ततः कुटीं प्रविशेत् । ततः भूतशुद्धादि सर्वन्यास-

---

दोनों हाथ, दोनों पार्श्व, दोनों चरण, और पुच्छ ये कूर्म्मके अंग हैं "अ-आ" "इ ई" इत्यादि स्वर के दो दो वर्ण पूर्वादि क्रम से कूर्म्म के आठ कोठों में अङ्कित करे तथा ईशान कोन के अतिरिक्त अन्य सात दिशाओं में ककारादि सात वर्ग-अर्थात् क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग, प वर्ग, अन्तस्थ वर्ग और उष्मवर्ग, लिखना चाहिये । जिस ओर जपकारी के ग्राम नाम का प्रथम अक्षर रहेगा उसी ओर कूर्म्म के मुख है । दोनों पार्श्व के दो कोठे दोनों हाथ, उसके नीचे के दोनों कोठे कोंख, उसके नीचे के दोनों कोठे दोनों चरण तथा शेष कोठे को कूर्म्म की पूछ मानना चाहिये । कूर्म्म चक्र का पाद में बैठ कर जप करने से दुःख होता है, पुच्छ में बन्धन—उच्चाटनादि बिषय में पीडा होती है। कूर्म्मचक्र के मुख पर चार कोन की कुटी का कल्पना कर उसमें बैठ कर जप करे । कुटीस्थान में बैठ कर अयुत संख्या से पूर्व सेवा रूप में जप करे । अधिकार भेद से मन्त्र जप भेद गोपाल-गायत्री का जप करे। अधिकार भेद से मन्त्र जप भेद है । तदनन्तर गुरु-वैष्णवों का सन्तोष कर जप का प्रारम्भ करे तत्पश्चात् यथा समय गुरु का ध्यान कर पूर्वोक्त प्रकार से स्नानादि कर गुरु पूजन करें तदनन्तर कुटी में प्रवेश करे । तदनन्तर

जालं कृत्वा श्रीकृष्णं पूजयित्वा जपित्वा ततः जपं समाप्य होमं कुर्य्यात् होमं समाप्य तर्पणं कुर्यात् ततो मार्जनं ततः वैष्णव-भोजनमिति ॥८४॥

तथोक्तं पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्—

ततो जपाद्दशांशेन होमं कुर्याद्दिने दिने ।
अथवा लक्षसंख्यायां पूर्णायां होममाचरेत् ॥
होमाद्दशांशतः कुर्यात्तर्पणं देवतामुखे ।
तर्पणस्य दशांशेन मार्ज्जयेदात्ममूर्द्धनि ।
मार्जनस्य दशांशेन कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ।
होमाशक्तो जपं कुर्युः होम-संख्या-चतुर्गुणम् ।
षड्गुणं चाष्टगुणितं यथा संख्यं द्विजातयः ॥८५॥

तत्तत्स्त्रीणां तथैव शूद्रस्य तत्तदाश्रयत्वेन् । जपस्तु यन्मन्त्रे यावत् संख्याको जपस्तथैव पुरश्चरणम् । अष्टादशाक्षरमधिकृत्य। प्रपञ्चसारे—

जपः स्यादसमर्थस्य अयुतद्वितयावधिरिति ॥

शारदायां च—

मन्त्रमेनं यथान्यायमयुतद्वितयं जपेत् ॥८६॥

भूत—शुद्धयादि न्यास समूह का कर श्रीकृष्ण का पूजन कर जप करे। जप समाप्त के बाद होम करे, होम के बाद तर्पण, तर्पण के बाद मार्ज्जन, तदनन्तर वैष्णव-सेवा करे ॥८२—८४॥

पुरश्चरणचन्द्रिका में कहा है-तदनन्तर अर्थात् जप के बाद प्रति-दिन जप के दशमांश में होम करे। किम्बा लक्षसंख्या-जप के बाद होम करे। होम के दशमांश देबता के समक्ष तर्पण करना चाहिये। तर्पण के दशांश में अपने मस्तक पर मार्ज्जन करे। मार्ज्जन के दशांश ब्राह्मण भोजन करावें। होम का असमर्थ में होम संख्या के चारि-गुण जप करे। अर्थात् होम संख्या मानो एक हजार है उसके

यत्र तु लक्षचतुष्टयं संख्या तत्रान्यतः परोक्षे कामना-विशेषेऽनुसंध्येयः।

सनत्कुमारकल्पे—

उक्तं लक्षं कृते युगे त्रेतायां तु द्वयं स्मृतम् ।
लक्षत्रयं द्वापरे तु चतुर्लक्षं कलौ युगे ॥८७॥

यत्र तु संख्या नोक्ता तत्र जप—होमे अष्ट—सहस्रसंख्या ज्ञातव्या।

तथोक्तं तत्रैव—

येषां जपे च होमे च सङ्ख्या नोक्ता मनीषिभिः ।
तेषामष्ट-सहस्राणि सङ्ख्या च जपहोमयोः ॥
ततः गुरुं विशेषतः सन्तोषयेत् ॥८८॥

परिवर्त्त में चार हजार जप करे। यह ब्राह्मण के लिये बिधान है। उसी प्रकार क्षत्रि छै गुना तथा वैश्य आठ गुना जप करे। उन वर्णों के आश्रित शूद्र अथवा स्त्री उन्हीं की संख्या के अनुसार जप करे। जिस मन्त्र में जिस परिमाण की संख्या है उसी संख्या से जप पुरश्चरण है। अष्टदशाक्षर गोपाल-मन्त्र का अधिकार कर प्रपञ्चसागर में कहा है-इस मन्त्र का यथा विधि से दो अयुत (बीस हजार) जप करें। जहाँ चार लाख की संख्या कही गई है वह असाक्षात में कामना-बिशेष को लेकर जानना चाहिये। सनत्कुमारकल्प में कहा है-सत्ययुग में एक लाख, त्रेता में दो लाख, द्वापर में तीन लाख, कलियुग में चार लाख जप संख्या है। जहाँ संख्या नहीं बतलाई है वहाँ जपादि में आठ हजार संख्या जानना चाहिये। जैसे सनत्कुमारतन्त्र में कहा है-जिन मन्त्रों की जप-होम में संख्या नहीं कही गई है उन मन्त्रों की संख्या जप-होम कर्म्म में आठ हजार जानना चाहिये। तदनन्तर गुरु को बिशेष रूप से प्रसन्न करे ॥८५-८८॥

अथवा ग्रहणे पूर्वमुपवासं कृत्वा, न्यासादिकं विधाय ग्रहणात् मोक्षपर्यन्तं जपेत्। यावत् संख्याको जपस्तद्दशांशेन होमस्तद्दशांशस्तर्पणं, तद्दशांशो मार्जनं, वैष्णवगुरुतृप्तिस्तु यथा शक्त्या। तथोक्तं—

ग्रहणेऽर्कस्य चेन्दोर्वा शुचिपूर्वमुपोषितः।
नद्यां समुद्रगामिन्यां नाभिमात्रोदके स्थितः॥
ग्रहणादि-विमोक्षान्तं जपेन्मत्रं समाहितः।
तदन्ते महतीं पूजां कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम्॥
ततो मन्त्र-प्रसिद्धार्थं गुरुं सम्पूज्य तोषयेत्॥

अथवा हविष्य-स्वल्पं भुङ्क्त्वा ग्रहणे जपादिकं कुर्यात्। अथवा गुरुमेव सन्तोषयेत् ॥८६॥

तथोक्तं-अथवा देवतारूपं गुरुं ध्यात्वा प्रतोषयेत्॥

अथवा ग्रहण के पहले उपवास करते हुए न्यासादिक का विधान पूर्वक कर ग्रहण प्रारम्भ से लेकर मोक्ष पर्य्यन्त जप करें। जितनी संख्या में जप हो, उसके दशांश में होम, उसके दशांश में तर्पण, तर्पण के दशांश में मार्जन, तथा यथा शक्ति वैष्णव-गुरु की तृप्ति करें। जैसा कि कहा है—सूर्य्य अथवा चन्द्र का ग्रहण में पहले पवित्र पूर्वक उपवासादि कर समुद्र-गामिनी नदी में नाभिमात्र का जल में खडे होकर ग्रहण के प्रारम्भ से लेकर मोक्ष-पर्य्यन्त जप करें। तत्पश्चात् दशांश से हवन, उसके दशांश से तर्पण, तर्पण के दशांश में मार्जन, शेष में वैष्णव-सेवा एवं महान् उत्सव-पूजा करें। वाद में मन्त्र-प्रसिद्धि के लिये गुरु का पूजन व सन्तोष विधान करें अथवा अल्प हविष्यान्न ग्रहण कर ग्रहण काल में जपादि करें। अथवा गुरु का सन्तोष विधान करें ॥८६॥

जैसा कि कहा है—गुरु को देवता रूप में ध्यान कर सन्तोष

गुरुमूलमिदं सर्वं तस्मान्नित्यं गुरुं जपेत्।
पुरश्चरणहीनोऽपि मन्त्रः सिध्येन्न संशयः ॥९०॥

अथ सिद्धमन्त्रलक्षणम्—

अत्यन्तकृपयाविर्भावः सुप्ते आज्ञा स्वप्नविशेषरीत्यादि। वौधायनः—

सिद्धस्य त्रीणि चिह्नानि दाता भोक्ता अयाचकः। अत्यन्तानि च तेजस्वीत्यादीनि ॥९१॥

अथ होमे द्रव्याणां प्रमाणम्—

कर्षमात्रं घृतं होमे शुक्तिमात्रं पयः स्मृतम्।
उक्तानि पञ्चगव्यानि तत्समानि मनीषिभिः।
तत्समं मधु दुग्धान्नमक्षमात्रमुदाहृतम्।
दधि प्रसृतिमात्रं स्यात् लाजाः स्युर्मुष्टिसम्मिताः।

करे। गुरुमूल समस्त क्रिया होती है अतः नित्य गुरु का जप करे। निःसन्देह बिना पुरश्चरण के मन्त्र सिद्धि नहीं होती है ॥९०॥

सिद्ध मन्त्र का लक्षण—अत्यन्त कृपा से स्वप्नादि में आज्ञा का आविर्भाव इत्यादि। वौधायन ने कहा है-सिद्ध के तीन चिन्ह हैं, दाता, भोक्ता तथा अयाचक। अत्यन्त तेज युक्तादिक भी सिद्धि लक्षण है ॥९१॥

होम में द्रव्यों का परिमाण—होम में घी का परिमाण कर्ष-मात्र (तोला) है। दूध का परिमाण शुक्ति मात्रा में हैं। दूध मान के समान पंचगव्य परिमाण है। मधु का परिमाण भी दुग्ध समान है। दुग्धान्न अक्ष (एक कर्ष परिमाण) मात्रा में है। दधि का प्रसृति (दोपल) परिमाण है। खील एक मुष्टि परिमाण से जानना चाहिये। चिडा उसी परिमाण का है। सत्तू मुष्टि मात्र है। गुड़ का मान आधा पल (दो तोला है, शक्कर

पृथुकास्तत्प्रमाणास्तु सक्तवोऽपि तथोदिताः।
गुडः पलार्द्धमानः स्यात् शर्करापि तथोदिता ।
ग्रासार्द्धं चरुमानं स्यादिक्षुः पर्वावधिः स्मृतः ।
एकैकं पत्र-पुष्पादि तथा पूजादि कल्पयेत् ।
कदली-फल-नारंगफलान्येकैकशो विदुः ।
वीजपूरं चतुः खण्डं पनसं दशधा कृतम् ॥
अष्टधा नारिकेराणि खण्डितानि विदुर्बुधाः।
त्रिधा कृतं फलं विल्वंदूर्वा त्रयं समुद्दिष्टम् ।
व्रीहयो मुष्टिमात्रास्तु मुद्गमाषयवा अपि ।
तण्डुलास्तु मुष्ट्यर्द्धाः स्युर्तिलाश्चुलुकमानतः ॥
यन्मन्त्रे यद्द्रव्यं तत्रैव अनुक्ते तिलघृतादि । तथोक्तम्—
"अनुक्ते तु हविद्रव्ये तिलाज्यं हवि रुच्यते" ॥६२॥
इति श्रीनारायणभट्टविरचितायां साधनदीपिकायां
षष्ठः प्रकाशः

की भी वही मात्रा है। चरु का परिमाण अर्द्धग्रास जानना चाहिये। ईख एक पर्व (गांठ) का है । पत्र-तथा पुष्पों का परिमाण एक एक है। केला, नारंगि फल एक एक संख्या में है। वीजपूर (विजौरा) चतुष्खण्ड, (चार-खण्ड) हैं, पनस का परिमाण दशमांश है । नारियल का अष्टमांश है अर्थात एक को आठ भाग में तोड़ कर एक भाग है। वेल-का परिमाण तृतीयांश है। दूर्वा की संख्या तीन है। गुलंचो चार अंगुल की है। अंकुर (बीज) मुष्टि मात्र है। मूग तथा माष मुष्टि मात्र में है। चामल अर्द्ध मुष्टि है। तिलादि चुलु मात्रा से है। हवि के बारे में यदि कहीं द्रव्यों का नाम न कहा जाता है तो वहाँ तिल तथा घृतादि हवि रूप से ग्रहण किया जावेगा ॥६२॥

सप्तमः प्रकाशः

अथ समुच्चयेः—

कूर्मे—
अनर्चयित्वा गोविन्दं यैर्भुक्तं धर्म-वर्जितैः।
श्वानो-दिष्ठा-समं चान्नं पानीयं सुरया समम् ॥
भुङ्क्ते स याति नरकं शूकरेष्विह जायते ॥१॥
विष्णुधर्मोत्तरे—
एककालं द्विकालं वा त्रिकालं पूजयेद्धरिम् ॥
अपूज्य भोजनं कुर्वन्नरकानि व्रजेत् नरः ॥२॥
बोधायने—
महानिशा तु विज्ञेया मध्यं मध्यमयामयोः।
तस्यां स्नानं न कुर्व्वीत स्वाध्यायं पितृतर्पणमिति ।
द्वितीययामात् घटिकाद्वयं तृतीययामस्य घटिकाद्वयमिति घटिकाचतुष्टयं महानिशा ॥३॥

कूर्म्मपुराण में कहा है—धर्म्म रहित जो व्यक्ति गोबिन्द का पूजन न कर भोजन करते हैं उनके अन्न विष्ठा के समान तथा पानीय-वस्तु सुरा के समान हैं। जो व्यक्ति मोह से अथवा आलस्य से देवता का पूजन न कर भोजन करता है वह नरक में जाता है तथा शूकरयोनि में जन्म लेता है ॥१॥

बिष्णुधर्म्मोत्तर में कहा है—मनुष्य नित्य प्रति एक बार अथवा दो बार किम्बा तीन बार हरि का पूजन करें । यदि कोई मनुष्य पूजा न कर भोजन करता है तो वह नरकों में जाता है ॥ २ ॥

बौधायन ने कहा है—रात्रि का मध्ययाम के मध्य भाग महनिशा कही जाती है। उसमें स्नान, स्वाध्याय तथा पितृतर्पण

कृष्णसेवानन्तरं वैष्णवसेबा आवश्यकी अन्यथा दोषः
तदुक्तं पाद्मे—

अर्चयित्वा तु गोविन्दं तदीयान्नार्चयेत्तु यः ॥
न स भागवतो ज्ञेयः केबलं दाम्भिकः स्मृतः ॥४॥

अगस्त्यसंहितायाम्—

आराधनासमर्थश्चेद्दद्यादर्चनसाधनम् ।
यो दातुं नैव शक्नोति कुर्यादर्चनदर्शनम् ॥
यस्तु भक्त्या प्रयत्नेन स्वयं सम्पाद्य त्वखिलम् ।
साधनं चार्चयेत् विद्वान् समग्रं लभते फलम् ॥
योऽर्चयेत् विविध भक्त्या परांनीतैश्च साधनैः ।
पूजा फलार्द्धमेव स्यात् न समानफलं भवेत् ॥५॥

अवैष्णवान्ननिषेधः ।

नहीं करना चाहिये। द्वितीय याम में से दो घड़ी तथा तृतीय-याम में से दो घड़ी कुल चार घड़ी महनिशा है ॥३॥

श्रीकृष्ण-सेवा के वाद वैष्णव-सेवा की आबश्यकता है, नहीं तो दोष होता है। पद्मपुराण में कहा है-जो गोविन्द का अर्चन नहीं करता है तो वह भागवत नहीं है केवल दाम्भिक माना जाता है ॥४॥

अगस्त्यसंहिता में कहा है—यदि आराधन कार्य्य में असमर्थ है तो अर्चन-साधनों का प्रदान करे परन्तु यदि साधन वस्तु प्रदान में असमर्थ है तो कहीं कृत्य अर्चन का दर्शन करे। यदि विद्वान स्वयं भक्ति के साथ प्रयत्न पूर्वक समस्त-साधनों का सम्पादन कर अर्चना करता है तो वह समस्त फल-प्राप्त करता है। जो दूसरे के द्वारा सम्पादित साधनों से नाना भक्ति लेकर अर्चना करता है ता उसको आधा पूजा-फल मिलता है समस्त फल नहीं है ॥५॥

अवैष्णवान्न का निषेध है । पद्मपुराण में तथा पुराणान्तर

पाद्मे पुराणान्तरे च—

आरामादुत्तमा पूजा मध्यमा वनजा तथा ।
अधमा विकृता चैव याचिता निःफला भवेत् ॥

पाद्मे—

अवैष्णवानां पक्वान्नं पतितानां तथैव च ।
अनर्पितं तथा विष्णोः श्वमांससदृशं भवेत् ॥६॥

मार्कण्डे—

अवैष्णव-गृहे भुक्त्वा पीत्वा चाज्ञानतोऽपि वा ।
शुद्धिश्चांद्रायणे प्रोक्ता इष्टापूर्त्तं वृथा सदा ॥

श्रीप्रह्लादः—

केशवार्चा गृहे यस्य न तिष्ठति महीपते ! ।
तस्यान्नं नैव भोक्तव्यं अभक्ष्येण समं स्मृतम् ॥

अतः श्रीकृष्णसेवावश्यकी ॥७॥

बिष्णुपुराणे—

अज्ञात-कुलनामानमन्यतः समुपागतम् ।

में कहा है-सहज रूप से जो पूजा है वह उत्तम है, वन जात पूजा मध्यम तथा बिकृत-पूजा अधम है। याचित पूजा निष्फल मानी जाती है। अवैष्णबों के द्वारा पक्वान्न, पतितों का अन्न तथा बिष्णु की अनर्पित बस्तु स्वानमांस का सदृश हैं ॥६॥

मार्कण्डपुराण में कहा है—अवैष्णव घर पर यदि कोई अज्ञान से भी भोजन व पान करता है तो उसकी चान्द्रायण-व्रत के द्वारा शुद्धि कही गई है। उसके इष्टा-पूर्त्तादिक वृथा माना जाता है। श्रीप्रह्लाद जी कहते हैं कि-हे राजन ! जिसके घर पर केशव की अर्चा नहीं है उसके अन्न का भोजन नहीं करना चाहिये क्योंकि बह भोजन अभक्ष के सभान माना जाता है ॥७॥

बिष्णुपुराण में कहा है—जिसके कुल-नामादि अज्ञात है

पूजयेदतिथिं सम्यक् नैक-ग्राम-निवासिनम् ।।
अकिञ्चनमसम्वन्धमन्यदेशादुपागतम् ।।८।।

अथ वैष्णवे सूतकादिविचारः ।

मदनपारिजाते ब्रह्माण्डबचनम्—

शैवा वा वैष्णवी दीक्षा यस्य चाग्निपरिग्रहः ।
यतिश्च ब्रह्मचारी च नाशौचं तस्य बिग्रहे ।।

पञ्चरात्रे—

सूतके मृतके चैव नित्यं विष्णुजनस्य च ।
सानुष्ठानस्य बिप्रेन्द्र सद्यशुद्धिः प्रजायते ।।
जपो देवार्चनविधिः कार्यो दीक्षान्वितैर्नरैः ।।
नास्ति पापं यतस्तेषां सूतकं वा यतात्मनाम् ।।९।।

बृहत्पाराशरे षष्ठेऽध्याये—

बिष्णुध्यानरतानां च सदैव ब्रतचारिणाम् ।
गृहमेधि द्विजातीनां तथैव ब्रह्मचारिणाम् ।।

तथा जो अन्य स्थान से आया हुआ है उस प्रकार अतिथी का ही सम्यक् रूप से पूजन करें। एक गाँव में निवास करने वाला अतिथि नहीं माना जावेगा। अकिञ्चन, सम्बन्ध से रहित, अन्य देश से उपस्थित अतिथी है ।।८।।

वैष्णव-जन में सूतकादि का विचार—मदनपारिजात में ब्रह्माण्ड-बचन का उद्धरण इस प्रकार है-जिसकी शिव मन्त्र से अथबा विष्णुमन्त्र से दीक्षा हो गई है, जिसका अग्नि-परिग्रह हो गया है तथा जो सन्यासी है एवं जो ब्रह्मचारी है उसके शरीर में अशौच नहीं है। पंचरात्र में कहा है-नित्य प्रति बिष्णु-उपासक के कृत-अनुष्ठान में तत्कालीन शुद्धि आ जाती है, उसको सूतक तथा मृतक में कोई दोष नहीं लगता है। दीक्षा-युक्त नर जप-देवतार्चना का विधान करें क्यों कि यतात्मा उसके सूतकादि पाप नहीं है ।।९।।

वेदतत्त्वार्थवेतृणां नित्यं स्नानकृतामपि ।
अनुसंसर्गिणामेषां नाशौचं नापि सूतकम् ।।१०।।

ब्रह्माण्डे—

अशौचं नैव बिद्येत सूतके मृतकेऽपि च ।
येषां पादोदकं मूर्द्धिन प्राशनं ये प्रकुर्वते ।

प्रह्लादसंहितायां विंशतितमेऽध्याये—

तुलसी-काष्ठ-संभूतां यो मालां वहते नरः ।
प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति नाशौचं तस्य विग्रहे ।।

तथा स्मार्त्तनिवन्धे—

शिव-विष्ण्वर्चने दीक्षा यस्य चाग्निपरिग्रहः ।
श्रौते कर्म्मणि तत्कालं स्नातः शुद्धिमवाप्नुयात् ।

इत्यादि वैष्णवस्य पूजा नित्या ब्रह्मचारिसाग्निकयोरिति ।।११।।

बृहत्पाराशर के षष्ठ अध्याय में कहा है-सर्बदा विष्णु-ध्यान में रत, ब्रताचरण वाले, गृहस्थब्राह्मण व ब्रह्मचारी, वेद-तत्वार्थ के ज्ञाता, नित्य प्रति स्नान करने वाले तथा इनके संसर्गी-जनों के अर्च्चनादि में सूतकादि दोष नहीं है ।।१०।।

उनके सूतक तथा मृतक में अशौच नहीं है। वे स्वयं पवित्र हैं जिनके चरणामृत का धारण सब कोई मस्तक में करता है। प्रल्हाद-संहिता के बीसमाँ के अध्याय में कहा है-जो व्यक्ति तुलसी-काष्ठ उत्पन्न माला का वहन करता है उसका प्रायश्चित्त नहीं है तथा उसके शरीर में कोई अशौच नहीं है। स्मार्त्तनिवन्ध में भी कहा है-शिव तथा बिष्णु की अर्च्चना में जिसकी दीक्षा हो गई है एवं जिसका अग्नि-परिग्रह हो गया है वह श्रौत्रादि कर्म्म में स्नान-मात्र से तत्काल ही शुद्धि प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार से वैष्णव की पूजा नित्य मानी गई है तथा ब्रह्मचारी तथा साग्निक की

अथ क्रीतैरपि पुष्पादिभिः सेवा कार्या ।

तथा विष्णुधर्मोत्तरे—

न्यायार्ज्जितधनक्रीतैः यः कुर्यात्केशवार्चनम ।
उद्धरिष्यत्यसन्देहं दशपूर्वान् दश परान् ।
शमित्पुष्पफलादीनि वहन्तं नाभिवादयेत् ॥
शूद्रानीतस्य क्रिया कर्त्तव्या ।

तथोक्तं नारदपञ्चरात्रे—

लौकिकी वैदिकी वापि या क्रिया क्रियते मुने ! ।
हरि-सेवानुकूलैव सा कार्या भक्तिमिच्छता ॥

कौर्मे व्यासगीतायाम—

देवद्रोहाद्‌गुरुद्रोहः कोटिकोटिगुणाधिकः ।
ज्ञानापवादो नास्तिक्यं तस्मात्कोटिगुणाधिकम् ॥१२॥

भी पूजा नित्य है ॥११॥

अब क्रीत-पुष्पादिओं से सेवा का विधान—विष्णुधर्म्मोत्तर में कहा है—यथा न्याय से उपार्जित धन के द्वार क्रीत-द्रव्यादि से जो व्यक्ति केशव की पूजा करता है वह निःसन्देह अपने वंश (कुल) की पहले दश तथा आगे की दश पीढी उद्धार करता है। धत्तूरे पुष्प-फलादि वहने बाला का अभिबादन न करें। शूद्र के द्वारा आनीत द्रव्यों से पूजा हो सकती है! नारदपञ्चरात्र में कहा है-हे मुने! मनुष्य के द्वारा लौकिक हो अथवा वैदिक हो जो कुछ क्रिया की जाती है वह हरिसेवा का अनुकूल हो तो यथार्थ है। अतः भक्ति की इच्छा करने बाला जन हरिसेबा ही करे। कूर्म्मपुराण की व्यासगीता में कहा है-देवद्रोह से कोटि-कोटि गुण अधिक गुरुद्रोह है, उससे कोटि गुणाधिक ज्ञान-अपवादी नास्तिक है ॥१२॥

अथ गुरोराधनावश्यकी पाद्मे—

गुरोरुत्क्रातिदिवसे जन्मर्क्षेषु तथा हरेः ।
इष्टिं च वैष्णवो कुर्यात् शक्त्या वै द्विजसत्तम ! ॥१३॥
अथ वैष्णवानां प्रायश्चित्तानधिकारः ।

श्रीभागवते एकादशे—

यदि कुर्यात् प्रमादेन योगी कर्म-विगर्हितम् ।
योगेनैव दहेदंहो नान्यत्त्र च कदाचन ॥१४॥

ब्रह्माण्डे—

प्रायश्चित्तं यदि प्राप्तं कृच्छ्रं वाप्यघमर्षणम् ।
सोऽपि पादोदकं पीत्वा शुद्धिमाप्नोति तत्क्षणात ॥

अब गुरु की आराधना आवश्यक है-इसका विवेचन-पद्म-पुराण में कहा है-हे द्विजश्रेष्ठ! सुनो, गुरु की उत्क्रान्ति (तिरोधान) दिवस में तथा श्रीहरि के जन्म-नक्षत्र में वैष्णब-जन यथा शक्ति से उत्सवादि करें ॥१३॥

वैष्णवों का प्रायश्चित्त में अधिकार नहीं है इसका बिवेचन किया जाता है। श्रीभागवत के एकादश स्कन्ध में कहा है-यदि योगी प्रमाद से भी गर्हितकर्म कर लेता है तो उसका पाप उस योग वल से ही दहन होता है, प्रायश्चित्तादिक से नहीं ॥१४॥

ब्रह्माण्डपुराण में कहा है-यदि पापनाश के लिये चान्द्रायणादिक कठिन प्रायश्चित्त आ पड़ता है, तो वह चरणामृत पान से उसी समय पवित्र हो जाता है। प्रल्हादसंहिता में कहा है-जो व्यक्ति तुलसी काष्ठ से उत्पन्न माला का बहन करता है, उसका कोई प्रायश्चित्त नहीं है न उसके शरीर में कोई अपवित्रता है। नारदपंचरात्र में कहा है-यदि कहीं जाते हुये व्यक्ति को मार्ग में

प्रह्लादसंहितायाम्—

तुलसी-काष्ठ-सम्भूतां यो मालां वहते नरः ।
प्रायश्चित्तं न तस्यापि नाशोचं तस्य विग्रहे ॥

नारदपञ्चरात्रे—

अवैष्णवगृहे भुक्त्वा पथि साष्टशतं जपेत् ।
मूलमन्त्रमिति शेषः ॥१५॥

अथ पाषण्डिनः—

कृष्णायुधाङ्कितं विप्रं तुलसीकाष्ठभूषितम् ।
दृष्ट्वा निन्दापरो यस्तु स बौद्धो न तु वैष्णवः ॥१६॥

पाद्मे

ब्राह्मणानां कुलोद्भूतो भस्मधारी भवेद्यदि ।
वर्जयेत्तादृशं देवि मद्योच्छिष्टं घटं यथा ॥

अवैष्णव के गृह में भोजन समास्या आजाती है तो उसके प्रायश्चित्त के लिये वह एक सौ आठ (१०८) बार मूलमंत्र का जप करे ॥ १५ ॥

पार्षडि का बिवेचन:—जो व्यक्ति श्रीकृष्ण के आयुधों से चिन्हित तथा तुलसी-काष्ठ से भूषित ब्राह्मण का निन्दा करता है वह बौद्ध है वैष्णव नहीं है । १६॥

पद्मपुराण में कहा है-यदि कोई ब्राह्मणों के कुल में उत्पन्न होकर भस्मधारी होता है तो हे देव ! उसको मद्य से युक्त घड़ा के सदृश त्याग करे । जो व्यक्ति अज्ञान से मोहित होकर नारायण-जगन्नाथजी को छोड़ कर अन्य देवता को श्रेष्ठ रूप से कहते हैं वे पाषंडी माने जाते हैं, जो बिष्णु-भक्तों का द्वेष करते हैं एवं अवैष्णवों से संसर्ग रखते हैं तथा पाषंडियों से मिलते हैं वे पांषडी माने जाते हैं । हे देवि ! जो ब्राह्मण श्रीहरि के प्रियतम शंख, चक्र उद्र्ध्व पुण्ड आदि चिन्हों से रहित हैं वे पांषडी

अन्यदेवं परत्वेन वदन्त्यज्ञानमोहिताः ।
नारायणाज्जगन्नाथात्ते वै पाषण्डिनः स्मृताः ।
द्वेष्टारो विष्णुभक्तानां ये चावैष्णवसंश्रयाः ।
पाषण्डिभ्यश्च संयुक्ताः ते वै पाषण्डिनः स्मृताः ॥
शङ्खचक्रोद्र्ध्वपुण्ड्रादि-चिन्हैः प्रियतमैर्हरेः ।
रहिताः ये द्विजाः देवि ते वै पाषण्डिनः स्मृताः ।
समस्तयज्ञभोक्तारं य विदित्वाच्युतं हरिम् ॥
उद्दिश्य देवता एव जुहोति च ददाति च ॥
स पाषण्डीति विज्ञेयः नाधिकारं तु कर्मसु ।
यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदैवतैः ।
समत्वेनैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेत्सदा ॥
किं देबि बहुनोक्तेन ब्राह्मणो यो ह्यवैष्णवः ।
स पाषण्डीति विज्ञेयः सर्वलोकेषु गर्हितः ॥
अवैष्णवास्तु ये विप्राः चाण्डालादधमाः स्मृताः ॥
तेषां सम्भाषणस्पर्श-सोमपानादिवर्जयेत् ॥
श्वपचोऽपि महीपाल ! विष्णुभक्तो द्विजाधिकः ।
विष्णुभक्ति-विहीनस्तु स यतिः श्वपचाधमः ॥
एतेषु सङ्गो न कर्त्तव्यः ॥१७॥

माने जाते हैं । "समस्त यज्ञ के भोक्ता अच्युत हरि हैं" ऐसा जान कर जो अन्य-देवता के लिये हबनादि दान करता है वह पांषडी जानना । समस्त कर्मों में उसका कोई अधिकार नहीं है । जो व्यक्ति नारायणदेव को ब्रह्म रुद्रादिक देबताओं के साथ समान देखता है वह पाषंडी है । हे देवि ! अधिक तो क्या कहना है, यदि ब्राह्मण अबैष्णव है तो वह पाषंडी माना जाता है तथा वह समस्त लोक में गर्हित होता है । जो ब्राह्मण अबैष्णव हैं वे चांडाल से अधम माने जाते हैं। उनके साथ संभाषण न करे,

अथ वैष्णवे यमानधिकारिता–अगस्त्यसंहितायाम्—

यथा विधि–निषेधौ तु मुक्तान्नैवोपसर्पतः ।
तथा न स्पृशते रामोपासकं विधि–पूर्वकम् ॥

भागवते—

जिह्वा न वक्ति भगवद्गुण–नामधेयं
चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम् ।
कृष्णाय नो नमति यच्छिरः एकदापि
तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान् ॥१८॥

पाद्मे -हस्तामलके प्रह्लादः—

वको जलचरान् भक्षन् मण्डूकादीनि वर्जयेत् ।
तथा यमः सर्वहन्ता वर्जयेत्कृष्णसेवकान् ॥१९॥

उनके स्पर्श न करे एवं उनके साथ भोजन पान न करे, हे राजन् ! विष्णुभक्त चांडाल ब्राह्मण से अधिक माना जाता है, विष्णु–भक्ति से रहित ब्राह्मण चांडाल से अधम है, उसका संग नहीं करना चाहिये ॥१७॥

वैष्णव में यमका अधिकार नहीं है इसका विवेचनः–अगस्त्य-संहिता में कहा है कि–जिस प्रकार विधि एवं निषेध, मुक्त-गणों को स्पर्श नही करता है ठीक उसी प्रकार राम के उपासक के प्रति बिधि विधान स्पर्श नहीं करता है। भागवत में यमराज ने अपने दूतों के प्रति कहा कि–हे दूतगण सुनो ! जिनकी जिन्हा भगबान के गुण–नामादिक का कीर्त्तन नहीं करती है, जिनके चित्त उनके चरणारविन्दु का स्पर्श नहीं करता है, और जिनके मस्तक ने एक बार भी कृष्ण के लिये नमस्कार नहीं किया है, विष्णु–कृत्यों को न करने वाले उन व्यक्तियों को ले आना ॥१८॥

पद्मपुराण के हस्तामलक में प्रलहाद जी ने कहा है–बगला जलचरों को भक्षण करता है परन्तु वह मेंडकादि कों बाद देता

स्कान्दे कार्त्तिके—

वैवस्वतभयं नास्ति तथामरण–जन्मनोः ।
यः कथां कुरुते विष्णोः शालग्रामशिलाग्रतः ॥२०॥

पाद्मे कार्त्तिके यमः—

कतिधा शिक्षिता यद्भस्त्याज्यो विष्णुपरायणः ॥
नाहं तस्य प्रभुर्दण्डे यूयं दण्डचिकीर्षवः ॥२१॥

भागवते—(६ । ३ । २६–२७)

"ते मे न दण्डमर्हन्त्यथ यद्यमीषां स्यात्पातकं तदपि हन्त्यु-रुगायवादः ॥" "ते देवसिद्ध–परिगीतपबित्रगाथा ये साधवः समदृशो भगबत्प्रपन्नाः । तान्नोपसीदत हरेर्गदयाभिगुप्तान्नैषां वयं न च वयः प्रभबाम दण्डे" ॥२२॥

है, उसी प्रकार सबको नाश करने वाला यम कृष्ण–सेबकों को बाद देता है ॥१९॥

स्कन्दपुराण के कार्त्तिक–महात्म्य में कहा है कि–जो व्यक्ति शालिग्राम शिला के समक्ष विष्णु की कथा का कीर्त्तन करते हैं, उनका यमभय नहीं है और जन्म मरण का भय भी नहीं है ॥२०॥

पद्मपुराण के कार्त्तिकमहात्म्य में यमराज अपने दूतों के प्रति कहते हैं–कि "हे दूतगण ! विष्णुपरायण जन का त्याग करना" इस प्रकार मैंने कई बार दंड कराने मे इच्छुक तुम्हें नहीं सिखाया है। देखो विष्णु–भक्त के पास कभी मत जाना, मैं बिष्णुभक्त जन को दंड देने में असमर्थ हूँ ॥२१॥

भागवत में कहा है कि–बे समस्त विष्णुभक्त मेरे दंड नहीं प्राप्त कर सकते हैं। यद्यपि उनमें कोई पातक दिखने में आता है तो भी भगवान की कथा, कीर्त्तन उसका नाश कर देता है। पुनः कहा कि जो समप्रकृति वाले साधुगण भगबान के शरण में हैं उनके पवित्र-गाथा को देवता, सिद्धगण गान करते है, तथा वे

अथ नाममाहात्म्यं-स्कान्दे—

मा ऋचो मा यजुस्तात मा साम पठ किंचन ।
गोविन्देति हरेर्नाम गेयं गायस्व नित्यशः ॥

पाद्मे—

विष्णोरेकैक-नामापि सर्ववेदाधिकं मतम् ॥२३॥

अथानन्यताः—

आदिपुराणे नाममाहात्म्येऽर्जुनं प्रति भगवद्वाक्यम्—

वैष्णबान् भज कौन्तेय मा भजस्वान्यदेवताः ।
पुनन्ति वैष्णवाः सर्वे सर्वदेबमिदं जगत् ॥

भारते—

नान्यं देवं नमस्कुर्यान्नान्यं देवं निरीक्षयेत् ।
चक्रांकितः सदा तिष्ठेन्मद्भक्तः पाण्डुनन्दनः ॥

श्रीभागवते—

श्रद्धां भागवते शास्त्रेऽनिन्दामन्यत्र चापि हि ।
मनोवाक्कर्मदण्डं च सत्यं शमदमावपि ॥

सब भगबान के गदा से रक्षित हुये हैं अतः तुम उनके पास न जाना, इनको हम सब दंड देने में असमर्थ हैं ॥२२॥

नाम महात्म्यः—स्कन्दपुराण में कहा है कि–हे पुत्र ! तुम ऋग्, यजुः एवं सामवेद का कुछ मत पढ़ो, नित्य प्रति "हे गोविंद हे हरे," इन नामों को गान करो।

पद्मपुराण में कहा है कि विष्णु के एक एक नाम समस्त वेदों से अधिक हैं॥२३॥

अनन्यताः—आदिपुराण के नाम महात्म्य पर अर्जुन के प्रति भगवान ने कहा, हे कौन्तेय ! वैष्णवों का भजन करो, अन्य-देबता का भजन मत करो, वे सब समय इस जगत को पबित्र करते हैं। महाभारत में कहा है कि–अन्य—देवता को नम-

तथा पाद्मे—

नारायणात्परो देवो नास्ति मुक्तिप्रदो नृणाम् ।
नारायणाद्देवदेवादन्येषामर्च्चनं न तु ॥२४॥

पाद्मे प्रह्लादवाक्यम्—

बिष्णुभक्ति विना धर्मानतुपश्यन्ति ये नराः ।
ते पतन्ति तदा कूपे यद्वदन्धपरम्परा ॥
दर्दुरो वसते नीरे षट्पदो हि बनान्तरे ।
गन्धं वेति कुमुद्वत्याः भक्तो भक्तेस्तथा हरेः ॥
शृङ्खला लोहजा वापि जाता रूक्ममयी यदि ।
बन्धने समता प्रोक्ता सा गतिः पुण्यपापयोः ॥
निदानं च यदि क्षिप्ता शुनः सेवां कथं चरेत् ।
त्यक्त्वा वैकुण्ठनाथं तमन्यमार्गं कथं चरेत् ॥२५॥

स्कार न करना एवं अन्य—देवता का दर्शन न करना। हे पांडु-नन्दन ! मेरा भक्त चक्रांकित होकर सर्वदा रहे। भागवत में कहा है कि–भागवत शास्त्र में श्रद्धा, अन्यत्र अनिन्दा, मनसंयत, बाणीसंयत, कर्म्मसंयत ये सब भागवत धर्म्म हैं। पद्मपुराण में कहा है—मनुष्यों के मुक्ति देने वाला नारायण से अन्य कोई पर देबता नहीं है और देब-देब नारायण से दूसरे अन्य किसी की अर्चना नहीं ॥२४॥

पद्मपुराण में प्रल्हादजी ने कहा है-जो व्यक्ति विष्णुभक्ति से रहित अन्य का दर्शन करते हैं वे सब अन्धकूप में गिरते हैं, उनकी स्थिति अन्ध-परम्परा से जानना ! मेड़क जल में रहता है भ्रमर भी वन में कुमुदिनी का गन्ध प्राप्त करता है, और भक्त जन श्रीहरि की भक्ति का ग्रहण करते हैं। शृंखला दो प्रकार की होती है, लोहे की तथा सोने की, दोनों के बंधन समान है। उसी प्रकार पुन्य पाप की गति है। निधान का त्याग कर श्वान की

ध्रुवपंचरात्रे—

सर्वत्र प्राणिनां हिंसा वर्त्तते धर्मकर्मणोः ।
ऐकान्तिकी हरेर्भक्तिः साध्यते भूतवत्सलैः ॥२६॥

वायवीयामले-

अन्यदेवेषु विमुखाः भावयन्ति हरीश्वरम् ।
मृत्युकालपरित्राणं यतोऽन्यन्नैव भूपते ॥२७॥

विष्णुरहस्ये—

आलिङ्गनं वरं मन्ये सिंहव्याघ्रजलौकसाम् ।
न वरं शल्ययुक्तानां नानादेवैकबादिनाम् ॥२८॥

सनत्कुमारसंहितायाम्—

ऐकान्तिकात् हरेर्भावाल्लुप्तनानाविधिक्रिया ।
पंचरात्रान् विधीं कुर्वन् लभते वैष्णवं पदम् ॥

सेवा करने में क्या होता है ? वैकुंठनाथ का त्याग कर अन्य मार्ग में जाने पर क्या होगा ॥२५॥

ध्रुवपंचरात्र में कहा है-सर्वत्र धर्म कर्मों में प्राणियों की हिंसा देखने में आती है परन्तु ऐकान्तिक भगवान की भक्ति, प्राणीमात्र में वात्सल्यता को बहन करती है ॥२६॥

वायवीयामल-नामक ग्रंथ में कहा है—वे सब वैष्णव अन्य देवताओं में विमुख रह कर ईश्वर हरि की भावना करते हैं । हे राजन् ! अन्य प्रकार से मृत्युकाल में परित्राण नहीं है अर्थात् अन्य देवता मृत्यु काल में परित्राण नहीं कर सकते हैं ॥२७॥

विष्णुरहस्य में कहा है-बरम , सिंह, व्याघ्र, जल जन्तुओं का आलिंगन करले, परन्तु शल्य युक्त नाना देवताओं के सेबा करने वालों का संग न करें ॥२८॥

सनत्कुमारसंहिता में कहा है—ऐकान्तिक हरि के भाव से समस्त क्रिया लुप्त हो जाती हैं अर्थात् अन्य क्रिया का आव-

नारदपंचरात्रे—

अंशा अपि हरेः सर्वे ब्रह्मादयः इति श्रुतिः ।
तथापि पूज्यतां याति न गङ्गा पल्वला इवेति ॥

नारदपंचरात्रे—

अयं जगत्पतिः श्रीमान् यो विष्णुरिति वुध्यते ।
अन्ये तु सर्वे नाम्नैव देवा इति मतिः स्थिरा ॥२९॥

विष्णुयामले—

कर्मयोगो हतेर्भक्तेर्निदानाय न कल्पते ।
कुमारी नेक्षुः दण्डानां कारणं केन चिद्भवेत् ॥३०॥

हस्तामलके—

ग्रावा हि जलमध्यस्था शतवर्षैर्न क्लिद्यते ।
विना जलं सोमकान्तो बिष्णुभक्तस्य मानसम् ॥

श्यक नहीं है । पंचरात्र की बिधि को करने वाले बैष्णवपद का लाभ करते हैं । नारदपंचरात्र में कहा है—ब्रह्मादिक समस्त देवता हरि के अंश हैं एसा सुना जाता है, परन्तु हरि के समान वे पूजनीय नहीं हैं । गंगा, क्षुद्र-तालाब की भाँति पूजनीय नहीं है अर्थात् गंगा की पूजा विलक्षण एवं सर्वमान्य है । नारदपंचरात्र में कहा है-श्रीमान बिष्णु जगत् के पति हैं और समस्त देवताओं के देब हैं, परन्तु और सब नाम मात्र के देवता हैं ॥२९॥

विष्णुयामल में कहा है:—कर्मयोग हरि भक्ति का निदान है ऐसा नहीं माना जाता है । कुमारी ईखु-दंड का कारण किसी प्रकार नहीं हो सकती है ॥३०॥

हस्तामलक में कहा है:—जल मध्य में स्थित प्रस्थर सौ वर्षों में पिघलता नहीं है । सूर्यकान्तमणि जल के बिना द्रवीभूत हो जाता है उसी प्रकार बिष्णुभक्त का हृदय कोमल होता है, मृगगण कस्तूरी-गन्ध की इच्छा करते हुए शिला को सूँघते हैं,

मृगाः शिलां हि जिघ्रन्ति कस्तूरीगन्धमिच्छवः ।
स्वनाभिस्थं न जानन्ति तथा बिष्णुवहिर्मुखाः ॥
पंचायतनपूजा तु कर्मजडानाम् ॥३१॥

तथोक्तं भक्तिरसमन्थाने—

गणेशी प्रथमा पूजा भवेन्मिश्रा तु कर्म्मिणाम् ।
हरौ ह्येषां तद्भक्तानां पूजनं केवले परे ॥

वैष्णवतन्त्रे—

पूजयेत्केवलं विष्णुं न देवान् तत्पदाम्बुजे ।
मान्त्रिकः शल्यविमुखो हरावेकान्तिको नरः ॥
पदाम्बुजेऽपि न पूजये देवादीन् शल्यविमुखः ॥
सशल्यवैष्णवानां भगवान् दुर्वेद्यः ॥३२॥

विष्णुयामले—

यथा मांसं तथा मद्यं तथा वृन्ताक-मूलके ।
निवेदयेन्नैवैतन्न हरेरैकान्तिकी रतिः ॥

उसी प्रकार बिष्णुवहिर्मुख जन अन्य देव—देवताओं को भगवान समझकर उनकी उपासना करते हैं ॥३१॥

पंच देवता की पूजा कर्म-जडों की है, जैसा कि भक्तिरसमन्थन ग्रन्थ में कहा है-कर्मियों के पहली पूजा गणेश जी की है। हरिभक्तों के केवल श्रेष्ठ श्रीहरि हैं। वैष्णवतन्त्र में कहा है-शल्यरहित, मान्त्रिक, एकान्ती भक्त केवल विष्णु का पूजन करते हैं। भगवान के चरणों में अर्थात् भगवत्सांनिध्य में अन्य देवताओं की पूजा नहीं करते हैं। शल्ययुक्त वैष्णवों को भगवान् दुर्गम हैं ॥३२॥

बिष्णुयामल में कहा है-जिस प्रकार मांस है उसी प्रकार मद्य है ठीक उसीप्रकार बैगन व मूली भी है। हरि में ऐकान्तिक जन उन वस्तुओं का निवेदन न करें। मांस का गन्ध से एका-

मांसस्य सम्बन्धे न तु भक्तिः हरौ कदाचन ।

तथोक्तं वैष्णवसिद्धान्ते—

न स्यादेकान्तिकी भक्तिर्गन्धात्मांसपरिश्रुते ।
वृन्ताकमूलभक्षाच्च प्रेम नो शल्यवर्त्तिनाम् ॥३३॥

वैष्णवसिद्धान्ते—

अवैष्णवानि कर्माणि पातयेयुर्भवार्णवे ।
तस्माद्विष्णुपराण्येव कुर्यात्कर्माणनन्यभाक् ॥

नारदपंचरात्रे—

विष्णोर्निवेदितं प्राप्य निक्षिपेत् यत्र कुत्रचित् ।
आयोग्यस्याथवा दत्वा मनुमष्टशतं जपेत् ॥३४॥
मांसादि-सावद्ययोग-जनितकर्म हरौ न समर्पणीयम् ॥

तथा विष्णुरहस्ये—

सावद्य-सम्प्रदानानां हरये परमात्मने ।
भवेद्दुलवणदुःखाय संसारान्न विमोक्षणम् ॥३४॥

ध्रुवपंचरात्रे—

न्तिकी भक्ति नहीं होती है। वेगन-मूली का भक्षण से प्रेम नहीं होता है ॥३३॥

वैष्णवसिद्धान्त में कहा है-अवैष्णव-कर्म मनुष्यों को संसार सागर में गिराते हैं अतः अनन्य जन समस्त कर्मों को विष्णुपरक करें। नारदपञ्चरात्र में कहा है- विष्णु के निवेदित प्राप्त होकर यदि जहाँ तहाँ उसका निक्षेप किया जाता है, अथवा अ-योग्य व्यक्ति को दान दिया जाता है, तो उसके प्रायश्चित्त के लिये एकसौ आठ बार मूल मन्त्र का जाप करना चाहिये।

मांसादि सावद्य (निन्दित) योग जात कर्म्म हरि में समर्पण न करें। विष्णुरहस्य में कहा है-परमात्मा हरि में सावद्य प्रदान-कारिओं का संसार से बिमुक्ति नहीं है, वह सावद्यप्रदान उत्कट-

यावदन्याश्रयस्तावत् भगवानपि तं जनम् ।
विलोकयेन्न दयया ह्यनन्यजनवत्सलः ॥

स्कन्दपुराणे—

सर्वेषामेवभक्तानां मध्ये रुद्रः प्रकीर्त्तितः ।
द्वितीयो नास्ति जीवात्मा ब्रह्माण्डेऽस्मिन्नराधिप ! ।
जाह्नवी येन शिरसाध्रियते विश्वमङ्गला ॥३५॥

भक्तिसंकेतागमे—

यं दृष्ट्वा प्राणिनां हर्षः संभवेन्न हरिप्रियम् ।
विलोक्योद्विजते जन्तुस्तमभक्तं हरेः प्रभोः ॥३६॥
(अवैष्णवाय न किंचिद्देयम्)

तथोक्तं न्यायपद्धतौ—

वैष्णवद्विजमुखेभ्यो देयं हरिं निवेद्य तम् ।
दानं वैष्णवायैतत् प्रदेयं नावैष्णवाय तत् ॥

दुःख के लिये होता है ॥३४॥

ध्रुवपंचरात्र में कहा है–जब तक कोई अन्याश्रय रहता है तब तक अनन्य जन-वत्सल भगवान दयालु होने पर भी उस जन को नहीं देखते हैं ॥

स्कन्दपुराण में कहा है–हे राजन् ! समस्त भक्तों में महादेव जी प्रधान कहे जाते हैं, इस ब्रह्माण्ड में उनके समान दूसरा जीवात्मा नहीं है । जिन्होंने जगत्पवित्र-कारिणी गंगा का मस्तक में धारण किया है ॥३५॥

भक्तिसंकेतागम में कहा है–हरिप्रिय जन का दर्शन कर जिन प्राणियों का हर्ष उत्पन्न नहीं होता है तथा जो देख कर उद्वेग प्राप्त होते हैं वे अभक्त हैं ऐसा जानना चाहिये ॥३६॥

अवैष्णव के लिये कुछ न देवें । न्यायपद्धति में कहा है–हरि का निवेदन कर वैष्णव-ब्राह्मणों के मुख में उस नैवद्य को देवें ।

विष्णुभक्तिसंकेते—

यद्दत्तं सात्विकायैव विज्ञानगुणरागिणे ।
तद्भोक्तव्यं च वैकुण्ठे शेषं सांसारिकेऽध्वनि ॥

प्रह्लादपंचरात्रे—

स्वभावस्थैः कर्मजड़ान् वंचयेद्द्रविणादिभिः ।
हरेर्नैवेद्य-सम्भारान् वैष्णवेभ्यः समर्पयेत् ॥

वैष्णवसिद्धान्ते—

हरेर्निवेदितं किंचिन्न दद्यात्कर्हिचिद्बुधः ।
अभक्तेभ्यो सशल्येभ्यो यद्दन्निरये पतेत् ॥३७॥
(वैष्णवमन्यपंक्तौ न निवेशयेत)

तथा विष्णुरहस्ये—

निवेशयेन्नरो मोहादन्यपंक्तौ हरेः प्रियम् ।
स पतेन्निरये घोरे भक्तिभेदी नराधमः ॥

शिवपुराणे-दशरथमारितपुत्रविलापे तपस्विनो वाक्यम्—

दान वैष्णवों के लिये है, अवैष्णव के लिये नहीं । विष्णुभक्ति-संकेत में कहा है–विज्ञान-गुण रागी सात्विक जन के लिये जो जो दिया जाता है उसका भोग वैकुण्ठ में होता है उसके बिना अन्यत्र दान संसार मार्ग के लिये जानना चाहिये । प्रह्लादपंच-रात्र में कहा है–कर्म्म-जडों को सहज रूप में द्रविण आदि के द्वारा वंचित करा कर श्रीहरि के नैवेद्य वैष्णवों को समर्पण करे ।

वैष्णवसिद्धान्त में कहा है–पण्डित गण श्रीहरि के निवेदित को किञ्चिन्मात्रा से भी अभक्त शल्ययुक्त व्यक्ति को न देवें । क्योंकि उनको दान करने से नरक पात होता है ॥३७॥

वैष्णवों को अन्य पंक्ति में नहीं बैठाना चाहिये । विष्णु-रहस्य में कहा है–जो नर मोह से भी हरि प्रिय वैष्णव को अन्य-पंक्ति में बैठाता है वह घोर नरक में गिरता है वह भक्ति भेदी नराधम है ॥

शिला-बुद्धिः कृता किं वा प्रतिमायां हरेर्मया ।
किं मया पथि दृष्टस्य विष्णुभक्तस्य कर्हिचित् ॥
तन्मुद्रांकितदेहस्य चेतसा नादरः कृतः ।
येन कर्म-विपाकेन पुत्रशोको ममेदृश इति ॥३८॥
(मर्यादयैव भक्तिः सुखात्मिका)

ब्रह्मयामले—

श्रुति-स्मृति-पुराणैक-पञ्चरात्रविधिं विना ।
ऐकान्तिकी हरेर्भक्तिरुत्पातायैव कल्पते ॥३९॥

विष्णुतन्त्रे—

न लभेयुः हरेः भक्तिं हरेरैकान्तिकीं जड़ाः ।
एकाग्रमनसश्चापि विष्णुं सामान्यदर्शिनः ॥

विष्णुसंहितायाम्—

श्रद्धाभाव-गुणोपाधि-बल तुल्योऽपि वैष्णवैः ।
ऐकान्तिकगुणैः कर्म-जड-योगी च संचरेत् ॥

शिवपुराण में दशरथ के द्वारा मृत्युप्राप्त पुत्र के विलाप में- क्या मैंने श्री हरि की प्रतिमा में शिला-बुद्धि की है किंवा मार्ग में किसी विष्णुभक्त के विष्णु-मुद्रा से अङ्कित शरीर का आदर नहीं किया है, जिस कर्म्म बिपाक से मेरा इस प्रकार पुत्रशोक उत्पन्न हुआ है ॥३८॥

मर्य्यादा रूप से भक्ति सुखात्मक स्वरूपा है । ब्रह्मयामल में कहा है—श्रुति, स्मृति, पुराण, पंचरात्र विधि के बिना ऐकान्तिकी हरि भक्ति उत्पात स्वरूप मानी जाती है ॥३९॥

बिष्णुतन्त्र में कहा है—एकाग्र मना होने पर भी यदि विष्णु को सामान्य देखते हैं तो जड वे हरि की ऐकान्तिक भक्ति नहीं प्राप्त हो सकती हैं । बिष्णुसंहिता में कहा है—कर्म्म—जड़ योगी

आदिपुराणे—

नामयुक्तजनाः केचित् जात्यन्तरसमुत्थिताः ।
कुर्वन्ति मे यथा प्रीतिं न तथा वेदपारगाः ॥४०॥

विष्णुयामले—

मम नामानि लोकेऽस्मिन् श्रद्धया यस्तु कीर्त्तयेत् ।
तस्यापराधकोटीस्तु क्षमाम्येव न संशय-इति ॥४१॥
(अन्यदेवास्तु दोषवत्त्वान्नोपास्याः)

तथा सुरेश्वरवचनम्—

यत्र ह्यषो भवेद्रागो न तत्र परिपूर्णता ।
रिक्तचित्तप्रपूजायामपवर्गो न लभ्यते ॥४२॥
कृष्णादित्यर्थः । (सजातीयैनैव संश्रयेत)

हरिभक्तिसुधोदये—

यस्य यत्संगतिः पुंसो मणिवत्स्यात्स तद्गुणः ।
स्वकुलर्द्ध्यै ततो धीमान् स्वयूथान्येव संश्रयेत् ॥

श्रद्धा-भाव-गुण-उपाधि-बलादि से तुल्य होने पर भी एकान्तिक गुण वाले वैष्णवों से पृथक् है । आदिपुराण में कहा है-कोई अन्य जाति से उत्पन्न, नाम परायण जन मेरे लिये जिस प्रकार प्रीति करते हैं उस प्रकार वेदपारग जन नहीं कर सकते हैं ॥ ४० ॥

बिष्णुयामल में कहा है-इस लोक में जो व्यक्ति श्रद्धा पूर्वक मेरे नामों का कीर्त्तन करता है उसके कोटि अपराध का मैं क्षमा करता हूँ, इसमें कोई संशय नहीं ॥४१॥

अन्य देबताओं की उपासना में दोष है अतः अन्य देबता उपासित नहीं है। सुरेश्बर का वचन है कि-जहाँ द्वेष है वहाँ राग नहीं है, न वहाँ परिपूर्णता है। रिक्त हृदय से जो पूजा है वह अपवर्ग को नहीं देती है ॥४२॥

अथ प्रथमे—

तत्रान्वहं कृष्णकथाः प्रगायतामनुग्रहेणाश्रृणवं मनोहराः ।
ताः श्रद्धया मेऽनुपदं विश्रृण्वतः प्रियश्रवस्यंग ममाभवद्रुचिः ॥
इति ॥४३॥

अथ भावः प्रह्लादवाक्यम्—

पूजया हसते भक्तिः जपेन परित्रस्यति ।
समाधि-योगाच्च वहिः सा भक्तिः केन गृह्यते ॥
मिश्रभावाद्दुग्धजलात् हंसो नयति तत्पयः ।
एवं हि मिश्रधर्मेभ्यो भक्ति गृह्णन्ति सात्वताः ॥
न कोऽपि भुवि संसारी-पदार्थः स परात्परः ॥
तुलयायाति वैकुण्ठं भावेनैकान्तिकेन तु ॥४४॥

समान जातीय भक्त का आश्रय करना चाहिये। हरिभक्ति-सुधोदय में कहा है-जिसके जिसका संग होता है उसके उसमें मणि की भाँति गुणगण संचारित होता है। अतः बुद्धिमान जन अपने कुल की बृद्धि के लिये अपने यूथ का आश्रय करे। प्रथम-स्कन्द में नारद जी वेदव्यास जी से कहते हैं-हे अंग! वे सब महात्मा निरन्तर मनोहर कृष्ण कथा का गान करते थे। मैं श्रद्धा पूर्वक सुनता था, उसमें मेरी भगवद्रुचि हो गई ॥४३॥

अव भाव का विवेचन-प्रल्हादजी का वचन है कि-यदि पूजादि के द्वारा भक्ति प्राप्त करने चाहते हो तो भक्ति हँस जाती है, उसी प्रकार जप से वह भय भीत होती है पुनः समाधि-योग से प्राप्त करना चाहते हो तो बह भक्ति उस समय हृदय से वाहर चलि जाती है। अतः उस भक्ति का कौन ग्रहण कर सकता है। दुग्ध-तथा जल के मिश्रण से हंस दूध का ग्रहण करता है, इस प्रकार सात्वत जन मिश्र-धर्म्म से भक्ति का ग्रहण करते हैं। जगत् में संसारी पदार्थ कोई नहीं है जो कि भगवान के साथ

नारदपंचरात्रे—

भावोन्मत्तो हरेः किंचिन्न वेद सुखमात्मनः ।
दुःखं चेति महेशानि परमानन्दसंप्लुतः ॥४५॥

वामनपुराणे—

सर्वार्थसिद्धलोकोऽपि हरेर्भावविवर्जितः ।
नरकादधिकः प्रोक्तस्तत्वविज्ञानिनां मते ॥
निरयो दिव्य-लोकेन स्पर्द्धते हरिभावतः ।
तस्मात्स तत्र वैकुण्ठो यत्र संगीयते हरिः ॥४६॥

आगमचिन्तामणौ—

स्वतन्त्रैर्निजरूपैः स्वैरुदारैः संकटाय ह ।
भक्तानां भुवि भावेन स्ततोचिन्त्यमहिर्विभुः ।

तुलना प्राप्त हो, भगबान् पर से परतत्व हैं। एकान्तिक भाव से वैकुण्ठ तुलना प्राप्त हो सकता है ॥४४॥

नारदपंचरात्र में कहा है-हे पार्वति ! भगवान के भाव से उन्मत्त जन अपने सुख व दुःख को किंचिन्मात्रा से नहीं जानता है बह सर्वदा परमानन्द से मग्न रहता है ॥४५॥

वामनपुराण में कहा है-तत्व-ज्ञानियों का मत में-इस लोक में यदि समस्त अर्थ सिद्ध हो गया है तो भी यदि श्रीहरि के भाव से वर्जित है तो वह नरक से अधिक दुःखद है। श्रीहरि में भाव के संसर्ग से नरक भी दिव्यलोक के साथ स्पर्द्धा करता है। अतः वह वैकुण्ठ है जहाँ कि श्रीहरि गाये जाते हैं ॥४६॥

आगमचिन्तामणि में कहा है—उदारपरायण जन कभी स्व-तन्त्र न हों क्योंकि स्वतन्त्रता संकट को देने बाली है। भक्त लोग भगबान के भाब को लेकर रहते हैं। हरिभावमूल ग्रंथ में-महादेवजी अभेदवाद में स्थित हैं तौ भी भेदवाद उनका परम प्रिय है। वे एकान्त भाव से हरि भाव-स्बादुता के द्वारा-जगत का पोषण

हरिभावमूले—

अभेदे लबहीनेऽपि भेदवादप्रियो हरः।
हरि-भाव-स्वादुवशात्पुष्णात्येकान्तभावतः।

रुद्रयामले—

नानायोगधारणांशभावध्यानपरायणः।
नावैति हरिभावात्मगुणोऽपि जगदीश्वरे ॥४७॥

(भावग्राहकमाह)

प्रह्लादवाक्यम्—

अन्यशक्ता यथा रामा क्रीडते स्वपतिं प्रति ।
य एव भावो देवेशे सा भक्तिस्तेन गृह्यते ॥
पानीयहारिणी यद्वदालापं कुरुते यथा ।
तत्ताद्भावो हरौ यस्य सा भक्तिस्तेन गृह्यते ॥४८॥

(अथ भावोत्पादकम्)

विष्णुयामले—

अपूर्वकारणादद्ध मन्तरा जीवकर्मणोः ।
भक्तिरुत्पद्यते विष्णोर्नानाभाव-पराङ्मुखी ।

करते हैं । रुद्रयामल में कहा है-नाना प्रकार योग-युक्त, नाना ध्यान-परायण जन जगदीश्वर में तद्भावात्म गुण प्राप्त नहीं होते हैं॥ ४७ ॥

भाव ग्राहकता—प्रल्हादजी ने कहा है-जिस प्रकार अन्य वस्तु में आशक्त रमणी अपने पति के प्रति क्रीड़ा परायण होती है, उसी प्रकार देव-देवेश में जो भाव है बह भक्ति है उसका ग्रहण कौन कर सकता है। पानीय-हारिणी बाला जिस प्रकार आलाप करती है अथच अपने मस्तक से कलशी नहीं गिराती है ठीक उसी प्रकार हरि में जो भाव है वह भक्ति है उसका ग्रहण करे ॥४८॥

हस्तामलके—

सुखं दुःखं धनं चैव पूर्व-कर्म-वशानुगम ।
बिष्णुभक्तिर्भावगम्या विष्णुभक्तप्रसंगतः ॥
स्वकरे कङ्कणे वद्धे दर्पणैः किं प्रयोजनम् ।
यदा स्वभावजाभक्तिर्विद्यया किं प्रयोजनम् ॥४६॥

(अथ नाम्नि न शुद्धयादिनियमः)

विष्णुधर्मे—

न देशनियमस्तत्र न कालनियमस्तथा ।
नोच्छिष्टादौ निषेधस्तु श्रीहरेर्नाम्नि लुब्धक !।

स्कान्दे—

न देशकालाबस्थात्मशुद्धयादिकमपेक्षते ॥५०॥

पाद्मे —

वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थं च भाविनि ।
पुराणमन्यथा कृत्वा तिर्यकयोनिमबाप्नुयात ॥

विष्णुयामल में कहा है-जीव-कर्म्म के अत्यन्त अन्तर है। अपूर्व कारण से विष्णु में नाना-भाब की परांमुखवाली भक्ति उत्पन्न होती है। हस्तामलक में कहा है-सुख, दुःख, धनादिक पूर्व कर्म्म वश होते हैं। परन्तु बिष्णुभक्ति केवल भावगम्य है जो कि बिष्णु-भक्त प्रसंग से प्राप्त है। यदि अपने हाथ में कंकण वंधा हुआ है तो दर्पणों से क्या आवश्यकता है। यदि स्वभावजा भक्ति होती है तो विद्या का क्या प्रयोजन है ॥४६॥

भगवन्नाम में शुद्धयादि—नियम नहीं है-विष्णुधर्म्म में कहा है-हे व्याध! भगवन्नाम में देश-नियम नहीं है, अथवा काल-नियम नहीं है। उच्छिष्टादिक में भी हरिनाम-ग्रहण का निषेध नहीं है। स्कन्धपुराण में कहा है-भगवन्नाम देश-काल-अबस्था तथा आत्म शुद्धयादिक की अपेक्षा नहीं करता है ॥५०॥

बृहन्नारदीये—

पुराणे चार्थवादत्वं ये वदन्ति नराधमाः ।
तैरर्जितानि पुण्यानि तद्वदेवं भवन्ति वै ॥५१॥

वैष्णवेनाहंभावना सर्वथैव न कार्या, अन्येनाप्यनधिकारिणा च तथोक्तं ब्रह्मवैवर्त्ते—

विषयस्नेहसंयुक्तो ब्रह्माहमिति यो वदेत् ।
महानरकजालेषु पच्यते नात्र संशयः ॥

पाद्मे—

संसारदुःखसंत्राशं ब्रह्माहमिति वादिनम् ।
कर्म ब्रह्म परिभ्रष्टं तं त्यज्येदन्त्यजं यथा ॥
अज्ञस्यार्द्ध प्रवुद्धस्य सर्वं ब्रह्मेति यो वदेत् ।
महानरकजालेषु तेनैव विनियोजितः ॥

इत्यादीनि शतशः ॥५२॥

पद्मपुराण में कहा है–हे भामिनि ! वेदार्थ से पुराणार्थ अधिक मानता हूँ, पुराण का अन्य प्रकार करने से तिर्यक् योनि प्राप्त होता है । बृहन्नारदीय पुराण में कहा है:–जो नराधम पुराण में अर्थबाद की कल्पना करते हैं, उनके द्वारा अर्जित पुन्य समूह अर्थबाद स्वरूप हो जाते हैं। वैष्णव अपने में अहं-भावना न करे, जिसको अहंग्रहोपासना कहते हैं ॥५१॥

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में कहा है कि–जो व्यक्ति विषय–स्नेह से संयुक्त होकर मैं ब्रह्म हूँ इस प्रकार कहता है वह महा नरक जालों में पचता है इसमें कोई संदेह नहीं है। पद्मपुराण में कहा है, जो संसार दुःख से त्रास प्राप्त है अथच मैं ब्रह्म हूँ इस प्रकार कहता है वह ब्रह्म साधन में परिभ्रष्ट है ऐसा जानना । उस व्यक्ति को अन्त्यज की तरह त्याग करदें। जो अज्ञ है, तथा अर्धप्रबुद्ध (आधा ज्ञानी) है अथच सर्व ब्रह्म हैं इस प्रकार कहता है, वह

यद्यपि भावनात्रापि श्रूयते सामान्येन ब्रह्माहमिति ज्ञाननिष्ठः ब्राह्मणादिरहं कर्मठः दासोऽहमिति वैष्णवस्तथाप्रे अद्वैतभावनाऽनधिकारिणा न कार्या दोषश्रवणात् । वार्चानिकव्यवस्थया तत्र तथैव दासभावनायास्तु सामान्येन विधानात् । दोषस्य चाश्रवणात् सर्वदा सर्वैरेव दासभावनैव कार्या ॥५३॥

स्कान्दे षण्मुखं प्रति शिववाक्यम्—

शिवशास्त्रेऽपि तद्ग्राह्यं भगवच्छास्त्रयोगि यत् ॥५४॥

वैष्णवेषु वैष्णववचनं प्रमाणम् ।

तथोक्तं वैष्णवतन्त्रे—

येषां गुरौ न जप्ये च विष्णौ च परमात्मनि ।
नास्ति भक्तिः सदा तेषां वचनं परिवर्जयेत ॥

मानो नरक जालों में उसी कारण नियोजित होता है इस प्रकार शत शत प्रमाण है ॥५२॥

यद्यपि साधारण रूप में तीन प्रकार की धारणा सुनने में आती है कि:–ज्ञान निष्ठ जन मैं ब्रह्म हूँ इस प्रकार, कर्मठजन, मैं ब्राह्मण हूँ, इस प्रकार और वैष्णव गन मैं दास हूँ इस प्रकार। तो भी अनधिकारियों के लिये अद्वेत–भावना नहीं करनी चाहिये। उससे दोष सुनने में आता है। बार्चानिक व्यवस्था के द्वारा वहाँ दास भावना का सामान्य रूप से विधान किया गया है। दास भावना में दोष नहीं सुनने में आता है अतः सब समय सबसे दास भावना करनी चाहिये ॥५३॥

स्कन्दपुराण में कार्त्तिक जी के प्रति शिवजी का वाक्य यह है कि शिवशास्त्र में से उसी का ग्रहण करना चाहिये जो कि भगवत् शास्त्र के उपयोगी हो ॥५४॥

तथा वैष्णवों में वैष्णव शास्त्र का बचन प्रमाण हैं। वैष्णव-तंत्र में कहा है– जिनके गुरु में, जप पूजादिक में, परमात्मा

स्कान्दे—

येषां विश्वेश्वरे विष्णौ विष्णुभक्तिर्न विद्यते ।
न तेषां वचनं ग्राह्यं धर्मनिर्णयसिद्धये ॥५५॥

किमिति न ग्राह्यं तत्र हेतुः—

पाद्मे—

राक्षसाः कलिमाश्रित्य जायन्ते ब्रह्मयोनिषु ।
यथा कथंचित्कृष्णस्य भजनं वारयन्ति हि ॥५६॥

विष्णुरहस्ये—

अर्चयन्ति सदा विष्णुं मनोवाकायकर्मभिः ।
तेषां हि वचनं कार्यं ते हि विष्णु-समा मताः ।

कौर्म्ये—

संपृष्ट्वा वैष्णवान् विप्रान् विष्णुशास्त्रविशारदान् ।
चीर्णव्रतान्सदाचारान् तदुक्तं यत्नतश्चरेत् ॥

पाद्मे—

इतिहास-पुराणज्ञाः स्मृति-सिद्धान्तवेदिनः ।
वासुदेवप्रिया ये च तदुक्तं वैष्णवं भवेत् ॥५७॥

विष्णु में, भक्ति नहीं है उनके बचन सर्वथा त्याग करदें । स्कन्द-पुराण में कहा है, जिनके बिश्वेश्वर- विष्णु में भक्ति नहीं है, धर्म निर्णय सिद्धि के लिये उनका बचन ग्रहण न करे ।।५५।।

क्यो नहीं ग्रहण करना चाहिये उसका कारण बतलाते हैं,— पद्मपुराण में कहा है कि, राक्षस लोग कलिकाल का आश्रय कर ब्रह्म योनि (ब्राह्मणकुल) में जन्म लेते हैं। वे नाना प्रकार से कृष्ण भजन का निवारण करते हैं ।।५६।।

विष्णुरहस्य में कहा है कि जो व्यक्ति मन, वाणी, शरीर से सर्वदा बिष्णु की अर्चना करते हैं उनका बचन ग्रहणीय है। वे, ही बिष्णुसमान माने जाते हैं। कूर्मपुराण में कहा है कि-बिष्णुशास्त्रमें

लैंगे—

गन्ध-पुष्पादिकं सर्वं शिरसा यो न धारयेत् ।
वैष्णवे योग्यमित्येवं मत्वासौ वैष्णवः स्मृतः ।
भोजनाच्छादनं सर्वं यथा शक्त्या करोति यः ।
विष्णु-भक्तस्य सेवनं स वै भागवतः स्मृतः ॥५८॥

पाद्मे वेदनिधिवाक्यम्—

अपि पापं दुराचारं नरं तत्प्रणतं हरेः ।
नेक्षन्ते किंकरा याम्या उलूकास्तपनं यथा ॥ इति ॥५९॥

स्कान्दे ध्रुववाक्यम्—

इयमेव परा हानिरुपसर्गोऽयमेव हि ।
अभाग्यं परमं चैतत् वासुदेवं न यः स्मरेत् ।
शंखोदकं हरेर्भक्ति निर्माल्यं पादयोर्जलम् ।
चन्दनं धूपशेषं तु सर्वपापापहारकम् ॥६०॥

बिशारद ब्रतपरायण और वैष्णब-ब्राह्मणों को पूछ कर उनके बचन यत्न पूर्वक आचरण करे। पद्मपुराण में कहा है कि जो इतिहास पुराणों को जानने बाले हैं तथा स्मृति-सिद्धान्त को भी जानने वाले हैं एवं वासुदेव के प्रिय हैं उनके बचन हीं वैष्णव-शास्त्र है ।।५७।।

लिंगपुराण में कहा है कि जो व्यक्ति यह वैष्णब योग्य है इस प्रकार मानकर गन्ध-पुष्पादिक अपने मस्तक पर धारण नहीं करता है वह बैष्णव माना जाता है। जो व्यक्ति यथा शक्ति से बिष्णुभक्त के लिये भोजन-आच्छादन कराता है वह भागवत माना जाता है ।।५८।।

पद्मपुराण में वेदनिधि का वचन है-कि यदि मनुष्य पाप-दुराचारी है परन्तु हरि को प्रणाम करता है तो उसको यमदूत नहीं देखते हैं जिस प्रकार उलूक सूर्य को नहीं देखता है ।।५९।।

विष्णुपुराणे—
हरति परधनं निहन्ति जन्तून् वदति तथानृतनिष्ठुराणि यश्च।
अशुभजनितदुर्भगस्य पुंसः कलुषराशेः तस्य हि नास्त्यन्तः॥६१॥
स्कन्दपुराणे चन्द्रशर्मणो वाक्यम्—

पूजा तु तुलसीपत्रैः मया कार्या सदैव हि।
तुलसी-काष्ठ-सम्भूता माला धार्या सदा हरेः॥६२॥

स्कन्दपुराणे—

वैष्णवाणि तु शास्त्राणि येऽर्चयन्ति गृहे सदा।
धन्यास्ते मानवा लोके विष्णुस्तेषां वरप्रदः॥
जीवितादधिकं येषां शास्त्रं भागवतं कलौ।
न तेषां भवति क्लेशो याम्यः कल्पशतैरपि॥

स्कन्दपुराण में ध्रुवजी का बचन है कि यही परम हानि है, यही परम उत्पात है, यही परम दुर्भाग्य है कि-जब बासुदेव का स्मरण नहीं किया जाता है। शंखजल, हरिभक्ति, निर्माल्य, चरणामृत, चन्दन, धूपशेष ये समस्त पापों को हरण करने बाले हैं॥६०॥

बिष्णुपुराण में कहा है, जो व्यक्ति दूसरों के धन का हरण करता है और जन्तुओं को वध करता है एवं-मिथ्या निष्ठुर बोलता हे उस अशुभजात दुर्भग पुरुषके कलुष का अन्त नहीं है॥६१॥

स्कन्दपुराण में चन्द्रशर्मा के बचन है—मैं तुलसीपत्रों से निरन्तर भगवान की पूजा करूँगा और तुलसी जात काष्ठ-माला को निरन्तर धारण करूँगा॥६२॥

स्कन्दपुराण में कहा है, जो व्यक्ति निरन्तर गृह में वैष्णब-शास्त्रों की अर्चना करता है वे सब मनुष्य इस लोक में धन्य हैं, उनके विष्णु वरप्रद होते हैं। जिनके कलिकाल में भागवत शास्त्र

धारयन्ति गृहे नित्यं शास्त्रं भागवतं हि ये।
आस्फोटयन्ति वल्गन्ति तेषां प्रीताः पितामहाः॥
यच्छन्ति वैष्णवं भक्त्या शास्त्रं भागवतं हि ये।
कल्पकोटिसहस्राणि विष्णुलोके वसन्ति ते॥
श्लोकार्द्धं श्लोकमेकं वा वरं भागवतं गृहे।
शतशोऽथ सहस्रैस्तु किमन्यैः शास्त्रसंग्रहैः॥
सर्वस्वेनापि विप्रेन्द्र! कर्त्तव्यः शास्त्रसंग्रहः।
वैष्णवैस्तु महाभाग! तुष्ट्यर्थं चक्रपाणिनः॥
यत्र यत्र भवेद्विप्र शास्त्रं भागवतं कलौ।
तत्र तत्र हरिर्याति त्रिदशैः सह नारद!॥
पुराणं वैष्णवं श्लोकं श्लोकार्द्धमथवा पुनः।
श्लोकपादं पठेद्यस्तु गो-सहस्रफलं लभेत्॥

जीवन से अधिक प्रिय है उनके शत कल्प में भी यम-यातना नहीं है। जो व्यक्ति गृह में भागबतशास्त्र का ग्रहण करते हैं उनके पिता, पितामह आदिक प्रसन्न होकर बाहु ठोकते हैं तथा धन्य धन्य कहते हैं। जो व्यक्ति भक्ति पूर्वक भागबत शास्त्र को वैष्णव के प्रति प्रदान करते हैं वे कोटि सहस्र कल्पपर्य्यन्त विष्णुलोक में निवास करते हैं। यदि किसी के गृह में भागवत के एक श्लोक किम्वा आधा श्लोक है तो सौ हजार अन्य-शास्त्रों के संग्रह की क्या आवश्यकता है। हे महाभाग विप्रश्रेष्ठ! वैष्णव चक्रपाणी की प्रसन्नता के लिये सर्वस्व देकर वैष्णव-शास्त्रों का संग्रह करें। हे बिप्र सुनो, इस कलिकाल में जहाँ जहाँ भागवत शास्त्र हैं वहाँ वहाँ श्रीहरि देबताओं के साथ उपस्थित होते हैं। जो व्यक्ति वैष्णव-सम्बन्धी पुराणों का एक श्लोक किंवा अर्ध श्लोक अथवा चौथाई श्लोक का पाठ करता है वह हजार गऊदान का फल प्राप्त करता है। जो मनुष्य नित्य प्रति भागबत

नित्यं भागवतं यस्तु पुराणं पठते नरः ।
प्रत्यक्षरं भवेत्तस्य कपिला-दानजं फलम् ॥६३॥

गरुडपुराणे—

यो मृत्तिकां द्वारवतीसमुद्भवां
करे समादाय ललाटपट्टले ।
करोति च नित्यं तनु-शुद्धिहेतोः
क्रियाफलं कोटिगुणं सदा भवेत् ॥६४॥

स्कान्दे—

शंखोद्धारे च यत्प्रोक्तं वसतां वर्ष-कोटिभिः ।
तत्फलं लिखिते शंखे प्रत्यहं दक्षिणे भुजे ।
शंखोपरि कृते पद्मे तत्फलं कोटि-संमितम् ॥
वामे भुजे गदा यस्य लिखिता दृश्यते कलौ ॥
गदाधरो गयापुण्यं प्रत्यहं यच्छते नृणाम् ।
फलं नन्दपुरे प्रोक्तं चक्रस्वामि-समीपतः ॥

पुराण का पाठ करता है उसका प्रति अक्षर में कपिलादानजात फल मिलता है ॥६३॥

गरुड़पुराण में कहा है कि-जो व्यक्ति द्वारका उत्पन्न मृत्तिका को हाथ में लेकर शरीर शुद्धि के लिये ललाट में तिलक करता है उसके क्रियाफल कोटि गुना होता है ॥६४॥

स्कन्दपुराण में कहा है-कोटि वर्ष बैठ कर शंख उद्धार में जो फल कहा गया है वह फल नित्यप्रति दाहिनी भुजा में शंख के लिखने से प्राप्त है। शंख के ऊपर पद्म के लिखने का फल कोटि गुना मिलता है। जिनके बायीं भुजा में गदा लिखने में दिखती है उनके गदाधर नित्य प्रति गया सम्बन्धी पुन्य प्रदान करते हैं। नन्दपुर में चक्रस्वामी के निकट जो फल है एवं कृष्ण के दर्शन से जो फल है वह फल गदा के आगे चक्र के लिखने से प्राप्त है।

गदाग्रे लिखिते चक्रे यत्फलं कृष्णदर्शने ।
कृष्णनामांकिता मुद्रा अष्टाक्षर-समन्विता ।
शंखादिचायुधैर्युक्ता स्वर्णरौप्यैस्तथापि वा ।
धार्येति शेषः ॥६५॥

पाद्मे प्रह्लादं प्रति भगवद्वाक्यम्—

मम नामांकिता घण्टा पुरतो या तु तिष्ठति ।
अर्चिता वैष्णवगृहे तत्र मां विद्धि दैत्यज ! ।
वैनतेयांकिता घण्टा सुदर्शनपुरा यदि ।
ममाग्रे स्थापयेद्यस्तु देहे तस्य वसाम्यहम् ॥६६॥

नारसिंहे—

गङ्गा-प्रयाग-गया-नैमिष-पुष्कराणि,
तीर्थानि यानि कुरु-जांगल-यामुनानि ।
कालेन तीर्थसलिलानि पुनन्ति पापं,
पादोदकं भगवतस्तु पुनाति सद्यः ॥६७॥

स्कान्दे—

न विप्र-सदृशं पात्रं न दानं सुरभी-समम् ।
न च गङ्गा-समं तीर्थं न पत्रं तुलसी-समम् ॥

अष्टाक्षर के साथ कृष्ण नाम से अंकित मुद्रा की स्वर्ण-रौप्यों से निर्मित शंखादि आयुधों से अंकित करे ॥६५॥

पद्मपुराण में प्रल्हाद के प्रति भगवान् का वचन यह है कि-हे दैत्यज ! मेरे नाम से अङ्कित घंटा, समक्ष में जो ठहरती है एवं वैष्णव-गृह में अर्चित होती है वहाँ मेरी स्थिति है जानना। जो व्यक्ति गरुड़ से अङ्कित घंटा अथवा सुदर्शन-संयुक्त पार्षद को मेरे समक्ष स्थापित करता है उसका शरीर में मैं निवास करता हूँ ॥६६॥

नरसिंहपुराण में कहा है-गंगा, प्रयाग, गया, नैमिष्य,

न च धात्री-फला यत्र न विष्णु-तुलसीवनम् ।
तं म्लेच्छ-सदृशं ज्ञायात् यत्र सन्ति न वैष्णवाः ॥
वर्ज्यं पर्यु षितं पत्रं वर्ज्यं पर्यु षितं जलम् ।
न वर्ज्यं तुलसीपत्रं न वर्ज्यं जाह्नवीजलम् ॥
निरस्य मालती-पुष्पं मुक्ता-पुष्पं सरोरुहम् ।
गृह्णाति तुलसीपत्रं शुष्कं पर्यु षितं यदि ॥
निवेद्य केशवे मालां तुलसीकाष्ठसम्भवाम् ॥
वहते यो नरो भक्त्या तस्य नैवास्ति पातकम् ।
तुलसी-काष्ठ-सम्भूतं शिरसो बाहुभूषणम् ॥६८॥

विष्णुरहस्ये—

स्वर्णं लक्षाधिकं पुण्यं माला कोटिगुणाधिका ।
दत्तं भवति कृष्णाय नरैर्भक्तिसमन्वितैः ॥६९॥

पुष्करादि तीर्थों के सलिल समय पर पाप का पवित्र करते हैं, परन्तु भगवान के पादोदक उसी समय पवित्र करता है ॥६७॥

स्कन्दपुराण में कहा है- विप्र के समान न कोई उत्तम पात्र (अधिकारी) है, न गोदान के समान उत्तम दान है, न गंगा के समान तीर्थ है, न तुलसी के समान पत्र है। जहाँ धात्री-फल नहीं है, जहाँ तुलसी बन नहीं है जहाँ विष्णु-वैष्णव नहीं हैं, उस स्थान का म्लेच्छों के रहने स्थान समझो, बासी-पत्र वर्जनीय है, परन्तु तुलसीपत्र वासी होने पर वर्जित नहीं है तथा गंगाजल भी वासी नहीं होता है। मालतीपुष्प,मुक्तापुष्प तथा कमल को वासी होने पर बाद देकर शुष्क अथवा पर्य्यु षित तुलसी पत्र का ग्रहण करें। तुलसी काष्ठोत्पन्न माला को केशव के लिये निवेदन कर जो व्यक्ति भक्ति पूर्वक बहन करता है उसका पातक नहीं है। तूलसी-माला से शिर तथा बाहु को भूषित करे ॥६८॥

बिष्णुरहस्य में कहा है—भक्ति युक्त मनुष्यों के द्वारा श्री-

विष्णुधर्मोत्तरे—

न रत्नेन सुवर्णेन न च वित्तेन भूरिणा ।
तथा प्रसादमायाति, यथा पुष्पैर्जनार्द्दनः ॥
श्मशानचैत्यद्रुमजं भूमौ वापि निपतितम् ॥
कलिका नैव दातव्या देवदेवस्य चक्रिणः ॥
चैत्यवृक्षो वृक्षविशेषः ॥७०॥

पुष्पमालादिकं तु निर्माल्यानन्तरमुत्ताय्र्य न तु शीघ्रम् ॥

भविष्ये—

देवमुल्लङ्घयेद्यस्तु तत्क्षणात्पुष्पलोभतः ।
पुष्पाणि वै सुगन्धानि भोज्यानि इतराणि च ।
ब्रह्महत्यामवाप्नोति भोजको लोभमोहितः ।
महारौरवमासाद्य पच्यते शाश्वती समाः ॥७१॥

विष्णुपुराणे—

सर्वत्रासौ समस्तं च वसत्यत्रेति वै यतः ।
ततः स वासुदेवेति विद्वद्भिः परिगीयते ॥

कृष्ण के लिये प्रदत्त स्वर्ण लक्षाधिक फल को देता है और माला कोटि गुण अधिक फल को देती है ॥६९॥

बिष्णुधर्म्मोत्तर में कहा है-जिस प्रकार जनार्द्दन भगवान् पुष्पों से प्रसन्न होते हैं उस प्रकार रत्न, सुवर्ण तथा प्रचुर धन-दान से नहीं है। श्मशान स्थित चैत्य-बृक्ष (बृक्षविशेष) के पुष्प अथवा भूमि पर पतित पुष्पकलिका चक्रपाणि को न देवे ॥७०॥

निर्म्माल्य उत्तोलन के बाद पुष्प-मालादि का भगवान के शरीर से उत्तोलन करे। भविष्यपुराण में कहा है:-जो व्यक्ति सुगन्ध पुष्प के लोभ से मोहित होकर उसी समय देवताओं को उलंघन कर पुष्पो को उतारता है, वह ब्रह्म हत्या प्राप्त करता है। तथा अनन्त काल तक महा रौरव में पचता है ॥७१॥

यस्मात्त्वया हतः केशी क्लेशदस्त्रिदिवौकसाम् ।
तस्मात्केशवनाम्ना त्वं लोके गोपो भविष्यसि ॥
वृक्षमध्य-गते वद्धः दाम्ना गाढं तथोदरे ।
ततश्च दामोदरतां स ययौ दाम-वन्धनात् ॥७२॥

महाभारते—

यः परः प्रकृतेः प्रोक्तः पुरुषः पञ्चविंशकः ।
स एव सर्वभूतात्मा नर इत्यभिधीयते ॥
यस्मात् क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च कथितः पुरुषोत्तमः ॥
यस्माद्व्याप्य स्थितं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
तस्मात्स भगवान् देवो विष्णुरित्यभिधीयते ॥
ब्राह्मण-कुल-सम्पन्नं भक्तं विष्णोर्महात्मानम् ।
आयन्तं वीक्ष्य नोत्तिष्ठेत्स दुःखैः परिभूयते ॥
ये पारमेष्ठ्यं धिषणमधितिष्ठन् न कंचन ।
प्रत्युत्तिष्ठेदिति ब्रूयुः धर्मं ते न परं विदुः ॥

विष्णुपुराण में कहा है:-जो सर्वत्र निवास करते हैं और जिनमें समस्त ठहरता है, उनको विद्वान जन वासुदेव कहते हैं। जिससे तुमने देवताओं के क्लेशदायी केशी का बध किया है इसलिये तुम जगत में केशब हुए हो। दोनों वृक्ष के मध्य में रस्सी से तुम्हारा उदर माँ यशोदा ने बाँधा था इसलिये तुम दामोदर कहे जाते हो ॥७२॥

जो प्रकृति से पर कहा जाता है और जो पच्चीस-तत्व से युक्त है वह समस्त भूतों की आत्मा है। जो नर भी कहे जाते हैं ॥ मैं क्षर से अतीत एवं अक्षर से उत्तम हूँ इस लिये लोक में एवं वेद में पुरुषोत्तम कहा जाता हूँ ॥ जो त्रिलोकी समस्त चराचर में व्याप्त होकर स्थित हैं इसलिये वे भगवान विष्णु कहे जाते हैं। जो कि

विनोदकेन यत्पक्वं यत्पक्वं जातविदसा ।
सिद्धान्नं फलवत्त ग्राह्यमिति शान्तातपोऽब्रवीत् ॥७३॥

अथ पुराणान्तरेण द्वात्रिंशदपराधाः—

केवलेन घृतेनैव धूमायेन्मां विमूढधीः ।
वस्त्रेणापवातेण च धूपं मह्यं निवेदयेत् ॥
तिर्यक्पुण्ड्रधरो भूत्वा यः कुर्याद्देवतार्चनम् ।
याचितैः पत्रपुष्पाद्यैर्यः करोति ममार्चनम् ॥
अप्रक्षालितपादो यः प्रविशेन्मम मन्दिरम् ।
मम दृष्टेरभिमुखं ताम्बूलं चर्वयेत्तु यः ।
उरुवुकशाकं मर्त्यो यो भक्षयेन्मम सेवकः ॥
उरुवुक-पलाशास्थैः पुष्पैः कुर्यान्ममार्चनम् ।
ममार्चामासुरे काले यः करोति विमूढधीः ॥
अवैष्णवस्य पक्कान्नं यन्मह्यं च निवेदयेत् ।
नीलीरञ्जितवस्त्रेण मर्त्यो मत्सदनं चरेत् ॥

व्यक्ति ब्राह्मण कुल से उत्पन्न विष्णुभक्त महात्मा को आता हुआ देखकर नहीं उठता है वह दुःख से पीडित होता है। जिसमें पारमेष्ठी आदिक कुछ चाहना नहीं है, उसको परमधर्म सब कोई कहते हैं ॥ विना जल से पकवाया हुआ अन्नादिक सिद्धअन्न माना जाता है, वह फल के समान ग्रहणीय है ऐसा शान्तातप कहते हैं ॥७३॥

अव पुराणान्तर में वत्तीस अपराधों का विवेचन एवं निर्णय:-जो व्यक्ति मोहित हो कर केबल घृत से मेरे को धूमायित करता है, अपवित्र वस्त्रादि से मेरे लिये धूप देता है, जो व्यक्ति त्रिपुण्ड्धारण कर मेरी सेवा करता है, शक्ति रहते हुये दूसरे के निकट माँग कर पत्र—पुष्पादिक से मेरी पूजा करता है, जो पुरुष बिना चरण धोय मेरे मन्दिर में प्रवेश करता है, जो व्यक्ति मेरी दृष्टि के सन्मुख पान चवाता है, जो मेरा सेबक बन कर उरुवुक साग का भक्षण करता

नवमक्षालितं वस्त्रं जीर्णं यन्मे निवेदयेत् ।
अमौनी-घर्मलिप्तांगो मत्पूजां विदधाति यः ॥
वात-मूत्र निरोधेन मत्पूजां कुरुते नरः ।
नखोदकेन स्नापनं करोति मम मानवः ॥
कृत्वा वातमनाचम्य तथावृतकम्वलकः ॥
पीठासनोपविष्टः यः पूजयेद्वा निरासनः ।
मृन्मये धूपदहनं दीपं वा कुरुतेऽर्चनम् ॥
मत्पूजको न कुरुते तां तां पूजां च मन्दधीः ।
मद्भक्त-साधु-द्वेषं च यः करोति नराधमः ॥
जयन्तीं च न कुरुते न कृतं हरिवासरम् ।
परस्य परिधानं तु परिधायार्चकः मम ॥
पूजयित्वा निवेद्यान्नं सम्भाष्य च कपालिनम् ।
क्रुद्धो यः कर्म कुरुते त्रिकालार्चनविघ्नकृत् ॥

है, जो अरण्डी व पलाश फुलों से मेरी पूजा करता है, जो मूढ़-मती वाला आसुरिक समय पर पूजा करता है, जो अवैष्णव के पकवान मुझे प्रदान करता है, जो नीलीरञ्जित वस्त्र पहन कर मन्दिर में जाता है, जो विना धोय नबीन वस्त्र अथवा जीर्ण वस्त्र का निवेदन करता है, जो मौन भंग कर के तथा पसीना से भीजकर मेरी पूजा करता है, अपान वायु व मूत्र का निरोध कर मेरी पूजा करता है, जो नखों के द्वारा स्पर्श प्राप्त जल से स्नान-व पूजा करता है, अपान वायु का त्याग कर विना आचमन से पूजा करता है, पीढे का आसन पर बैठ कर अथवा विना आसन से जो पूजा करता है, मृण्मय पात्र में धूप का दहन करता है-अथवा दीप रख कर पूजा करता है, जो नराधम मेरे भक्त-साधुओं का द्वेष करता है,जो व्यक्ति जन्माष्टमी तथा हरिबासरादि नहीं करता है,जो दूसरे का वस्त्र पहन कर मेर अर्चन करता है, कपालियों के साथ भाषण कर उनको अन्नादि देकर मेरी पूजा करता है, जो क्रोधित होकर त्रिकाल विघ्न कारी पूजा करता है.

अन्धकारे स्पृशेत्कायः सम्भाष्य च रजस्वलाम् ।
वामहस्तेन मां धृत्वा स्नापनं यस्तु मन्दधीः ॥
गणसंनिधिविष्टोऽथ पूजां च विद प्रीति यः ।
महापराधाख्याता द्वात्रिंशत न क्षमामि च तान् ॥७४॥

विष्णुरहस्ये—
शाठ्येनापि नरा नित्यं ये स्मरन्ति जनार्दनम् ।
तेऽपि यान्ति तनुं त्यक्त्वा विष्णुलोकमनामयम् ॥७५॥

वैयासकिपञ्चरात्रे—
तेनैव रात्रिशेषं तु कालं सूर्योदयावधि ।
कर्त्तव्यं च जपं ध्यानं नित्यमाराधकेन वै ॥
विभज्य पञ्चधा रात्रिं शेषे देवार्चनादिकम् ।
जपं होमो तथा ध्यानं नित्यं कुर्यात्स साधकः ॥७६॥

कर्म-जडोपदेशो निरर्थक इत्याह—
तत्र प्रह्लादः—
दुग्धेन शिक्तो निम्बोऽपि कटुभावं न तु त्यजेत् ।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि तूपदेशो निरर्थकः ॥७७॥
(कर्मभिः भक्तेर्न नाशः ।)

जो अन्धकार में मेरा स्पर्श करता है, जो रजस्वला नारी के साथ भाषण कर पूजा करता है, जो मन्दव्यक्ति वाम हस्त से धारण कर मेरी पूजा करता है, जो गणेशजी का पूजा न कर मेरी पूजा करता है, ये बत्तीस महापराध हैं, मैं उनकी क्षमा नहीं करता हूँ ॥७४

विष्णुरहस्य में कहा है:—जो व्यक्ति शठता से भी मेरा नित्य स्मरण करते हैं वे शरीर त्याग कर बिष्णुलोक में जाते हैं ॥७५॥

वैयासकिपंचरात्र में कहा है:-अत: शेष रात्रि से लेकर सूर्य-उदय पर्यन्त जप, ध्यान, आराधनादिक करना चाहिये ! रात्री के पांचवा भाग शेष रात्रि है । साधक उस समय जप, होम ध्यानादिक नित्य करें ॥७६॥

प्रल्हाद जी कहते हैं कि-निम्ब को दूध में भिगोदेने पर भी

उक्तं प्रह्लादेन—

ग्रावभिर्लोहटंकैश्च माणिक्यं नैव भिद्यते ।
नानाकामनया बुध्या विष्णुभक्तिर्न भिद्यते ॥
भानुः सर्वगतो यद्वत् बह्निश्च सर्वभुग्यथा ।
भक्तिस्थितोऽपि बिषये कर्म्मभिर्नैव वध्यते ॥७८॥

आदिपुराणे—

स्मरन्ति मम नामानि ये त्यक्त्वा कर्मचाखिलम् ।
तेषां कर्माणि कुर्व्वन्ति ऋषयो भगबत्पराः ॥७६॥

अग्निपुराणे दशरथोक्तिः—

शिलाबुद्धिः कृता किंवा प्रतिमायां हरेर्मया ।
किं मया वापि दृष्टस्य बिष्णुभक्तस्य कर्हिचित् ॥
तन्मुद्राङ्कितदेहस्य चेतसा नादरः कृतः ।
येन कर्म्मबिपाकेन पुत्रशोको ममेदृशः ॥८०॥

वह अपने कड़वे पन को नहीं त्याग करता है। उसी प्रकार कर्म-जड़ों को भक्ति का उपदेश करना निरर्थक हैं ॥७७॥

कर्मों से भक्ति का नाश नहीं हैं। माणिक्य लोहे के टाँक एवं पत्थरो से फोड़ा नहीं जा सकता है। इसी प्रकार नाना कामना बुद्धि से विष्णुभक्ति नाश नहीं होती! जिस प्रकार सूर्य की सर्वगति है तथा अग्नि सर्वभुक् है, ठीक उसी प्रकार भक्ति-स्थित जन कर्मों के द्वारा बिषय में नहीं बाँधे जा सकते हैं ॥७८॥

आदिपुराण में कहा:—जो व्यक्ति समस्त कर्मों को त्याग कर मेरे नामों का स्मरण करते हैं, उनके कर्मों को भक्ति-परायण ऋषि जन करते हैं ॥७६॥

अग्निपुराणमें दशरथ जी का बचन है-क्या मैंने भगबद्‌प्रतिमा में शिला-बुद्धि की है, किम्बा मैंने मार्ग में दृष्ट किसी बिष्णुभक्त का अथवा विष्णु-चिन्हों से चिन्हित विष्णुजन के शरीर का मन से आदर नहीं किया है। जिस कर्म्म विपाक से मेरे लिये इस प्रकार पुत्रशोक उत्पन्न हो रहा है।।८०॥

शाण्डिल्यऋषीं प्रति जयाख्यसंहितायाम्—

मन्त्रप्रसादजनितं लिङ्गं न श्रीगुरोर्विना ।
प्रकाशनीयं बिपेन्द्र ! कस्यचित्सिद्धिमिच्छता ।
प्रकाशयति यो मोहादौत्सुक्यान्मन्त्रजं सुखम् ।
देवताःनिकटस्थाश्च ध्रुवं वैयान्ति दूरतः ॥८१॥

अथ श्रीकृष्णनामरूपम्—

सर्बार्थशक्तियुक्तस्य देवदेवस्य चक्रिणः ।
अर्चाभिरुचितं नाम तत्सेवार्थेपु योजयेत् ॥८२॥

प्रभासखण्डे नारदकुशध्वजसम्बादे—

नाम्नां पुण्यतरं नाम कृष्णाख्यं मे परंतप ! ।
नामश्चिन्तामणिः कृष्णः चैतन्यरसविग्रहः ।
पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नाम-नामिनोः ॥

पाद्मे मथुरामाहात्म्ये—

तारकाज्जायते मुक्तिः प्रेमभक्तिस्तु पारकात् ।
तारको रामः पारकः कृष्णः ॥८३॥

जयाख्यसंहिता में शाण्डिल्य ऋषि के प्रति बचन है-कि सिद्धी को चाहने वाले मन्त्र से प्रसाद प्राप्त चिन्हों को गुरु के बिना अन्य किसी को प्रकाशित न करें। जो मोह से अथवा उत्सुकता से मन्त्र जात सुख का प्रकाश करता है उसके निकटस्थ देवता लोग दूर चले जाते हैं ॥८१॥

श्रीकृष्ण के नाम रूपः—समस्त अर्थ तथा समस्त शक्तियों से युक्त देवदेव चक्रधारी की जो अर्चा है उसी अर्चा के अभिरुचि के अनुसार नाम रूपादिक स्मरण करे-अर्थात् श्रीकृष्ण की मूर्त्ती हो तो उन कृष्ण सन्बन्धी नाम रूप का स्मरण करे। राम की मूर्त्ती हो तो राम सम्बन्धी नाम रूपों का स्मरण करे ॥८२॥

प्रभासखंड के नारद कुशध्वज संबाद में कहा है:-हे राजन्! नामों में से श्रीकृष्णाख्य नाम पुन्यतर है ॥ नाम चिन्तामणि रूप है, साक्षात् कृष्ण स्वरूप है, चैतन्य रस विग्रह है, पूर्ण है, शुद्ध है,

देव-बिप्र-यतीनां च मदलोभविमोहितः ।
मठापत्यं तु यः कुर्य्यात्सर्व्वधर्म्म बहिष्कृतः ॥
पत्रं पुष्पं फलं तोयं द्रव्यमन्नं मठस्य तु ।
योऽश्नाति स पतेत् घोरे नरके चैकविंशति ॥८४॥

अथ मूर्त्तयः—

पद्म-शंखारि-गदया केशवः परिकीर्त्तितः ।
शंखाम्बुजगदाचक्रैर्देवो नारायणः स्मृतः ॥
गदा-चक्र-शंख-पद्मान् बिभ्रन्माधव उच्यते ।
चक्र-गदा-शंख-पद्मान् गोविन्दो धारयत्यसौ ॥
गदा-पद्म-शंख-चक्रैं विष्णुरित्यभिधीयते ।
चक्र-शंखाम्बुजगदां बिभर्त्ति मधुसूदनः ॥
पद्मं गदां चक्रशंखे बिभर्त्त्येव त्रिविक्रमः ।
शंख-चक्र-गदा-पद्मैर्वामनः परिकीर्त्तितः ॥
पद्म-चक्र-गदा-शंखैः श्रीधरः कथ्यते हरिः ।
गदापद्माम्बुजशंखैः हृषीकेशोऽत्र लक्ष्यते ॥

नित्यमुक्त है, नाम एवं नामी दोनों अभिन्न हैं ॥ पद्मपुराण के मथुरामाहात्म्य में कहा है:-तारक से मुक्ति उत्पन्न होती है तथा पारक से प्रेम भक्ति उत्पन्न होती है। यहाँ पर तारक का अर्थ राम है और पारक का अर्थ कृष्ण है ॥८३॥

जो व्यक्ति मद एवं लोभ से मोहित होकर देवता, ब्राह्मण एवं यतियों के मठाधिपति होता है वह समस्त धर्म से बहिष्कृत है । जो व्यक्ति मठ के पत्र, पुष्प, फल, जल, द्रव्य, अन्न का भोजन करता है वह घोर नरक में एकीशवार तक गिरता है ॥८४॥

मूर्त्तियों का विवेचनः—केशव—पद्म, शङ्ख, अरि, गदा से ; नारायणः—शङ्ख, पद्म, गदा, चक्र से; माधवः—गदा, चक्र, शङ्ख, पद्म से;गोविन्दः-चक्र, गदा, शङ्ख, पद्म से विभूषित हैं । विष्णुः—गदा, पद्म, शंख, चक्र से कहे जाते हैं। मधुसूदनः—चक्र, शंख, पद्म, गदा का धारण करते हैं । त्रिविक्रमः—पद्म, गदा, चक्र,

शंख-पद्मारि-गदया पद्मनाभोऽत्र लक्ष्यते ।
पद्मशंख-गदा-चक्रैः दामोदर उदीरितः ॥
गदा-शंखाब्जचक्रैश्च संकर्षण इहेरितः ।
गदा-शंखे चक्रपद्मे बासुदेवो बिभर्त्ति सः ॥
चक्र-शंख-गदा-पद्मैः प्रद्युम्नः परिकीर्त्तितः ।
चक्र-कौमोदकी-शंख-पद्मैः स्यादनिरुद्धकः ॥
चक्राब्ज-शंख-गदया लक्ष्यते पुरुषोत्तमः ।
पद्म-कौमोदकी-शंख-चक्रैं विद्यादधोक्षजम् ॥
चक्र-पद्म-गदा-शंखैः श्रूयते नरकेसरी ।
गदाम्बुजारिशंखैः स्यादुच्यतेऽसौ रमापतिः ॥
पद्मारिशंखगदया लक्षते तु जनार्द्दनः ।
शख-चक्र-गदा-पद्मैरुपेन्द्र इति लक्ष्यते ॥
शङ्ख-चक्राब्ज-गदया हरिरित्येव कीर्त्तितः ।
शङ्ख-कौमोदकी-पद्म-चक्रैः श्रीकृष्ण उच्यते ॥

शंख का धारण करते हैं। वामन—शंख, चक्र, गदा, पद्म से परिकीर्तित होते हैं। श्रीधर हरिः—पद्म, चक्र, गदा, शंख से कहे जाते हैं। हृषीकेषः—गदा, पद्म, कमल, शंख से लक्षित होते हैं। पद्मनाभजी शंख, पद्म, चक्र, गदा से लक्षित हैं। दामोदरः—पद्म, शंख, गदा, चक्रों से कहे जाते हैं। सङ्कर्षणः—गदा, शङ्ख, कमल, चक्र से कहे जाते हैं । बासुदेवः—गदा, शङ्ख, चक्र, पद्म का धारण करते हैं। प्रद्युम्नजी चक्र, शंख, गदा, पद्म से परिकीर्तित हैं। अनिरुद्धः-चक्र, गदा, शङ्ख, पद्म से माने जाते हैं। पुरुषोत्तमः-चक्र, कमल, शङ्ख, गदा से लक्षित होते हैं। अधोक्षज को—पद्म, गदा, शङ्ख, चक्र से जानना। नृसिंहजी चक्र, पद्म, गदा, शङ्ख का आश्रय करते हैं । रमापतिः—गदा, कमल, चक्र, शङ्ख से कहे जाते हैं। जनार्दनजीः—पद्म, चक्र, शङ्ख, गदा से लक्षित होते हैं। श्रीहरिः—उपेन्द्रजीः—शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म से लक्षित होते हैं। श्रीकृष्ण शङ्ख, शङ्ख, चक्र, कमल, गदा से परिकीर्तित होते हैं।

दक्षिणाधस्तस्य करादारभ्यैतत्प्रदक्षिणाम् ।
चतुर्विंशति मूर्त्तिनामायुधानां बिनिर्णयः ॥८५॥
बिवृत-बिबिध-सङ्गं स्वार्थभङ्गेऽनुरक्तं
स्थलजलधिनिमग्नं ज्ञानहीनं कृतघ्नम् ।
सकलरसरसज्ञालम्बितश्रीपदाब्जो
हयवतु सहृदयो मां कृष्णनाथोऽभिमानी ॥८६॥

इति श्रीनारायणभट्टबिरचितायां साधनदीपिकायां
सप्तमः प्रकाशः

* समाप्तेयं साधनदीपिका *



गदा, पद्म, चक्र से कहे जाते हैं। दक्षिण की तरफ नीचे हाथ से लेकर इनकी क्रमसे स्थिति है। इनके धारण के भेद से चौवीस मूर्त्तियों का निर्णय किया जाता है ॥८५॥

अब ग्रन्थकार ग्रन्थ की परि समाप्ति में श्रीकृष्ण के मङ्गलाचरण द्वारा ग्रन्थ की समाप्ति करते हैं—समस्त रसों के रसज्ञगण जिनके चरणकमल का आश्रय करते हैं, सहृदय वाले वे अभिमानी कृष्णनाथ, विस्तारित नाना सङ्ग प्राप्त स्वार्थ भङ्ग में अनुरक्त, संसार सागर में निमग्न, ज्ञानहीन, कृतघ्न मेरी रक्षा करें। यहाँ अभिमान शब्द का अर्थ सर्वप्रकार से मान अर्थात् 'मेरी प्रतिष्ठा जिनसे। अथवा ग्रन्थकार की वैदग्धी उक्ति है। संसारसागर में निमग्न, ज्ञानहीन ये सब वचन कवि की दैन्योक्ति है। स्वार्थभंग का तात्पर्य्य संसारसागर की स्वार्थ-रूप तरङ्गावलियों से युक्त ॥८६॥

नारायणभट्टपादधूलिना तापहारिणा ।
धूसरितेन केनचित् पुष्पवननिवासिना ॥
कृष्णदासेन वै कृतोऽनुवादोऽयं शेषं गतः ।
श्रीकृष्णस्य जन्माष्टम्यां पञ्चद्विशून्ययुग्मके ॥

